लेखक की अन्य कृतियाँ

उपन्यास

अलका—नारी की माया और ममत्व के साथ मानव-जीवन मे आने-वाले घात-प्रतिघात का अपूर्व चित्रण. मूल्य ३॥)

अप्सरा—वेश्याकुल मे उत्पन्न एक कर्तव्य-निष्ठ, चरित्रवान् और विदुषी नारी द्वारा प्रस्तुत एक महान् आदर्श का चित्रण. मूल्य ४)

कुल्ली-भाट—व्यग और हास्य से परिपूर्ण अपूर्व चरितोपन्यास. मूल्य २॥)

कहानी-संग्रह

लिली—'निराला'जी की आठ सर्वोत्तम कहानियों का सग्रह. मूल्य २॥)

काव्य

परिमल—महाकवि 'निराला' की चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ कविताओं का सग्रह. मूल्य ४)

साहित्य-समालोचना

पंत और पल्लव—प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त के व्यक्तित्व व उनकी रचना 'पल्लव' पर पाडित्य-पूर्ण लेख. मूल्य १)

प्रबंध-पद्म—विद्वत्ता-पूर्ण साहित्यिक निबंधों का सग्रह. मूल्य ३)

★

कलकत्ते की प्रिय स्मृति में

पं० रामशंकरजी शुक्ल

के

कर-कमलों

में

लखनक
२६-७-३९ —निराला

भूमिका

यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों, गृहदेवियों और बालकों के लिये लिखी गई है। इससे उन्हें महाभारत की कथाओं का सारांश मालूम हो जायगा। भाषा सरल है। भाव के ग्रहण में अड़चन न होगी। पुस्तक लिखते समय मैंने कई छोटी-बड़ी पुस्तकों का आधार लिया है—संस्कृत, बँगला और हिंदी। मुझे विश्वास है, साधारण जन इस पुस्तक से लाभ उठाकर मुझे कृतज्ञ करेंगे।

सातवें सफ़े में 'गंगा-पार ले जाती थी' लिखा है, यहाँ 'गंगा' का अर्थ नदी है। इस प्रांत में नदी को भी गंगा कहते हैं। परंतु चूँकि यह नदी 'यमुना' है, इसलिये 'यमुना-पार' ही अधिक संगत है। पाठक-पाठिकाएँ शुद्ध कर लें।

इति शम्

लखनऊ
२६-७-३९ }

—निराला

सूची

	पृष्ठ
आदिपर्व	१
सभापर्व	४७
वनपर्व	६१
विराटपर्व	९०
उद्योगपर्व	१०३
भीष्मपर्व	१२१
द्रोणपर्व	१४०
कर्णपर्व	१६५
शल्यपर्व	१७९
सौप्तिकपर्व	१९०
स्त्रीपर्व	१९७
शांतिपर्व	२०३
अनुशासनपर्व	२०६
अश्वमेधपर्व	२१०
आश्रमवासिकपर्व	२१६
मौसलपर्व	२२१
महाप्रस्थानिकपर्व	२२४
स्वर्गारोहणपर्व	२२६

★

★ वंश-परिचय

देव और दानवों मे सदा युद्ध छिड़ा रहता था। दैत्य देवों से सहज़ोर पड़ते थे, क्योंकि ये देवों के बड़े भाई थे, पुन. उनमें प्राण-शक्ति अधिक थी। एक और भी कारण था। दैत्यों के पूज्य गुरु शुक्राचार्य मुर्दे को जिला देनेवाला सजीवन-मंत्र जानते थे। यद्यपि देवता अमर थे, और बुद्धि में असुरों से श्रेष्ठ, फिर भी वारवार असुरों की मरी हुई सेना को पुनः जीवित होते देख घबरा गए थे।

देवों के गुरु बृहस्पति ने देवों को बचाने का एक उपाय सोचा। श्रद्धा, भक्ति तथा सेवा आदि दिव्य गुणों से असुर-गुरु को प्रसन्न कर, उन्हे शिष्य-प्रीति द्वारा आकर्षित कर, उनसे सजीवन-मंत्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपने परम रूपवान्, सरल-स्वभाव, ब्रह्मचारी पुत्र कच को उनके पास भेजा। कच की सेवा, श्रद्धा और गुरु-भक्ति देखकर असुर-गुरु शुक्राचार्य द्रवित हो गए, और उपयुक्त अधिकारी जान उसे संजीवन-मंत्र सिखलाने का निश्चय कर लिया। आचार्य शुक की कन्या देवयानी कच के रूप और गुणों की दिव्य छटा देखकर उस पर मुग्ध हो गई, और उसे हृदय से प्यार करने लगी। जब असुरों को यह मालूम हुआ कि बृह-स्पति-पुत्र कच आचार्य के पास अध्ययन करने के लिये आए हुए हैं, उन्हे स्वभावतः शका हुई; कहीं ऐसा न हो कि जिस विद्या के बल पर हम लोग विजयी होते हैं, वह आचार्य की कृपा से इसे प्राप्त हो जाय। उन लोगों ने, शत्रु-पक्ष का होने के कारण, विद्यार्थी का प्राणांत कर देने का निश्चय कर लिया। पर आचार्य से डरते थे, इसलिये छिपकर ऐसा करने का संकल्प किया। और, एक दिन कच को उन्होंने मार भी डाला।

जब यह हाल देवयानी को मालूम हुआ, उसने पिता से कह मंत्र-शक्ति द्वारा कच को पुनः जीवित करा लिया। असुरों ने फिर भी कई बार कच के प्राण लिए, पर देवयानी के प्रेम तथा शुक्राचार्य के संजीवन-मंत्र के प्रताप से वह प्रति बार बचता रहा। यथासमय कच ने वह मंत्र-

सूची

	पृष्ठ
आदिपर्व	१
सभापर्व	४७
वनपर्व	६१
विराटपर्व	९०
उद्योगपर्व	१०३
भीष्मपर्व	१२१
द्रोणपर्व	१४०
कर्णपर्व	१६५
शल्यपर्व	१७९
सौप्तिकपर्व	१९०
स्त्रीपर्व	१९७
शांतिपर्व	२०३
अनुशासनपर्व	२०६
अश्वमेधपर्व	२१०
आश्रमवासिकपर्व	२१६
मौसलपर्व	२२१
महाप्रस्थानिकपर्व	२२४
स्वर्गारोहणपर्व	२२६

★

★ वंश-परिचय

देव और दानवों में सदा युद्ध छिड़ा रहता था। दैत्य देवों से सहज़ोर पड़ते थे, क्योंकि वे देवों के बड़े भाई थे, पुन उनमें प्राण-शक्ति अधिक थी। एक और भी कारण था। दैत्यों के पूज्य गुरु शुक्राचार्य मुर्दे को जिला देनेवाला सजीवन-मंत्र जानते थे। यद्यपि देवता अमर थे, और बुद्धि में असुरों से श्रेष्ठ, फिर भी वारंवार असुरों की मरी हुई सेना को पुनः जीवित होते देख घबरा गए थे।

देवों के गुरु बृहस्पति ने देवो को बचाने का एक उपाय सोचा। श्रद्धा, भक्ति तथा सेवा आदि दिव्य गुणों से असुर-गुरु को प्रसन्न कर, उन्हें शिष्य-प्रीति द्वारा आकर्षित कर, उनसे सजीवन-मंत्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपने परम रूपवान्, सरल-स्वभाव, ब्रह्मचारी पुत्र कच को उनके पास भेजा। कच की सेवा, श्रद्धा और गुरु-भक्ति देखकर असुर-गुरु शुक्राचार्य द्रवित हो गए, और उपयुक्त अधिकारी जान उसे संजीवन-मंत्र सिखलाने का निश्चय कर लिया। आचार्य शुक्र की कन्या देवयानी कच के रूप और गुणों की दिव्य छटा देखकर उस पर मुग्ध हो गई, और उसे हृदय मे प्यार करने लगी। जब असुरों को यह मालूम हुआ कि बृह-स्पति-पुत्र कच आचार्य के पास अध्ययन करने के लिये आए हुए हैं, उन्हें स्वभावतः शंका हुई; कहीं ऐसा न हो कि जिस विद्या के बल पर हम लोग विजयी होते हैं, वह आचार्य की कृपा से इसे प्राप्त हो जाय। उन लोगों ने, शत्रु-पक्ष का होने के कारण, विद्यार्थी का प्राणांत कर देने का निश्चय कर लिया। पर आचार्य से डरते थे, इसलिये छिपकर ऐसा करने का संकल्प किया। और, एक दिन कच को उन्होंने मार भी डाला।

जब यह हाल देवयानी को मालूम हुआ, उसने पिता से कह मंत्र-शक्ति द्वारा कच को पुनः जीवित करा लिया। असुरों ने फिर भी कई बार कच के प्राण लिए, पर देवयानी के प्रेम तथा शुक्राचार्य के संजीवन-मंत्र के प्रताप से वह प्रति बार बचता रहा। यथासमय कच ने वह मंत्र-

शक्ति भी आचार्य से प्राप्त कर ली। अध्ययन समाप्त हो चुका था। गुरु की आज्ञा तथा पद-धूलि ग्रहण कर विदा होते समय कच देवयानी से भी मिलने गया। देवयानी को कच के विछोह से बड़ी व्याकुलता हुई, और उस समय लाज के परदे में ढका हुआ कच के प्रति अपना अपार प्रेम प्रकट किया। परंतु गुरु-कन्या जानकर कच ने उस प्रेम का प्रत्याख्यान किया। इससे देवयानी को क्रोध हुआ। कच को प्राण-दान अब तक उसी ने दिया था—एक बार नहीं, अनेक बार—अतः उसके प्राणों की वह अधिकारणी हो चुकी थी। पर कच अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर एक उद्देश की सिद्धि के लिये गया था, पुनश्च देवयानी उसके गुरु की कन्या थी, जिसे सदा ही वह धर्म-बहन समझता आ रहा था, इसलिये धर्म तथा उद्देश को ही उसने प्रधान माना। देवयानी ने कच के दिल की कड़ाई देखकर प्रेम के उन्माद में शाप दिया कि उसकी सीखी हुई विद्या निष्फल हो जाय। कच ने भी उद्देश की दृढ़ता पर अटल रहकर शाप दिया कि उसका यह अवैध प्रेम विवाह की हीनता को प्राप्त हो—उसे ब्राह्मण-जाति का कोई पुरुष पत्नी-रूप में ग्रहण न करे। अमरावती पहुँचकर कच ने वह विद्या दूसरे को सिखा दी, और देवताओं का मनोरथ सफल किया।

दैत्यों के महाराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से देवयानी की गहरी मित्रता थी। पर स्पर्द्धा-भाव दोनों में प्रबल था। देवयानी एक तो गुरु-पुत्री और ब्राह्मण-कन्या होने के कारण अपने को श्रेष्ठ समझती थी; दूसरे, स्वभाव से भी उसकी सिर उठाकर चलनेवाली वृत्ति थी। महाराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा राजकुमारी ही थी, इसलिये उसमें बड़प्पन का भाव रहना स्वाभाविक था। एक दिन दोनों में तकरार हुई। शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुएँ में ढकेल दिया। दैव-योग से महाराज ययाति वहाँ मृगया के लिये आए थे, उन्होंने देवयानी को कुएँ से बाहर निकाला। कालान्तर में उन्हीं के साथ देवयानी का विवाह भी हो गया।

बदले का उग्र भाव देवयानी में था ही। उसने हठ किया कि राजकुमारी शर्मिष्ठा को अपनी दासियों के साथ मेरी सेवा के लिये महाराज वृषपर्वा भेज दें। इस खबर से दैत्य-वंश में बड़ी खलबली मच गई। दैत्य-राज वृषपर्वा भी घबराए। उन्हें यह चिन्ता हुई कि गुरु-कन्या की आज्ञा का उल्लंघन किया गया, तो सम्भव है, गुरु रुष्ट हो जायें। पिता की बड़े

सोच में देख राज्य तथा जाति के कल्याण के विचार से शर्मिष्ठा ने स्वयं पिता से आज्ञा लेकर देवयानी की सेवा स्वीकार कर ली। शर्मिष्ठा के रूप, यौवन, शील और सेवा-भाव से महाराज ययाति मुग्ध हो गए, और देवयानी की आंख बचाकर उससे विवाह कर लिया। इस गुप्त विवाह का कारण यह था, वह शुक्राचार्य को वचन दे चुके थे कि शर्मिष्ठा से विवाह न करेंगे। परन्तु विवाह का भेद कुछ ही दिनों तक छिपाया जा सकता है। एक दिन यह परदा देवयानी की आंखों के सामने से उठ गया। पति की इस कुचेष्टा से क्रोधित होकर उसने पिता से सारा हाल कहा। महर्षि शुक्राचार्य ने महाराज ययाति को इंद्रिय-श्लथ तथा वृद्ध हो जाने का शाप दिया। यद्यपि ययाति के तब तक कई पुत्र हो चुके थे, तथापि उनकी भोगेच्छा का उपशम न हुआ था। उन्होंने नम्रता-पूर्वक शुक्राचार्य से क्षमा-प्रार्थना करते हुए शाप से मुक्त होने का उपाय पूछा। शुक्राचार्य ने कहा कि यदि उनका कोई पुत्र उन्हें अपना यौवन देकर उनकी व्याधि अपने शरीर में धारण करे, तो वह पुन: गत यौवन प्राप्त कर सकते हैं। महाराज ययाति ने अपने पुत्रों को बुलाकर उनसे यौवन की याचना की। परंतु एक-एक कर सबने इन-कार कर दिया। शर्मिष्ठा के गर्भ से पैदा हुए पुरु ने पिता की इच्छा पूर्ण की। महाराज ययाति ने तब पुरु को सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित किया। पुरु के वंश में महाराज दुष्यंत, शकुंतला-पुत्र भरत और कुरु आदि तेजस्वी राजा हुए। इन्हीं कुरु के वंशज ही बाद में कौरव कहलाए। महा-राज ययाति के पुत्र यदु से यदुवंशियों की शाखा चली।

★ महाराज शांतनु और देवव्रत

इसी कुरु-वंश में महाराज प्रतीप के पुत्र महाराज शांतनु बहुत परा-क्रमी और तेजस्वी राजा हुए। इनकी राजधानी हस्तिनापुर में थी। यही से क्रमशः हटती हुई आज की दिल्ली द्वापर के बाद से अब तक हिंदुओं, पठानों और मुगलों के पश्चात् अंगरेजों की राजधानी हुई। शांतनु प्रजा पालने में तत्पर और बलिष्ठ, सुंदर राजा थे। उन्हें प्राप्त कर उनकी राजधानी नवीन सूर्य के उदय से पृथ्वी की तरह प्रसन्न हुई। सब लोग अपने-अपने कार्यों की देख-रेख करते हुए उन्नति करने लगे।

एक दिन महाराज शांतनु गंगा के तट पर शिकार खेलने के विचार से गए हुए थे। देखा, एक परम रूपवती युवती तट पर खड़ी बड़ी-बड़ी आँखों से उनकी तरफ़ देखकर मुस्किरा रही है। उसके अंगों में सूर्य की आभा गंगा की तरंगों पर पड़ती हुई-सी चमक रही है। हिलोरों की तरह उसका दिव्य वस्त्र हवा से उड़ते, उठने और मुड़ते हुए सैकड़ों हाथों से जैसे महाराज शांतनु को बुला रहा है। उसके खुले, लहरीले बालों की सहस्रों पतली नागिनों ने महाराज शांतनु को दूर ही से जैसे डस लिया हो। उसी की दृष्टि की अमृत-ओषधि की ओर वासना के जहर से जर्जर महाराज शांतनु के अज्ञात पद बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों महाराज उसके निकट होते गए, त्यों-त्यों उन्हें ज्ञात होने लगा कि पृथ्वी पर ऐसी छवि विरल है—स्वर्ग में भी होने का मन को संशय हो चला। महाराज के ऐश्वर्य का सारा भाव उस रूपसी के रूप के मूल्य के सामने कुछ भी न ठहरा। उसके बिना गुण के रंगीन धनुष के सामने स्वयं ही शिकार की तरह बढ़ते गए।

पास जाते-जाते आकाश में सूर्य की रश्मि-शोभा की तरह महाराज के मन का सारा ऐश्वर्य युवती की अपलक दृष्टि में समा गया। उन्होंने अपना सर्वस्व उसे दे डाला। हृदय में केवल प्रिया को पाने की वासना रह गई। सरल स्वर से बोले—"सुलोचने, मैं तन-मन से तुम्हारे रूप का दास हो गया हूँ। मैं चाहता हूँ, तुम्हें अपना हृदयेश्वरी, अपने राज्य की रानी बनाऊँ। तुम मेरे रिक्त पात्र को अपने प्रेम से भर दो। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ।"

सुंदरी प्रसन्न होकर बोली—"महाराज! आप जिस भाषा में बात-चीत कर रहे हैं, वह हृदय की भाषा है। मैं एक साधारण स्त्री हूँ, पर मेरे लिये अपने राज्यैश्वर्य का विचार आपने नहीं किया। मुझे आप अपने वैभव से बड़ा मान गए, इससे बड़ा सौभाग्य नारी दूसरा नहीं समझती, इसलिये मैं हर तरह आप ही की हूँ। फिर भी आप यह प्रतिज्ञा करें कि आप मेरे किसी काम में दखल न देंगे, तो मैं आपका सबध स्वीकार कर लूँगी।"

प्रेम परिणाम नहीं देखता। महाराज शांतनु को युवती की आज्ञा मंजूर हुई, और वह उससे विवाह कर, वहीं गंगा-तट पर महल बनवाकर रहने लगे।

यह सुंदरी स्त्री साक्षात् भगवती गंगा थी। महर्षि वशिष्ठ से वसुओं को तस्करता के कारण शाप मिला था कि उन्हें मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करना होगा। इस शाप से वे बहुत घबराए। किसी मानवी के गर्भ से जन्म लेने की उनकी इच्छा न थी। वे चाहते थे, जब शाप भोगना ही है, तब किसी दिव्य प्रकृति के गर्भ से जन्म लेने में ही मर्यादा है। यह विचार करते-करते चिंता से मुरझाए हुए आठों वसु गंगाजी के तट पर आए। उन्हें याद आया कि गंगाजी यदि उनकी माता बनना स्वीकार कर लें, तो उनका बहुत कुछ कलंक मिट सकता है। उन्होंने गंगाजी का स्मरण कर उन्हें अपने दुखी हृदय की कहानी सुनाई। गंगाजी ने स्वीकार किया कि वह वसुओं की माता होंगी। यह गंगाजी ही महाराज शांतनु को मुग्ध कर वसुओं को जन्म देने के विचार से उनके साथ पत्नी-रूप से रहने लगीं।

महाराज शांतनु के दिन बड़े सुख से कटने लगे। दिन-रात प्रेम के प्रसंग, बहती हुई अनर्गल हवा की तरह, चलते रहे। प्रिया का हृदय चंदन की सुगंध की तरह उन्हें शीतल करता रहा। महाराज शांतनु अपनी पत्नी से सब कुछ प्राप्त कर सके, केवल उसका परिचय वह नहीं मालूम कर सके। कभी उन्हें पूछने का साहस भी न हुआ। पत्नी अपनी महिमा में सदैव अटल रहती थी। यथासमय पत्नी के एक लड़का पैदा हुआ। पत्नी पुत्र-प्रसव करने के पश्चात् उसे गंगा में ले जाकर बहा आई। महाराज शांतनु हृदय थामकर रह गए। इसी प्रकार एक-एक करके सात बालकों को देवीजी ने गंगा में बहाया। शांतनु हर बार पत्नी का मुंह देखकर रह जाते थे। प्रिया को बहुत प्यार करते थे, और फिर प्रतिज्ञा-बद्ध भी थे, इसलिये उसकी स्वतंत्रता में कभी बाधा नहीं दी। चुपचाप पुत्र-स्नेह की पीड़ा पत्नी-स्नेह के कारण सहते गए। धीरे-धीरे रानी के आठवां गर्भ हुआ। महाराज शांतनु के हृदय को पुत्रों का नाश देख-देखकर सख्त चोट लग चुकी थी। जब आठवां पुत्र हुआ, और रानी उसे लेकर गंगा की ओर चली, तो महाराज ने हाथ पकड़कर कहा—"देखो, अब इसे तो जीने दो। तुम्हारी इस हृदय-हीनता को देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।"

रानी इतना सुनकर हँस दी। कहा—"राजन्, आपको पुत्र-स्नेह है, तो लीजिए, मैं आपके स्नेह में बाधक न होंगी। आप इतिहास नहीं जानते।

पहले मैं आपको बतला देना चाहती हूँ, आपका मेरा संबंध आज से समाप्त होता है, अब आज से आप मुझे पत्नी-रूप से प्राप्त न कर सकेंगे; केवल पुत्र की रक्षा में मैं सहायक रहूँगी।"

महाराज प्रेयसी रानी की यह बात सुनकर दंग रह गए। अब वह स्वतंत्रा नायिका की तरह उन्हें छोड़कर चली जायगी, सुनकर सोचने लगे—"क्या इसके हृदय में मेरे साथ इतने दिनों तक के सहवास का कुछ भी असर न हुआ कि पति के प्रति इसकी अनुरक्ति बढ़ती? क्या इसने मेरे साथ जो मधुर संबंध रखा था, वह केवल आडंबर-मात्र था।"

महाराज को सोच-विचार में पड़ा देख रानी बोली—"महाराज, मैं मानवी नहीं, जो काम-वश हो आपके पास आती। मुझे शंभु-जटा-विभूषण-मणि गंगा कहते हैं। जिन लड़कों को मैंने जीवित प्रवाह कर दिया है, वे आपके पुत्र नहीं, शाप-भ्रष्ट वसु हैं। मैं उनको जन्म देकर शाप से मुक्त करने के लिये यहाँ आई थी। यह आठवाँ वासव द्यु है। इसी के अपराध से आठों वसुओं को दंड भोगना पड़ा था। लीजिए, इसकी रक्षा कीजिए। मैं अब इसे लेकर जाती हूँ। समय पर आपको यह पुत्र मिल जायगा। अभी इसके पालन-पोषण की चिंता आपको न करनी होगी।"

★ सत्यवती और भीष्म

अद्रिका नाम की एक अप्सरा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर यमुना में मछली होकर रहती थी। राजा उपरिचर के वीर्य को खाकर वह गर्भवती हो गई। इसे मछुओं ने पकड़ा और पेट चीरा, तो एक बालक और बालिका निकली। यह खबर राजा उपरिचर को मिली, तो बड़े चकित हुए, और बालक को अपने यहाँ ले गए। यही बालक बाद को मत्स्य-नामक प्रसिद्ध राजा हुआ। बालिका का नाम पहले मत्स्यगधा था, फिर वही सत्यवती कहलाई। यमुना के किनारे इसके रक्षक पिता का निजी मकान था। वहाँ रहकर अपूर्व रूप और यौवन का उसमें प्रकाश फैला। कभी-कभी पिता के न रहने या किसी काम में लगे होने पर स्वयं यात्रियों को गगा-पार ले जाती थी। इसी समय एक बार पराशर ऋषि यमुना-पार होने के लिये आए। सत्यवती उन्हें पार उतारने गई। पराशर की उससे भोग करने की इच्छा हुई। उसने ऋषि की इच्छा पूरी की। इसी से व्यासदेव की उत्पत्ति हुई। पहले मत्स्यगधा की देह से मछली की बू आती थी। ऋषि की इच्छा पूरी करने के बाद, उनके वर से, उसकी देह से एक योजन तक सुगंध निकलने लगी। इससे इसका नाम योजनगधा हुआ। इसके आत्मज व्यास ईश्वर के अवतारों में गण्य हुए। महाभारत की उन्हीं ने रचना की।

एक दिन महाराज शांतनु मृगया करते हुए गगा के तट पर पहुँचे, तो देखते हैं, वहाँ का समस्त दिङ्मडल शरों से ढका हुआ है। उनके निकटवर्ती होने पर बालक देवव्रत ने अपनी आजन्म शक्ति से पहचान लिया, परंतु सोचा कि माता को चलकर यह संवाद दूँ, नहीं तो पिताजी मुझे पहचान न सकेंगे। यह सोचकर, देवव्रत अंतर्धान होकर माता के पास गए, और उनसे पिता के आगमन का सारा हाल कहा। श्रीगगाजी देवव्रत को साथ लेकर महाराज शांतनु के पास आईं, और मुस्किराती हुई बोलीं—"महाराज, शर-जाल से अतरिक्ष को समाच्छन्न करनेवाला यह आप ही का आत्मज देवव्रत है। अब यह शस्त्र और शास्त्रों में निपुण हो गया है। वशिष्ठ, परशुराम आदि महदाधार गुरुजनों से मैंने इसे शिक्षा दिलाकर सुयोग्य कर दिया है। अब आप इसे अपनी राजधानी ले जा सकते हैं।" यह कहकर गगादेवी ने देवव्रत का हाथ पिता को पकड़ा दिया, फिर अदृश्य हो गईं।

पहले मैं आपको बतला देना चाहती हूँ, आपका मेरा संबंध आज से समाप्त होता है, अब आज से आप मुझे पत्नी-रूप से प्राप्त न कर सकेंगे; केवल पुत्र की रक्षा में मैं सहायक रहूँगी।"

महाराज प्रेयसी रानी की यह बात सुनकर दंग रह गए। अब वह स्वतंत्रा नायिका की तरह उन्हें छोड़कर चली जायगी, सुनकर सोचने लगे—"क्या इसके हृदय में मेरे साथ इतने दिनों तक के सहवास का कुछ भी असर न हुआ कि पति के प्रति इसकी अनुरक्ति बढ़ती? क्या इसने मेरे साथ जो मधुर संबंध रक्खा था, वह केवल आडंबर-मात्र था।"

महाराज को सोच-विचार में पड़ा देख रानी बोली—"महाराज, मैं मानवी नहीं, जो काम-वश हो आपके पास आती। मुझे शंभु-जटा-विभूषण-मणि गंगा कहते हैं। जिन लड़कों को मैंने जीवित प्रवाह कर दिया है, वे आपके पुत्र नहीं, शाप-भ्रष्ट वसु हैं। मैं उनको जन्म देकर शाप से मुक्त करने के लिये यहाँ आई थी। यह आठवाँ बालक द्यु है। इसी के अपराध से आठों वसुओं को दंड भोगना पड़ा था। लीजिए, इसकी रक्षा कीजिए। मैं अब इसे लेकर जाती हूँ। समय पर आपको यह पुत्र मिल जायगा; अभी इसके पालन-पोषण की चिंता आपको न करनी होगी।"

अद्रिका नाम की एक अप्सरा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर यमुना में मछली होकर रहती थी। राजा उपरिचर के वीर्य को खाकर वह गर्भवती हो गई। इसे मछुओं ने पकडा और पेट चीरा, तो एक बालक और बालिका निकली। यह खबर राजा उपरिचर को मिली, तो बड़े चकित हुए, और बालक को अपने यहाँ ले गए। यही बालक बाद को मत्स्य-नामक प्रसिद्ध राजा हुआ। बालिका का नाम पहले मत्स्यगधा था, फिर वही सत्यवती कहलाई। यमुना के किनारे उसके रक्षक पिता का निजी मकान था। वहाँ रहकर अपूर्व रूप और यौवन का उसमे प्रकाश फैला। कभी-कभी पिता के न रहने या किसी काम मे लगे होने पर स्वय यात्रियो को गगा-पार ले जाती थी। इसी समय एक बार पराशर ऋषि यमुना-पार होने के लिये आए। सत्यवती उन्हे पार उतारने गई। पराशर को उससे भोग करने की इच्छा हुई। उसने ऋषि की इच्छा पूरी की। इसी से व्यासदेव की उत्पत्ति हुई। पहले मत्स्यगधा की देह मे मछली की बू आती थी। ऋषि की इच्छा पूरी करने के बाद, उनके वर से, इसकी देह मे एक योजन तक सुगध निकलने लगी। इससे इसका नाम योजनगधा हुआ। इसके आत्मज व्यास ईश्वर के अवतारो में गण्य हुए। महाभारत की उन्हीं ने रचना की।

एक दिन महाराज शातनु मृगया करते हुए गगा के तट पर पहुँचे, तो देखते है, वहाँ का समस्त दिङ्मडल शरो से ढका हुआ है। उनके निकटवर्ती होने पर बालक देवव्रत ने अपनी आजन्म शक्ति से पहचान लिया, परंतु सोचा कि माता को चलकर यह सवाद दूँ, नहीं तो पिताजी मुझे पहचान न सकेंगे। यह सोचकर, देवव्रत अतर्धान होकर माता के पास गए, और उनसे पिता के आगमन का सारा हाल कहा। श्रीगंगाजी देवव्रत को साथ लेकर महाराज शांतनु के पास आई, और मुस्किराती हुई बोली—"महाराज, शर-जाल से अतरिक्ष को समाच्छन्न करनेवाला यह आप ही का आत्मज देवव्रत है। अब यह शस्त्र और शास्त्रों में निपुण हो गया है। वशिष्ठ, परशुराम आदि महदाधार गुरुजनों से मैंने इसे शिक्षा दिलाकर सुयोग्य कर दिया है। अब आप इसे अपनी राजधानी ले जा सकते हैं।" यह कहकर गगादेवी ने देवव्रत का हाथ पिता को पकड़ा दिया, फिर अदृश्य हो गई।

महाराज शांतनु देवव्रत को अपनी राजधानी ले आए, और उन्हें युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया। उनका प्रजाजनों से बड़ा मधुर व्यवहार होता था। उच्च, नीच, ब्राह्मण-चांडाल, धनी-गरीब, सबको वह एक ही दृष्टि से देखते थे। कभी विचार में पक्षपात नहीं किया। इससे वह थोड़े ही समय में प्रजाजनों को प्राणों से भी प्यारे हो गए। उनका उज्ज्वल अनुकरणीय चरित्र घर-घर प्रशंसा पाने लगा। वाणिज्य, व्यवसाय, शिक्षा, रण-कौशल आदि राज्य के आवश्यक सभी अंगों की उन्होंने श्री-वृद्धि की। देखते-देखते वर्षा के बादवाली शस्य-श्यामला भूमि की तरह उनकी राजधानी लहलही हो गई।

एक दिन महाराज शांतनु शिकार करने के लिये यमुना के किनारे गए। दूर से एक विचित्र प्रकार की सुगंध उन्हें मिली। ऐसी सुगंध राजा होकर भी उन्होंने कभी नहीं सूँघी थी। उस खुशबू की ओर खिंचकर बढ़े, तो कुछ दूर चलकर देखा, एक बड़ी ही सुंदरी, रूप और यौवन की प्रतिमा-जैसी युवती उन्हें देख पड़ी। पता लगाने पर उन्हें मालूम हुआ कि वह धीवर की कन्या है।

महाराज शांतनु को बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह गोरी लड़की मछुए की कैसे हो सकती है। महाराज ने स्वयं उस कन्या से पूछा। उसने उत्तर में ऐसा ही कहा कि वह मछुए की लड़की है। उसके रूप और लावण्य पर महाराज तन-मन से आसक्त हो गए, और उसके पिता के पास जाकर बोले—"मैं उससे विवाह कर अपनी रानी बनाना चाहता हूँ।"

धीवर महाराज की बात सुनकर गंभीर हो गया। बोला—"महाराज, मेरी कन्या का आप पाणि-ग्रहण करना चाहते हैं, इससे बड़ी और कौन मेरे सौभाग्य की बात होगी! पर, यदि आप यह अंगीकार करें कि मेरी कन्या से जो लड़का होगा, वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा, तो मैं खुशी से अपनी कन्या आपको विवाह दे सकता हूँ।" मछुए की बात सुनकर महाराज शांतनु स्तब्ध हो गए। उन पर जैसे वज्रपात हुआ। वह जैसे सत्यवती के प्रेम-पाश में बँध चुके थे, वैसे देवव्रत से भी अपार स्नेह करते थे, इसलिये मछुए की बात का कुछ भी उत्तर न दे चुपचाप अपनी राजधानी को लौट आए। ब्रह्मचारी, महावीर देवव्रत ने देखा, पिता कुछ दिनों से मुरझाए हुए रहते हैं, उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। पिता

की सेवा पुत्र का पहला धर्म है, यह विचारकर एक दिन उन्होंने पिता से उदास रहने का कारण पूछा। पिता देवव्रत को बहुत प्यार करते थे। पुनः समर्थ पुत्र के सामने कोई पिता अपनी वासना-जन्य पुनर्विवाह का प्रसंग नहीं उठा सकता। इसलिये महाराज शांतनु ने कहा—"बेटा, तुम बड़े हो गए हो, तुम्हारी उन्नति में कोई बाधा न पड़े, यही चिंता हमें रहती है।"

देवव्रत पिता को प्रणाम कर चले आए, पर हृदय में उथल-पुथल जारी रही। किससे पूछें, विचार करते हुए मंत्री के पास गए। उस शिकार में मंत्री भी महाराज के साथ थे। उन्होंने सोचा, पिता के सेवक पुत्र से सच्ची घटना का छिपाना पाप है; क्योंकि ऐसा ही पुत्र पिता के ऐसे दर्द की दवा कर सकता है। बोले—"राजकुमार, आप जैसे वीर, विद्वान् और लोकाचार में पटु हैं, वैसे ही तेजस्वी, ब्रह्मचारी और पिता के परम भक्त पुत्र हैं, मैं आपके पिता की व्याधि के उपशम होने के विचार से आपसे विनय करता हूँ। महाराज के कोई व्याधि नहीं, उन्हें केवल काम-ज्वर है। विवाह द्वारा यह व्याधि दूर हो सकती है। पर इसमें कुछ ऐसा प्रसंग आ पड़ा है कि महाराज को विवाह करने पर भी तुम्हारे कारण कष्ट होगा।" यह कह मंत्री कुछ काल के लिये मौन हो गए।

इससे देवव्रत की व्याकुलता बढ़ गई। वह बोले—"आप जल्द बतलाने की कृपा करें कि मैं इस प्रसंग में किस प्रकार हूँ, जो महाराज को मेरे कारण कष्ट होगा?"

मंत्री ने मुस्किराकर कहा—"आप-जैसे पुत्र को इसके जानने के लिये इतनी उतावली ठीक ही है। महाराज यमुना के तट पर सत्यवती नाम की एक धीवर-कन्या के रूप और यौवन को देखकर मुग्ध हो गए हैं, उससे विवाह करना चाहते हैं, धीवर राज़ी भी है; पर वह कहता है, मेरी कन्या के गर्भ से जो पुत्र होगा, वही राजा होगा, यदि महाराज ऐसी प्रतिज्ञा करें, तो मैं विवाह कर देने को सम्मत हूँ। महाराज को तुम्हारा भी ध्यान है। वह धर्म-विरुद्ध ऐसा कार्य कर नहीं सकते; क्योंकि तुम बड़े लड़के हो। तुम्हारे लिये उनका स्नेह भी सत्यवती के प्रेम से घटकर नहीं। इसी कारण वह उभय संकट में पड़े हुए आजकल मुरझाते जा रहे हैं।" कहकर मंत्री चुप हो गए।

देवव्रत ने कहा—"आप मुझे वह स्थान ठीक तौर से बतला दें मैं

पिता के काम-ज्वर का प्रशम कर दूँगा। मैं उनका पुत्र हूँ। उनका संतोष ही मेरा सुख, सौभाग्य और धर्म है।"

यथासमय राजकुमार देवव्रत यमुना के तट पर गए। सत्यवती के पिता से मिले। राजकुमार के साथ साक्षी के तौर पर राज्य के और भी कई प्रधान कर्मचारी थे। उन्होंने धीवर से कहा—"महाराज शांतनु के साथ आप अपनी कन्या का विवाह कर दें। मैं राज्य का उत्तराधिकारी न बनूँगा।"

धीवर बोला—"हे कुमार, विवाह करने के लिये तो मैं पहले से सम्मत हूँ, पर मुझे आपके वचन पर विश्वास नही होता, क्योंकि आपको युद्ध में जीतने की शक्ति दूसरे में नहीं। मैं घबराता हूँ कि कही आप आगे चल-कर अपनी कही हुई बात से टल गए, तो मेरी कन्या के पुत्र का क्या होगा।"

धीवर के अविश्वास पर महातेजस्वी देवव्रत का मुख तपस्या की दिव्य ज्योति से जगमगा उठा। उनकी ओर देखकर धीवर की आत्मा में भी श्रद्धा पैदा हुई। वहाँ के समस्त जन स्तब्ध भाव से उन्हे देखने लगे। परम ब्रह्मचारी देवव्रत ने कहा—"धीवरराज ! समस्त प्राणियो में भास्वर आत्मा को, सूर्य-चंद्रग्रह-नक्षत्रों से चमत्कृत सृष्टि को साक्षी मानकर कहता हूँ, मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा, पिता के सिंहासन पर तुम्हारी कन्या के पुत्र का अधिकार होगा। मैं सदैव उस महाराज की सेवा मे तत्पर रहूँगा। प्रकृति का कोई पदार्थ अपने भाव को बदलकर दूसरा भाव ग्रहण करे, पर मैं कभी अपनी प्रतिज्ञा से न डिगूँगा।"

सत्यव्रत की यह प्रतिज्ञा सुनकर पितृभक्ति की पराकाष्ठा से वहाँ के सभी लोग मंत्र-मुग्ध होकर उन्हें देखने लगे। इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण उसी दिन से उनका नाम संसार मे भीष्म प्रसिद्ध हुआ।

उन पर प्रसन्न होकर धीवरराज ने अपनी कन्या सत्यवती को उनके सिपुर्द कर, बड़ी नम्रता से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा—"हे महावीर ब्रह्मचारी ! यह लो, तुम्हारी इस माता का संपूर्ण उत्तरदायित्व मैं तुम्हें अर्पण कर निश्चित होता हूँ। मुझे अब अणु-मात्र शंका नही रही।"

राजधानी हस्तिनापुर पहुँचकर महावीर भीष्म ने सत्यवती को पिता के हाथ अर्पित किया। वहाँ शास्त्रानुसार इसके साथ महाराज शांतनु का

विवाह हुआ। पुत्र की इस कीर्ति से उन्हें हार्दिक संतोष हुआ, उनकी वासना तृप्त हुई। कालांतर में सत्यवती से दो कुमार हुए—चित्ररथ और विचित्रवीर्य। इसके बाद महाराज शांतनु का स्वर्गवास हुआ। भीष्म ने भाइयों की शिक्षा का पूरा प्रबंध किया। पारंगत पंडितों को बुलाकर उन्हें शिक्षा दी। दोनों धीरे-धीरे जवान हो चले। इसी समय गंधर्वराज ने राजधानी पर आक्रमण किया। चित्ररथ इस युद्ध में मारे गए।

★ विचित्रवीर्य का विवाह : धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म

चित्ररथ की मृत्यु से विधवा सत्यवती को बड़ी चिंता हुई। परंतु महामना भीष्म ने माता को धैर्य दिया। वह संसार को नश्वर सोचकर, आँसू पोछकर चुप रहीं। छोटा पुत्र विचित्रवीर्य उनका सहारा हुआ। भीष्म को विचित्रवीर्य के विवाह की चिंता हुई। इसी समय काशीराज की कन्याओं का स्वयंवर था। निमंत्रण हस्तिनापुर भी गया था। भीष्म विचित्रवीर्य को लेकर काशी गए।

सभा की बड़ी सजावट थी। तोरण, वितान, पताका, कलश, वंदनवार आदि से काशी की गली-गली में स्वयंवर की सूचना थी। सभा का दृश्य और भी मनोहर था। सुसज्जित, विशाल मंडप में देश-देश के राजाधिराज आकर एकत्र हुए थे। रत्नों, वस्त्रालंकारों तथा अस्त्र-शस्त्रों की प्रभा से सभा जगमगा रही थी। महावीर भीष्म भी एक तरफ़ जाकर बैठ गए। यथा समय राजकुमारियाँ—अंबा, अंबिका और अंबालिका—मंडप में पधारीं। रूप की किरणों से सभा के सभ्यों की आँखें खुल गईं। कन्याएँ जयमाला लिए हुए एक दूसरी की तरफ देखती हुई चलीं, तो भीष्म ने सोचा, कहीं ऐसा न हो कि ये किसी दूसरे के गले में माला छोड़ दें, तो यहाँ का आना व्यर्थ हो जाय। यह सोचकर वह उठे, और तीनों कन्याओं को पकड़कर रथ पर बैठा लिया।

राजाओं ने इसे अपमान समझा, और सम्मिलित होकर भीष्म के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। जहाँ पहले शृंगार का दृश्य था, वहाँ घोर रण-कोलाहल उठने लगा। चारों दिशाएँ अस्त्र-शस्त्र से चमकने लगीं।

रथों की घरघराहट गूँजने लगी। परंतु महावीर भीष्म ने सम्मिलित सभी राजाओं को परास्त कर दिया, और कन्याओं को हस्तिनापुर लेकर पहुँचे।

वहाँ महारानी सत्यवती से परामर्श कर विचित्रवीर्य से तीनों कुमारियों का विवाह करने का निश्चय हुआ, परंतु अंबा ने विनय-पूर्वक भीष्म से कहा—"हे वीर श्रेष्ठ, आपने बल से मेरा हरण तो किया, पर धर्म के विचार से मैं किसी दूसरे को वरण नहीं कर सकती। पहले से ही शल्व-राज को मैं पति-रूप से स्वीकार कर चुकी हूँ। उनकी भी सम्मति मुझे प्राप्त हो चुकी है। मेरे पिता की भी इससे सहानुभूति थी।"

अंबा की इस बात से महावीर भीष्म ने बड़ी इज्जत से उसे शल्वराज के पास भेजवा दिया, परन्तु दूसरे से हरण की हुई होने के कारण शल्व-राज ने उससे विवाह करने से इनकार कर दिया। इससे अंबा को बड़ा दुःख हुआ। भीष्म के प्रति उसका क्रोध भी हुआ। दूसरा उपाय न देखकर प्रतिकार के लिये वह अपने वनवासी, तपस्वी नाना होत्रवाहन की सलाह से भीष्म के गुरु परशुराम के पास गई। उसकी दुःख-कथा सुनकर परशु-राम को बड़ा क्रोध हुआ। वह भीष्म के पास उसे लेकर आए, और विवाह करने के लिये कहने लगे। भीष्म ने गुरु का बड़ा आदर-सत्कार किया, और निवेदन किया कि ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा करने के कारण वह अब किसी कुमारी का पाणि-ग्रहण नहीं कर सकते। परशुराम ने गुरु-आज्ञा के तौर पर फिर भी ज़ोर डाला, और कहा कि विवाह किए बिना उनका कार्य शास्त्र के विरुद्ध होगा, क्योंकि उन्होंने अंबा का हरण किया है। पर भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। भीष्म के इस कार्य से परशुराम को क्रोध आ गया। उन्होंने भीष्म को युद्ध के लिये आवाहन किया। गुरु और ब्राह्मण जानकर भीष्म लड़ने से पहले इनकार करते रहे, पर जब पीछा न छूटा, तब अस्त्र-शस्त्र लेकर मैदान में आ डटे। घोर युद्ध छिड़ा। परशुराम ने भीष्म को मारने के लिये दिव्यास्त्र संधान किया। भीषण अस्त्र को देखकर महावीर भीष्म ने भी उसी के जोड़ का अमोघ शर धनुष में जोड़ा। दोनों के संघर्ष से सृष्टि का नाश हो जायगा, ऐसी शंका कर देवता भीष्म के पास गए, और कहा—"आप विरत हों, और हार स्वीकार कर लें, क्योंकि परशुराम आपके गुरु हैं। गुरु से हारना हार नहीं।" पर भीष्म ने कहा—"कुछ भी हो, मैं हार नहीं स्वीकार कर सकता। क्योंकि मैं क्षत्रिय हूँ।

क्षत्रिय के लिये इससे बड़ा कलंक दूसरा नहीं। सृष्टि रहे या न रहे।" भीष्म से निराश होकर देवता परशुराम के पास गए, और विनय की। देवताओं पर दया कर, सृष्टि को बचाने के निमित्त, परशुराम ने हार स्वीकार कर ली, पर साथ-साथ प्रतिज्ञा की कि वह किसी क्षत्रिय को अस्त्र-विद्या की शिक्षा न देंगे।

अंबा निराश हो गई। उसका बदला न चुका। अपमान करनेवाले भीष्म को क्षत्रिय की कन्या होकर वह किसी तरह परास्त न कर पाई, इस खेद से शंकर की तपस्या करने लगी। भगवान् शंकर ने उसे आशीर्वाद दिया कि दूसरे जन्म में वह भीष्म के वध का कारण कहलाए। वर प्राप्त कर अंबा वहीं चिता लगाकर जल गई। फिर वह राजा द्रुपद के यहाँ पैदा हुई। उसका नाम शिखंडिनी रक्खा गया। एक दानव के वर से वह कन्या से पुरुष हुई।

अंबिका और अंबालिका का विवाह विचित्रवीर्य से हुआ। विचित्रवीर्य के यौवन के दिन बड़े सुख से बीतने लगे। उत्तरोत्तर उनकी भोग-वासना बलवती होती गई। इस कारण स्वास्थ्य भी क्रमशः क्षीण हो चला। धीरे-धीरे रुग्ण होकर वह नश्वर संसार से सदा के लिये विदा हो गए। उनकी दोनों पत्नियाँ विधवा हो गईं।

दीर्घकाल शोक के पश्चात् महारानी सत्यवती को वंश-रक्षा की चिंता हुई। भीष्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। अब क्या किया जाय, ऐसा सोचकर नियोग की इच्छा से उन्होंने अपने पहले पुत्र वेदव्यास को बुलाया। अंबिका और अंबालिका नियोग के लिये राजी नहीं हो रही थी। बड़ी मुश्किल से वंश-रक्षा के लिये कहना माना; परंतु हृदय में एक धड़कन बनी रही। जटाधर, महातपस्वी श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासदेव को अपने पास आते देखकर अंबिका ने आँखें मूँद लीं। इससे नाराज होकर व्यासदेव ने कहा कि इसके व्यवहार के अनुसार इसका लड़का अंधा होगा। फिर वह अंबालिका के पास गए। अंबालिका भी व्यासजी का काला, भयावना चेहरा देखकर पीली पड़ गईं। इसका भी यह स्वागत करना देखकर व्यासजी प्रसन्न नहीं हुए। बोले, इसका लड़का पांडुरोग से ग्रस्त होगा। इन पुत्रों को क्षीणांग देखकर सत्यवती ने फिर व्यासजी को बुलाया। इस बार कोई बहू नहीं गई। एक दासी को उत्तम वस्त्र पहनाकर भेज

करने लगे। मद्र-राज की विदुषी कुमारी माद्री से भी कुछ दिनों बाद पांडु का विवाह हुआ।

महामति भीष्म ने विदुर का भी खयाल नहीं छोड़ा था। विदुर यद्यपि दासी-पुत्र थे, फिर भी उसी लाड-प्यार से पले थे, जिससे धृतराष्ट्र और पाडु। इनकी शिक्षा अपर दोनो भाइयों की अपेक्षा मार्जित थी। यह धर्म-शास्त्र तथा नीति-शास्त्र के पूर्ण पडित थे। इनका पालन-पोषण बिल्कुल राजकुमारो का-सा हुआ था। इनसे राजकार्य की परिचालना मे भीष्म को बड़ी सहायता मिलती थी। इनकी प्रखर बुद्धि देखकर भीष्म हृदय से इन्हे प्यार करते थे। सुबल के राजा देवकी सुदरी कन्या पारा-शवी के साथ इनका विवाह भी भीष्म ने कर दिया।

★ वंश-विस्तार और पांडु

कहा जा चुका है कि धृतराष्ट्र अंधे थे, इसलिये पांडु सिंहासन पर बैठे थे। उनका पांडु-रोग ऐसा न था कि शरीर को हानि पहुँची हो। वह लड़ने-भिड़ने में पूर्ण रीति से सक्षम थे। महावीर भीष्म की अनुमति लेकर वह दिग्विजय के लिये चतुरंगिनी सेना के साथ बाहर निकले, और भारत के दूसरे समस्त देशों को अपने अधिकार मे कर लिया। उनसे कर लेकर प्रसन्न-चित्त अपनी राजधानी लौटे। भीष्म ने पांडु की इस वीरता की प्रशंसा की। अब हस्तिनापुर देश के सभी राज्यों में श्रेष्ठ हो गया। यहाँ के राजा की सम्राट् या राजचक्रवर्ती की उपाधि हुई।

अपने उत्कर्ष में प्रसन्न पांडु एक बार वन मे शिकार खेल रहे थे। उन्होंने एक हिरन का जोडा दूर से देखा, और तीर मारा। उस समय दोनो विहार कर रहे थे। तीर लगते ही हिरन आर्त-स्वर से चिल्लाया। उसकी आवाज मनुष्य की आवाज-जैसी थी। पांडु उसके पास दौड़कर आए तो मालूम हुआ, ये दोनो ऋषि और ऋषि-पत्नी मृग-रूप से विहार कर रहे थे। घायल मृग-रूपी ऋषि से हाथ जोड़कर पाडु अपने अज्ञान-कृत अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगे। उस शर-विद्ध ऋषि ने कहा—"महाराज, यह सच है कि आपने जान-बूझकर ब्रह्महत्या नही की, फिर भी आपको विहार करते हुए मृग का वध नही करना था। आपको इसका

फल अवश्य भोगना होगा। आप भी इसी प्रकार वन में विहार करके पंचत्व को प्राप्त होंगे।" यह कहकर ऋषि स्वर्गलोक प्रस्थान कर गया।

महाराज पांडु तब से खिन्न तथा चिंता-ग्रस्त रहने लगे। उन्होंने राज-पाट का सारा काम छोड़ दिया। जंगल में रानियों-सहित एकांत-वास करने लगे। इस समय राज्य का भार धृतराष्ट्र ने ग्रहण किया। बहुत दिन हो गए। एक बार शतशृंग के महर्षि स्वर्ग-यात्रा कर रहे थे। पांडु से भी चलने के लिये कहा, पर बाद को उन्होंने पांडु को निस्संतान जानकर लौटा दिया। पांडु को जब यह मालूम हुआ कि बिना संतान के कोई स्वर्ग नहीं जा सकता, तब उनका कष्ट और बढ़ गया, पर संतान की इच्छा-पूर्ति अपने अधीन नहीं। उन्हें खिन्न देखकर एक दिन कुंती ने अपने वरवाली बात उन्हें सुनाई। पांडु को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने देवता के आवाहन से पुत्रोत्पत्ति के लिये कुंती को प्रसन्नता-पूर्वक आज्ञा दे दी। पति की आज्ञा शिरोधार्य करके कुंती ने धर्मराज का आवाहन किया। उनसे युधिष्ठिर की उत्पत्ति हुई। फिर पवन को आमंत्रित किया, उनसे भीम पैदा हुए। इसके बाद इंद्र का स्मरण किया। इंद्र से अर्जुन भूमिष्ठ हुए।

एक बार व्यासदेव हस्तिनापुर पधारे। महारानी गांधारी ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। गांधारी के आतिथ्य से प्रसन्न होकर व्यासदेव ने एक सौ पुत्र होने का वर दिया। महारानी गांधारी के गर्भ तो महारानी कुंती से पहले हुआ, पर वह दो साल तक स्थायी ही रहा। लड़का न हुआ। इसी समय महारानी कुंती के पुत्र होने का समाचार हस्तिनापुर पहुँचा। इस संवाद से गांधारी को बड़ा क्षोभ हुआ कि अब कुंती का पुत्र सिंहासन का अधिकारी होगा। इस क्षोभ में उन्होंने पेट में कसकर एक ऐसा घूंसा मारा कि गर्भ-पात हो गया। तब तक गर्भ के बालक के अंग न बने थे। इस पिंड को नदी में फेंकने की तैयारियाँ हो रही थीं कि वहाँ महातपस्वी व्यासदेव का फिर शुभागमन हुआ। व्यासदेव ने पिंड के सौ भाग किए, जिनकी गिनती में एक भाग और हो गया। फिर उतने ही घड़े मँगवाकर, उनमें घी भरकर, एक-एक घट रखकर एकांत में रखवा दिया। दो वर्ष बाद उन्हीं से एक सौ पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्रों के साथ एक कन्या दुःशला गांधारी के

गर्भ से इस प्रकार पैदा हुए। धृतराष्ट्र की एक और पत्नी थीं। उनसे युयुत्सु नाम का बालक हुआ।

उधर दो पुत्र माद्री से हुए, नकुल और सहदेव। इस प्रकार धृतराष्ट्र का वंश प्राचीन कौरव नाम से प्रसिद्ध हुआ, और पांडु के पुत्र पांडव कहलाए।

पुत्रों के मुख देखकर पांडु प्रसन्न रहने लगे। उनका मनोभाव बदल गया। शाप की बात भी सुख के दिनों में याद न रही। इसी समय एक बार वन में वसंत-ऋतु का राज्य था, लता-द्रुम नए पल्लवों से लह-लहे हो रहे थे, नए-नए फूलों से वन्य श्री की अपार शोभा थी, आकाश और पृथ्वी एक नए जादू से रँगे हुए दिखाई पड़ते थे, मंद-मंद समीर बहकर हृदय को शीतल कर रही थी, पक्षी कलकंठों से वासंतिक रागिनी गा-गाकर ऋतुराज का स्वागत कर रहे थे, झरने मधुर, मंद स्वर से झर-झर बहते हुए वन-प्रांत से होकर निरुद्देश हो रहे थे। शृंगार की छवि प्रकृति के हर दृश्य पर अंकित थी। महाराज पांडु इस शुभ मुहूर्त मे माद्री के साथ वन-विहार के लिये निकले। वन की श्री से पूर्ण शोभा को देखकर प्रिया से युक्त महाराज पांडु ने माद्री को प्रेम की दृष्टि से देखा। शापवाली बात माद्री को याद थी। पति की भावना को लक्ष्य कर माद्री का हृदय शंका से काँपने लगा। पर लाज तथा संकोच के कारण वह कुछ कह न सकी, केवल बातो मे बहलाकर वन्य श्री की तारीफ करती हुई कि महाराज, यह फूल देखिए—कैसा खिला है, वह लता देखिए, पेड़ से कैसी लिपटी हुई है—पेड़ ही बेचारी की रक्षा का कारण है, टालती रही। पर काम की उत्तेजना टलनेवाली नहीं होती। महाराज बलात् माद्री से विहार करने लगे। पश्चात् वहीं उनका प्राणांत हो गया। तमाम राज्य में इस खबर से शोक की काली घटा छा गई। सहस्रों आँखों से दुःख के आँसू झरने लगे। माद्री और कुंती के दुःख का क्या कहा जाय? पति के शव के साथ महारानी कुंती सहमरण के लिये तैयार हुई, पर रानी माद्री रोती हुई बोली—"दीदी, संसार से मैं बिलकुल अनजान हूँ, आप बालकों की रक्षा कीजिए। महा-राज की मृत्यु मेरे कारण हुई है, इसलिये मैं ही महाराज के साथ जाऊँगी।" यह कहकर रानी माद्री पति की चिता पर सती हो गईं। राजमाता सत्य-वती इस दुःख से महारानी अंबिका और अंबालिका को लेकर वन में तपस्या करने चली गईं।

★ कौरव और पांडव

धीरे-धीरे कौरव और पांडव एक सौ पांचों भाई महामना पितामह भीष्म की देख-रेख में पलते हुए बड़े हो चले। इनका शैशव-काल राजमहल में अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं में, माताओं की स्नेह-गोद में, बीता। अब ये बाल्य के प्रथम चरण में आ पहुँचे, और खेलते हुए राजधानी के प्रांत भाग में भी चले जाया करते थे। इनकी दो टुकड़ियाँ स्वभावतः रक्त के प्रभाव के अनुसार थीं। एक सौ कौरव एक में सम्मिलित थे, और पाँच पांडव एक में। दुर्योधन कौरवों का सरदार था, और युधिष्ठिर पांडवों के। इनको बढ़ते हुए देखकर पितामह भीष्म को इनकी शिक्षा-दीक्षा की चिंता हो चली।

एक दिन नगर के प्रांत भाग में ये सब भाई गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते गेंद कुएँ में गिर गया। सब लड़के हताश होकर कुएँ की जगत पर खड़े हुए नीचे झाँक-झाँककर देख रहे थे। इस समय एक कृष्णकाय, तेजस्वी पुरुष उधर से आते हुए देख पड़े। लड़कों की हताश भाव से कुएँ के नीचे झाँकते देखकर उन्होंने कारण पूछा। लड़कों ने कहा, हमारा गेंद गिर गया है। ब्राह्मण ने हँसकर अव्यर्थ शस्त्र-चालना द्वारा गेंद को बाहर निकाल लिया। राजकुमार प्रसन्न हो उन्हें पितामह भीष्म के पास तारीफ़ करने तथा पुरस्कार दिलवाने के लिये ले चले। पितामह को घेरकर लड़कों ने ब्राह्मण की बड़ी तारीफ़ की। महावीर भीष्म पहले से राज-कुमारों की शिक्षा के लिये एक अच्छे आचार्य की तलाश में थे। द्रोण को देख, उन्होंने प्रणाम कर बड़े आदर से अपने पास बैठाया, फिर उनकी कुशल पूछी।

द्रोण ने कहा—"हे महात्मन्! मैं आजीविका की खोज में भटकता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। मैंने आर्य परशुराम से दिव्य अस्त्र-शिक्षा प्राप्त की है। वह जब अपना धन ब्राह्मणों को दान कर रहे थे, तब मैं उनके पास देर से पहुँचा। तब तक वह अपना सर्वस्व दे चुके थे। मैंने उनसे अस्त्र-शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने मुझे जो दिव्यास्त्र प्रदान किए हैं, मैं उनके बल पर जीविकोपार्जन का प्रयत्न करके भी सफल नहीं हो सका। आप कृपाचार्य को जानते हैं, जो शरद्वान के पुत्र होकर, आप ही के आश्रय में पलकर पुष्ट हुए

है। उनकी बहन कृपी मेरी धर्मपत्नी है। एक पुत्र भी अश्वत्थामा नाम का है। हम लोग अत्यंत दरिद्र हैं। एक बार अश्वत्थामा ने पड़ोस के बालकों को दूध पीते देखकर, घर आकर दूध माँगा। हमारे गऊ न थी। हमें प्रयत्न करने पर भी गऊ न मिली। बालकों ने अश्वत्थामा को बेवकूफ बनाने के विचार

से आटा घोलकर, दूध कहकर, पिलाया। बालक अश्वत्थामा उसी के स्वाद से मग्न होकर नृत्य करने लगा, देखकर, बालक तालियाँ पीटकर हँसने लगे। मुझे अपनी बेबसी का बड़ा दुःख हुआ। दरिद्र होने के कारण मेरी जातिवाले ब्राह्मण भी मुझे छोड़ चुके थे। सहायता की एक सूरत मुझे याद आई। द्रुपद मेरा सहपाठी था। मैंने सोचा, मित्रता का विचार कर मैं उसके यहाँ गया, पर उसने कहा—"मित्रता राजा राजा की होती है,

राजा और रंक की नहीं। इस प्रकार मेरा अपमान कर उसने मुझे चले आने को विवश किया। अब यहां भाग्य ने लाकर डाला है।"

द्रोण की कथा सुनकर भीष्म ने उन्हे धैर्य दिया, कहा—"अब आपको भोजन की चिंता न करनी होगी। आज से आपको आचार्य द्रोण कहकर राजकुमार तथा राजधानी के लोग पुकारेंगे। आप इनकी अस्त्र-शिक्षा का भार ग्रहण करें।"

भीष्म ने द्रोणाचार्य को बड़े आदर से राजमहल मे टिकाकर उनके रहने तथा खर्च आदि का प्रबंध कर दूसरे घर में भेज दिया। बहुत दिनों बाद द्रोणाचार्य की किस्मत खुली। वह वीरोचित कृतज्ञता के साथ महात्मा भीष्म को धन्यवाद देकर राजकुमारों के धनुर्वेदाचार्य होकर सुख से रहने लगे।

कौरवों और पांडवों की परस्पर न बनती थी। कौरव उद्दंड थे, पांडव शांत। पाडवों की शिक्षा भी अब तक बहुत कुछ अग्रसर हो चुकी थी। दुर्योधन पांडवों में भीम से बहुत खिचा रहता था। भीम शात होने पर भी बड़े बलवान् थे। वह अकेले कभी-कभी उन सौवों की खबर लेते थे। दुर्योधन बराबर भीम को धोखा देकर नीचा दिखाने के प्रयत्न मे रहता था, पर उसकी चलती न थी। इसलिये भीम को वह प्रायः अपनी टुकड़ी मे न रखता था।

माद्री का बडा लड़का, अर्जुन से छोटा, नकुल दिन-दिन दुबला होता जा रहा था। पर किसी से अपने दुःख का कारण न कहता था। एक दिन भीम ने एकांत में बुलाकर पूछा—"क्यों रे नकुल, तू दिन-दिन दुबला क्यों होता जा रहा है? पहले तू कैसा अच्छा था, अब तो बिलकुल कुम्हला गया है।" नकुल ने रोनी आवाज में कहा—"दादा, गुलहड़ में मैं हार गया हूं। मुझे रोज दांव देना पड़ता है। वे लोग बहुत दौड़ाते हैं। अभी तक मुझे दांव नहीं मिला।"

भाई का दुःख भीम से न सहा गया। वह समझ गए कि नकुल को कौरवों की चालाकी से दांव नहीं मिल रहा। उन्होंने बड़े स्नेह से नकुल से कहा—"आज तू यहीं रह। तेरा दांव देने मैं जाता हूं।" यह कहकर भीम वहां गए। भीम को देखकर दुर्योधन वगैरह कौरवों ने कहा—"भीम नकुल को कहां छोड़ आए? वह चोर है, हमारा दांव कौन देगा?" भीम ने कहा—"अच्छा भाई, वह चोर है, तो दांव मुझसे ले लो।" सब कौरव

बहुत खुश हुए कि अब आज भीम को नाकों चने चबवाएँगे। भीम डंडा रखकर खड़े हो गए। सब कौरव इधर-उधर पेड़ों पर चढ़ गए। जब सब सतर्क हो गए, तब भीम ने एक पेड़ की डाल पकड़कर हिलाई। कई नीचे आए। छूकर सबको चोर किया। फिर खुद पेड़ पर चढ़े। मौक़ा पाकर, कूदकर डंडा चूम लिया। टाँग के नीचे से डंडा फेंका जाता है; चोर जब तक उठाकर लाता है, शाह लोग पेड़ पर चढ़ते हैं; यह कायदा है। भीम का फेंका डंडा फलाँगों की खबर लेता था। दुर्योधन से लेकर कौरवों के कई भाइयों को भीम ने उस रोज़ चोर बनाकर छकाया। इस तरह कई दिनों तक दौड़ाया। स्वयं दोबारा चोर न हुए।

भीम की ऐसी हरकतों से कौरव उनसे बहुत नाराज रहते थे। ख़ास तौर से दुर्योधन बहुत चिढ़ा रहता था। एक दिन उसने एक नई युक्ति निकाली। गंगाजी चलकर जल-केलि करने का प्रस्ताव हुआ। इस यात्रा में भीम भी आमन्त्रित किए गए। गंगा के तट पर पहले से खीमे गड चुके थे। राजकुमारों के लिये पूरा-पूरा इंतज़ाम हो चुका था। वहाँ जाकर दुर्योधन ने भीम के लड्डुओं में विष मिला दिया। जल-पान कर सब लोग जल-केलि करने लगे। भीम को धीरे-धीरे नशे से बेहोशी आने लगी। समय पर सब लोग नहाकर निकले, और अपने-अपने खीमे की तरफ़ चले। पर भीम गंगा के तट पर ही पड़े रहे। सन्ध्या का अंधकार घनीभूत हो आया। इसी समय चुपचाप भीमसेन को लता से बाँधकर दुर्योधन ने गंगा में बहा दिया। भीमसेन बहते हुए नागलोक पहुँचे। वहाँ बड़े जहरीले साँप थे। भीम को देखकर काटने लगे। उनके ज़हर से भीम का नशा उतर गया। आँखें खोलीं, तो दूसरा ही दृश्य नज़र आया। भीम ने लता-बंधन को तोड़कर नागों को मारना शुरू कर दिया। तब वे सब अपने राजा वासुकि के पास गए। पूछने पर वासुकि को मालूम हुआ कि उन्हीं के दौहित्र कुंतिभोज के दौहित्र हैं। फिर उन्होंने भीम की बड़ी सेवा की। उन्हें अमृत पिलाया। भीम को इससे दस हजार नागों का बल प्राप्त हुआ। फिर बड़े आदर से वासुकि ने भीम को विदा किया। घर में माता कुंती तथा चारों भाई रो रहे थे। सब खोजकर हैरान हो चुके थे। दुर्योधन के भाई आनंद मना रहे थे। इसी समय हँसते हुए भीमसेन हस्तिनापुर पधारे। माता तथा भाइयों के चेहरे फिर उन्हें देखकर फूलों की तरह खिल गए।

इस प्रकार आपसी झगड़े और वैमनस्य के साथ-साथ दोनों वंश के राजकुमारों की अस्त्र-शिक्षा भी होती रही। अर्जुन धनुर्वेद में सर्वश्रेष्ठ निकले। वह बड़े फुर्तीले थे। उनका तीर व्यर्थ न जाता था। बड़े से लेकर पत्ते के डंठल तक काटने का लक्ष्य वह वेध सकते थे। भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध में प्रवीण हो चले। एक दिन द्रोणाचार्य ने शिष्यों की परीक्षा ली। दूर एक डाल पर काठ की एक चिड़िया रखकर, युधिष्ठिर को धनुष-बाण देकर लक्ष्य पर सधान करने के लिये कहा। युधिष्ठिर ने सधान किया, तो आचार्य ने पूछा—"वत्स! तुम क्या देखते हो?" युधिष्ठिर ने कहा—"मैं आपको देखता हूँ, पेड़ को देखता हूँ"—युधिष्ठिर कह ही रहे थे कि द्रोणाचार्य ने उनके हाथ से तीर और धनुप छीनकर दुर्योधन को दिया। ऐसा ही जवाब दुर्योधन ने भी दिया। तब उससे भी उन्होंने धनुप ले लिया, और भीम को दिया। भीम ने भी उससे मिलता-जुलता उत्तर दिया। क्रमश: धनुप सब राजकुमारों को दिया गया। पर किसी के उत्तर से आचार्य को संतोष न हुआ। बाद को उन्होंने अर्जुन को धनुप दिया। निशाने पर अर्जुन ने ठीक-ठीक सधान किया, तो आचार्य ने उनसे भी पूछा—"वत्स अर्जुन! क्या देखते हो?" अर्जुन ने कहा—"मैं केवल चिड़िया की गर्दन देखता हूँ।" आचार्य ने तीर मारने को कहा। अर्जुन ने अचूक निशाना मारा। द्रोणाचार्य प्रसन्न होकर प्रिय शिष्य के मस्तक पर हाथ फेरने लगे।

ज्यों-ज्यों राजकुमार बड़े होने लगे, त्यों-त्यों शिक्षा भी ऊँची-से-ऊँची दी जाने लगी। अस्त्र-शस्त्रों के बाद व्यूह-रचना, सैन्य-चालना, आक्रमण करने की विधियाँ, हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों का संचालन आदि द्रोणाचार्य सप्रेम सिखलाने लगे। आचार्य का एक प्रिय शिष्य होता है। यहाँ राजकुमारों में अर्जुन द्रोण के सबसे ज्यादा प्यारे हो गए थे। इसी समय एकलव्य नाम का निषाद-राज का एक लड़का द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखने के लिये आया। पर उसे शूद्र होने के कारण द्रोणाचार्य ने शिक्षा देने से इनकार कर दिया। इस तिरस्कार का उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह गंभीर होकर वहाँ से लौट गया। पर गुरु के चरणों में उसकी अपार श्रद्धा रही। वन में गुरु द्रोण की एक मूर्ति बनाकर वह स्वयं ही अस्त्र चलाना सीखने लगा। गुरु के हृदय ने उसे सच्चा मार्ग

दिखलाया। वह वहीं रहकर अर्जुन की तरह का धनुर्वेद-विशारद हो गया। कभी-कभी राजकुमारों को शिकार के लिये वन भी जाना पड़ता था। एक बार कुछ कुत्तों को लेकर शिक्षार्थी राजकुमार उस वन में गए, जहाँ एकलव्य धनुर्विद्या सीख रहा था। आगे चलता हुआ एक कुत्ता उसे

देखकर भूंकने लगा। एकलव्य ने सात तीरों के गुच्छ से उसका मुंह ऐसा भर दिया कि वह मरा तो नहीं, पर उसका भूंकना बंद हो गया। वह राजकुमारों के पास उसी दशा में, मुक्ति के लिये, लौट आया। उसे देख-

कर कुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कारण, तीर चलाने का ऐसा चमत्कार उन्होंने तब तक न देखा था। वे एकलव्य के पास गए। उसका और उसके गुरु का नाम पूछा। एकलव्य ने अपना नाम बतलाकर द्रोणाचार्य की मूर्ति की ओर इंगित कर कहा, यह आचार्य द्रोण मेरे गुरु हैं।

राजकुमार राजधानी लौटे, और आचार्य से अभिमान-पूर्ण स्वर से कहा—"आप हमें दिव्यास्त्रों की शिक्षा देने के लिये कहते थे। पर आप अपने शिष्य निषाद-कुमार एकलव्य को अपनी उत्तम शिक्षा प्रदान करते हैं।"

द्रोणाचार्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह राजकुमारों के साथ उस जगह गए। एकलव्य से पूछने पर उन्हें सच्चा हाल मालूम हुआ। द्रोण एकलव्य की भक्ति देखकर बड़े लज्जित हुए। फिर हृदय को दृढ़ करके कहा—"वत्स ! यदि तुम मुझे गुरु मानते हो, तो दक्षिणा-स्वरूप दाहना अँगूठा काटकर मुझे दो।" एकलव्य ने अकातर होकर गुरु की आज्ञा पूरी की।

एक दिन आचार्य द्रोण अपनी शिष्य-मंडली लेकर गंगा नहाने के लिये गए। नहाते समय एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। इच्छा करने पर आचार्य स्वयं उससे मुक्त हो सकते थे। परंतु उन्होंने अपने शिष्यों की परीक्षा ली। ऊँची आवाज़ से सबको पुकारकर कहा—"हमारा पैर मगर ने पकड़ लिया है, तुम लोग जल्द हमारी रक्षा करो।" राजकुमार यह सुनकर ऐसे डरे कि उनका कर्तव्य का ज्ञान जाता रहा। तब अर्जुन ने तूण से दो तीर निकालकर ऐसे मारे कि मगर पैर छोड़कर पानी में व्याकुल फिरने लगा। द्रोणाचार्य ने जल से निकलकर बड़े स्नेह से प्रिय शिष्य को गले लगाया, और ब्रह्मशिरा-नामक दिव्य अस्त्र देते हुए समझाया—"वत्स ! कभी मनुष्य पर इसका संधान न करना।" मस्तक झुकाकर अर्जुन ने आचार्य का दिया दिव्य अस्त्र तूण में लेकर रक्खा।

बालकों की शिक्षा बहुत कुछ अग्रसर हो चुकी थी। द्रोणाचार्य से सलाह कर पितामह भीष्म ने एक शुभ दिन प्रदर्शन के लिये नियत किया। हस्तिनापुर में घर-घर इसके लिये आनंद होने लगा। सुंदर, प्रशस्त रंग-स्थल बनाया गया। सब तरह के लोगों के बैठने का इंतजाम हुआ। अनेक प्रकार के वंदनवारों, तोरणों तथा सुगंध-द्रव्यों से उसकी शोभा बढ़ाई गई। यथासमय पितामह भीष्म, महाराज धृतराष्ट्र तथा सब राजपुरुष, रानियाँ और हस्तिनापुर के सर्व-साधारण वहाँ आकर यथोचित आसनों पर बैठे। उत्साह बढ़ाने के लिये रण-वाद्य बजने लगा। एक ओर द्रोणाचार्य रंगभूमि के भीतर गंभीर मुद्रा से बैठ गए। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन, दुश्शासन आदि राजकुमार दिव्य युद्ध-सज्जा से सजकर आचार्य के दोनों ओर बैठ गए। जब सब लोग आ गए, तब पितामह भीष्म की आज्ञा से प्रदर्शन शुरू हो गया। व्यूह की रचना, सैन्य का संचालन, रथ का एक दिशा से दूसरी दिशा को मोड़ना, रथी का सेना-निरीक्षण के साथ युद्ध करते रहना आदि रणभूमि के प्रशस्त कौशल दिखलाए गए। फिर

तलवार, बर्छे आदि से युद्ध शुरू हुआ। भीमसेन और दुर्योधन का गदा-युद्ध हुआ। राजकुमारों की निपुणता देखकर जनता बहुत प्रसन्न हुई। भीष्म मुस्किरा रहे थे। विदुर महाराज धृतराष्ट्र को समझा रहे थे, कुंती गांधारी को।

इसके बाद द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को बुलाया। अर्जुन की तारीफ सब लोग सुन चुके थे। बड़ी उत्सुकता से लोग अर्जुन को देखने लगे। अर्जुन की प्रत्येक भाव-भंगिमा से स्वर्गीय छटा निकल रही थी। वह जैसे शिष्ट और संयत थे, वैसे ही तीव्र और तीक्ष्ण। धनुष-बाण लेकर वह अपनी दिव्य अस्त्र-शिक्षा प्रदर्शित करने लगे। अग्निशर से एक ओर आग पैदा कर दी। फिर वरुण-बाण द्वारा उसे बुझा दिया। फिर पवन-शर छोड़कर पानी सुखा दिया। पुन. सर्प-तीर द्वारा आँधी बंद कर दी, शर से पैदा हुए सैकड़ों नाग हवा पी गए। इसके बाद गरुड़ास्त्र द्वारा साँपों का संहार कर दिया। पुनः दिव्यास्त्र छोड़कर सारी माया गायब कर दी। दौड़ते रथ से लक्ष्य-वेध किया, पुन चल-लक्ष्य को भी चल-रथ से विद्ध किया। असि-चालना तथा अन्यान्य सूक्ष्म समर-कौशल प्रदर्शित किया। लोग देखते हुए मुग्ध हो गए। अर्जुन की प्रशंसा से बार-बार रंगस्थल गूँजने लगा। माता कुंती तथा युधिष्ठिर और भीम आदि भाइयों की आँखों से आनंद के आँसू बह चले। प्रदर्शन समाप्त कर महारथ कुमार अर्जुन ने गुरु द्रोणाचार्य की वंदना की। स्नेह-पुलकित आचार्य ने प्रिय शिष्य के उष्णीष-शोभित मस्तक पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया।

अर्जुन की ऐसी प्रशंसा सुनकर वीरवर कर्ण से न रहा गया। वह स्वयं रंगस्थल के भीतर कूदकर दर्शकों को संबोधित कर कहने लगे—"हे हस्तिनापुर के दर्शकवृंद ! जैसे प्रदर्शनों से आप लोगों को अर्जुन ने मुग्ध किया है, वे सब मैं भी करके दिखा सकता हूँ।" कर्ण सूत-पुत्र प्रसिद्ध थे। वहाँ उनका नाम वसुसेन था। उनकी इस गर्वोक्ति से सभा के लोगों ने कोई उत्तर न दिया। पर दुर्योधन को इससे बड़ा हर्ष हुआ। वह अर्जुन का यह आदर देख न सकते थे। उन्होंने प्रोत्साहन देकर कर्ण से कहा—"अवश्य-अवश्य, वीरवर, आप वैसी धनुर्विद्या प्रदर्शित करें; हम लोग देखने को उत्सुक हैं।" कर्ण ने एक-एक कर वे सभी प्रदर्शन दिखलाए। लोगों ने देखकर दाँतों-तले उँगली दी। दुर्योधन आदि सौ भाई पुनः-पुनः

कर्ण की तारीफ करने लगे। अर्जुन शांत भाव से आचार्य की बगल में बैठे सुनते रहे। कर्ण ने पुनः कहा—"अब मैं अर्जुन से द्वंद्व-युद्ध करना चाहता हूँ।" सुनकर दुर्योधन आदि बहुत प्रसन्न हुए। पर सूत-पुत्र को यहाँ तक बढ़ता देखकर कृपाचार्य से न रहा गया। उन्होंने कहा—"राज-कुमार से द्वंद्व-युद्ध वही कर सकता है, जो राजकुमार हो।" दुर्योधन ने कहा—"वीर की कोई जाति नही होती, जो वीर है, वह क्षत्रिय अवश्य है। परतु अगर आप राजवश चाहते है, तो मैं इस वीर का अभी अभि-षेक करता हूँ।" यह कहकर सोने के सिंहासन पर बिठलाकर दुर्योधन ने महावीर वसुसेन को अग-देश का राजा बनाया। शोर-गुल सुनकर, भय से संकुचित होकर सारथि अधिरथ वहाँ उपस्थित हुए। महावीर कर्ण ने अपनी पद-मर्यादा का कुछ भी विचार न कर, उठकर पिता को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। इस पर भीम ने सारथि-पुत्र कहकर कर्ण का उप-हास किया। पर कर्ण विचलित न हुए। उन्होंने द्वंद्व-युद्ध के लिये पुनः पास जाकर अर्जुन को ललकारा। महारथ अर्जुन संयत दृष्टि से कर्ण को देखते हुए बोले—"सूतपुत्र, तुम उत्तम धनुर्धर हो, इसमें सदेह नही, पर तुम्हारी स्पर्द्धा देखकर मुझे हँसी आती है। तुम अपने को वीर समझते हो, समझो, पर दूसरा भी तुम्हारी स्पर्द्धा कर सकता है, याद रखो। मैं तुम्हारी बातें सुनकर बिलकुल नही घबराया। भागना और पीठ दिखाना मैं नही जानता।" अर्जुन की बातों में अणु-मात्र भय न था। बल्कि वहाँ सभी वीरों को अर्जुन की उक्ति पसंद आई। अब शाम हो आई थी। इसलिये यह प्रदर्शन बंद कर दिया गया। कर्ण और अर्जुन के मन में प्रतिस्पर्द्धा का भाव सदा के लिये रह गया।

द्रोणाचार्य के हृदय में द्रुपद से हुए अपमान की आग जल रही थी। क्षत्रिय-वृत्ति के द्रोण ने बदले के जल से उसे शीतल करना चाहा। एक दिन उन्होंने शिष्यों को सस्नेह बुलाकर कहा—"वत्स! मैं तुम लोगों से गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ। वह यह है कि तुम लोग द्रुपद को बाँध लाओ। उसने मेरा अपमान किया है।" द्रोणाचार्य को गुरु-दक्षिणा देने के उत्साह से युवक वीर राजकुमार पंचाल-देश पर चढ़ गए। महावीर भीम तथा महारथ अर्जुन के सामने द्रुपद के शूर-सामंत टिक न सके। अद्भुत समर-कौशल से अर्जुन ने उन्हें बाँध लिया, और दक्षिणा-स्वरूप गुरु के चरण-

कमलों में ला डाला। द्रोण को देखकर द्रुपद की आँख झुक गई। द्रोण ने द्रुपद को इस प्रकार अपमान कर, बदला चुकाकर छोड़ दिया।

राजधानी को लौटकर द्रुपद ने द्रोण से बदला चुकाने के अभिप्राय

से महर्षि याज तथा उपयाज की सहायता लेकर पुत्रेष्टि-यज्ञ किया। द्रोण का वध करनेवाला धृष्टद्युम्न तथा महाभारत की प्रधान पात्री कृष्णा (द्रौपदी) इसी यज्ञ से पैदा हुई।

★ लाक्षा-गृह-दाह

अब बड़े होने पर कौरवों का पांडवों के प्रति द्वेष बढ़ गया था। इसके दो मुख्य कारण थे—एक यह कि युधिष्ठिर बड़े होने के कारण सिंहासन के अधिकारी कहे जा रहे थे, दूसरा यह कि लोगों में पांडवों का आदर दिन-पर-दिन बढ़ रहा था। लोग समझते थे, पांडव धार्मिक, विद्वान् तथा नीति के माननेवाले हैं। जब किसी समर्थ की अयोग्यता के कारण तारीफ़ नहीं होती, तब उसका कोप बढ़ जाता है। महाराज धृतराष्ट्र पांडवों को प्यार करते थे, पर उनकी योग्यता के कारण दुर्योधन आदिकों की तारीफ़ नहीं हो रही, यह वह सहन न कर सकते थे। अंधा केवल कानों से सुनता है। पर जब अपना प्रिय शब्द नहीं सुनता, तब उसकी कमजोरी, देखने के अभाव के कारण, कई हिस्से और बढ़ जाती है। धृतराष्ट्र जब सुनते थे कि पांडवों की योग्यता के सब लोग तरफदार हैं, और महात्मा भीष्म भी युधिष्ठिर को ही राजसिंहासन पर बैठने के योग्य समझते है, तब उनके न देखे हुए दुर्योधन के मुख पर सहस्रों गुना प्रीति बढ जाती थी, और यही पांडवों के प्रति हार्दिक ईर्ष्या में बदलकर, मन के लिये अनर्थकारिणी बन जाती थी। इस द्वेष का एक कारण यह भी था कि धृतराष्ट्र ही बड़े होने के कारण सिंहासन के अधिकारी हैं ; पांडु को उनके अंधे होने से सिंहासन मिला था। पर अब दुर्योधन ही पिता के राज्य का उत्तराधिकारी बन सकता है। यही हक के संबंध में दुर्योधन भी समझता था।

एकांत में हित की बातें समझाते हुए दुर्योधन ने महाराज धृतराष्ट्र को अपने वश कर लिया। उसने कहा—"यदि पांडव कुछ काल के लिये देवाराधन तथा प्रकृति-निरीक्षण के विचार से वारणावत भेज दिए जायँ, तो यहाँ लोकमत अपने अनुकूल तैयार हो जायगा। द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि हमारी तरफ हो जायँगे। कर्ण और शकुनि आदि हैं ही। विदुर का कोई डर नहीं, क्योंकि वह हमारे अन्न से ही पलते हैं। पांडवों की लोकप्रियता तब हमारे हाथ लगेगी।" पुत्र-स्नेह के कारण धृतराष्ट्र का दुर्बल हृदय दुर्योधन की बात मान गया। एक दिन भरी सभा में धृतराष्ट्र ने पांडवों से कहा—"वत्स, तुम लोग वारणावत जाकर कुछ काल वहाँ रहो। वहाँ धर्म की अच्छी आराधना हो सकेगी, और वहाँ की प्रकृति भी सुहावनी है।

धृतराष्ट्र की आज्ञा पांडवों को मंजूर करनी पड़ी। पर युधिष्ठिर भीतर-ही-भीतर डरे। राजाज्ञा शिरोधार्य कर नियत समय पर माता तथा भाइयों के साथ वारणावत चलने को तैयार हुए। यहाँ दुर्योधन ने पुरोचन-नामक एक प्रसिद्ध कारीगर को यथेष्ट धन देकर पांडवों के रहने के लिये लाख का भवन बनाने को भेज दिया। निश्चय हुआ कि जब पांडव यहाँ आकर रहने लगें, तब किसी कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को आग लगा दी जाय। इस तरह पांडवों के नाश का निश्चय हुआ। पुरोचन ने समय से पहले जाकर बड़ी तत्परता से जल्द मकान तैयार कर दिया।

माता कुंती के साथ, समय आने पर, पाँचो भाई पांडव वारणावत के लिये रवाना हुए। उनका जाना हस्तिनापुर के निवासियों को बड़ा दुःखद हुआ। सब लोग रोने-पीटने तथा मन-ही-मन धृतराष्ट्र, एवं दुर्योधन को कोसने लगे। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, कृप, अश्वत्थामा, गांधारी आदि को प्रणाम कर पांडव विदुर से विदा होने गए। इशारे से विदुर ने युधिष्ठिर को समझाया कि अज्ञात स्थान में बहुत होशियारी से रहना चाहिए, जब तक दूसरा संवाद विदुर न भेजें, तब तक पांडव कौरवों के दिए मकान में न रहकर दूसरे मकान में रहें। गृह-प्रवेश की एक लंबी तिथि नियत कर लें। विदुर से समझकर उस मकान में जायें, क्योंकि उन्हें दुर्योधन आदि से बहुत सँभालकर चलना है।

हस्तिनापुर को शोक-सागर में डुबाकर माता कुंती के साथ पाँचो पांडव वारणावत चले। हस्तिनापुर-वासी तरह-तरह की कटु आलोचनाएँ धृतराष्ट्र और दुर्योधन पर करने लगे। वारणावत के लोग पांडवों के आने का समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। गाँव से कुछ दूर आगे चलकर उनके स्वागत के लिये प्रतीक्षा करने लगे। पांडवों के पहुँचने पर उनसे खुले हृदय से मिले, जैसे अपने इष्टदेवों से मिल रहे हों। धर्मात्मा पांडवों ने लोगों का बड़ा आदर किया। वे सबको अपने बराबर समझकर वार्तालाप करते थे। बड़प्पन के इस भाव को पांडव जितना ही मिटा रहे थे, लोगों के हृदय में उनकी उतनी ही इज्जत बढ़ रही थी। वारणावत में इस प्रकार अन्यत्र पांडवगण बस गए। भगवद्भजन और भगवच्चर्चा से सुख-पूर्वक दिन बिताते रहे।

दुर्योधन का बनवाया मकान अब तैयार हो चुका। गृह-प्रवेश के समय

एक दूत विदुर ने भेजा। उससे सब मर्म पांडवों को मालूम हो गया। युधिष्ठिर दुर्योधन के इस मनोभाव से बहुत घबराए। उन्होंने भाइयों से सारा हाल बयान किया। फिर जैसी विदुर ने सलाह दी थी, वैसा ही किया। उसी मकान में एक सुरंग तैयार कराकर प्रवेश-पथ के पास एक खंभा लगा दिया गया था।

युधिष्ठिर को विदुर ने सूचित कर दिया था कि आग लगने पर इस खंभे को भीम से उखड़वाकर इसी रास्ते से तुम लोग बाहर निकल जाना। समय पर कुंती-सहित पांडव वहाँ गए। बडे शंकित रहा करते थे, विशेषतः कृष्णा चतुर्दशी के दिन। एक दिन पांडवों ने वहाँ यज्ञ किया, और गरीबों को भोजन कराया। उस रोज एक नीच जाति की स्त्री पाँच बच्चों-सहित भर पेट भोजन कर वहीं रात को सो रही। भीतर पुरोचन भी सुख की नींद सो रहा था। उपयुक्त समय जानकर, भीम ने मशाल लेकर मकान में आग लगा दी, और उसी सुरंग की राह, खंभे को उखाड़कर, बाहर निकल गए। प्रातःकाल गाँव में बड़ा हाहाकार उठा। हस्तिनापुर को भी खबर गई। खोजने पर केवट की स्त्री और उसके पाँचो पुत्र जले हुए मिले। लोगों ने समझा, ये पांडव और माता कुंती हैं। दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई।

गंगा के किनारे विदुर ने अपना आदमी भेजकर नाव की व्यवस्था कर रक्खी थी। पांडव उसी नाव से गंगा पार कर गए।

धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन आदिकों को हस्तिनापुर-निवासी गालियाँ देने लगे। राजभवन में भी दिखलावे के तौर पर शोक मनाया गया। पुनः पांडवों के क्रिया-कर्म की व्यवस्था होने लगी।

★ हिडिंब तथा बक राक्षस का संहार

समय का फेर ऐसा होता है, यह क्षण-मात्र में गरीब को अमीर और अमीर को दर-दर का भिक्षुक बना देता है। ये पांडव महाराज शांतनु के प्रपौत्र और महावीर भीष्म के पौत्र थे, हस्तिनापुर-राज्य का इन्हें अधिकार प्राप्त था, पर आज असहायों की तरह, बिना किसी वाहन के, वन-वन भटकते फिरते थे। कभी पैदल चलने की आदत न थी। पैरों में छाले

पड़ गए थे। फिर भी इन्हें रास्ता तय करना पड़ रहा था। भाग्य कितना बलवान् होता है! माता कुंती और छोटे भाई नकुल और सहदेव बिलकुल अक्षम हो जाते थे, तब भीम कंधे पर बैठाकर दुर्गम पथ पार करते थे।

माता कुंती तथा भाइयों के शिथिल हो जाने पर भीम ने एक बरगद के पेड़ के नीचे सबको बैठाला। माता तथा युधिष्ठिर के पैर दबाए, पत्ते तोड़कर, कांटों से उन्हें जोड़कर पंखा झला। प्यास के मारे सबके आकंठ प्राण हो रहे थे। माता तथा भाइयों की करुणा से भीम बड़े दुखी हुए। पानी की कोई सूरत नज़र न आई। एक ऊँचे पेड़ पर चढ़कर चारों ओर देखा, तो कुछ दूर पर आकाश में पक्षी उड़ते हुए देख पड़े। वहाँ जल की संभावना मानकर, पेड़ से उतरकर भीम उस तरफ को चले। वहाँ पानी मिला। हाथ-मुँह धोकर, अँगोछा भिगोकर भाइयों के पास लौट आए। मुँह धुलाकर इन्हें भी वहाँ पानी पीने के लिये ले जाने का विचार किया। पास आकर देखा, माता कुंती तथा चारों भाई थकावट के कारण घोर निद्रा में मग्न हो रहे थे। उन्हें न जगाकर बैठे हुए उनकी खबरदारी करने लगे।

उस वट के पास एक दूसरे बड़े पेड़ पर हिडिंब नाम का एक राक्षस रहता था, जो नर-घातक तथा नर-मांस-भक्षक था। इन मनुष्यों पर उसकी निगाह गई, तो उसकी जीभ से लार टपकने लगी। उसके एक बहन हिडिंबा नाम की थी। उसने उसे ही मनुष्यों को मार लाने के लिये भेजा। हिडिंबा पास आई, तो सुंदर पुरुषों को देखकर दया से वह द्रवित हो गई। ऐसे रूपवान् मनुष्य उसने न देखे थे। न-जाने कहाँ से इनके प्रति उसका स्नेह पैदा हो गया। फिर बैठकर पहरा देते हुए पुष्ट-काय भीम को उसने देखा। देखते-देखते वह भीम पर मोहित हो गई, और अपने माया-जाल को छोड़कर सुन्दरी षोडशी कुमारी के वेश में भीम के पास आकर बोली—"हे वीर! मैं तुम पर मोहित हो गई हूँ, और तुमसे विवाह करना चाहती हूँ, पर मैं राक्षस की बहन हूँ, जो यहीं पर रहता है। वह बड़ा क्रूर, मनुष्यघाती है। तुम लोगों को मारने के लिये उसने मुझे भेजा था। तुम लोग उठो, तो मैं अपने माया-बल से तुम्हें बचा सकती हूँ; अन्यथा वह आ जायगा, तो तुम्हारे साथ मुझे भी मार डालेगा।"

भीम ने कहा—"हे सुरूपे, तुम घबराओ मत। मैं अपनी माता तथा भाइयों को कच्ची नींद में न जगाऊँगा। तुम भी न डरो। तुम्हारा भाई मेरा कुछ नहीं विगाड़ सकता।"

हिडिंबा की भीमसेन से इस प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि उधर क्रुद्ध हिडिंब बहन को गालियाँ देता, आता हुआ देख पड़ा। भीम सजग होकर खड़े हो गए। पहले वह हिडिंबा को ही मारना चाहता था, पर महावीर भीमसेन ने उसे पकड लिया। दोनो का मल्लयुद्ध होने लगा। इस शोर-गुल मे माता कुती तथा चारो पाडवों की नींद खुल गई। उन्होंने देखा, एक राक्षस के साथ भीमसेन का द्वंद्वयुद्ध छिड़ा हुआ है। भीम ने उसे गिराकर, उसके पैर पकड़कर चारो ओर घुमाया। फिर कई बार जोर-जोर से पटका। इससे उसके प्राण निकल गए, हिडिंबा भीमसेन की वीरता से बहुत प्रसन्न हुई। सब हाल सुनकर माता कुती ने हिडिंबा से भीम को विवाह कर लेने की आज्ञा दे दी। भीमसेन के औरस तथा हिडिंबा के गर्भ से घटोत्कच नाम का एक बडा पराक्रमी बालक पैदा हुआ। हिडिंबा से विदा होकर, माता कुती के साथ, पाँचो भाई पांडव दूसरे प्रदेश के लिये रवाना हुए।

अनेकानेक नगर, नदी, पहाड, वन, उपवन तथा मनोहर दृश्यों को पार करते हुए पाडव एकचक्रा नाम नगरी में पहुँचे। पाडवो का भिक्षुक-वेश था। भिक्षा से जीवन-निर्वाह कर रहे थे। सबके मुख-मडलों पर साधु-स्वभाव की छाप पडी हुई थी। लोगों में उन्हें देखकर भक्ति तथा श्रद्धा का उद्रेक होता था। एकचक्रा में, एक ब्राह्मण के मकान में, उन्होंने आश्रय लिया था। भीख माँगकर अपना उदर भरते थे। एक रोज कुती बैठी हुई थी। ब्राह्मण के घर से रोने की आवाज आई। सुनकर कुती का हृदय द्रवीभूत हो गया। वह उठकर भीतर ब्राह्मण के मकान में गईं। ब्राह्मण ने रोते हुए कहा—"यहाँ बक नाम का एक राक्षस लगता है। उसके लिये एक कानून है कि रोज एक आदमी, दो भैंसे तथा गाड़ी-भर पूड़ी-पकवान उस राक्षस के लिये भेजना पड़ता है। आज ब्राह्मण की बारी है। बडी चिंता यह है कि मैं जाता हूँ, तो घर को सँभालनेवाला दूसरा नहीं रहता; पुत्र जाता है, तो माता की स्नेह के कारण अकाल-मृत्यु होगी। फिर घर और गृहस्थी किस काम आएगी। इसी सोच में हम लोग रो रहे हैं।"

माता कुंती का हृदय करुणा से आर्द्र हो गया। उन्होंने ब्राह्मण को धैर्य दिया, और सस्नेह कहा—"ब्राह्मण, तुम दुःख न करो। तुमने मुझे आश्रय दिया है। अब तुम्हारे दुःख के समय तुम्हारी सहायता करना भी मेरा धर्म है। तुम भोजन आदि का प्रबंध करो। आदमी तुम्हें न देना होगा। मेरे पाँच पुत्र हैं। मैं उनमें से एक को राक्षस के पास भेज दूंगी।" ब्राह्मण रोएँ-रोएँ मे कृतज्ञ हो गया। बडी प्रसन्नता से पकवान तथा भैंसों का इंतजाम करने लगा। माता कुंती ने भीम से सब हाल आकर कहा। भीम राक्षस के पास जाने को तैयार हो गए।

गाड़ी में पकवान भरकर, काफी जल पीने के लिये रखकर, दोनों भैंसों को नहकर भीमसेन बकासुर से मिलने के लिये चले। बहुत दिनों से भीमसेन का पेट न भरा था। उन्होंने सोचा, जब तक बकासुर से मुलाकात होती है, तब तक यहीं पेट-पूजा समाप्त कर लूँ। वह निश्चित होकर एक तरफ से पकवान भोजन करने लगे। गाडी धीरे-धीरे चल रही थी। देर भी हो गई थी। राक्षस गुस्से से क्रुद्ध जमीन आगे बढ आया था। भीमसेन को अपना भोज्य पकवान आदि खाते देखकर बडा क्रुद्ध हुआ। घनघोर गर्जना कर भीम की ओर दौड़ा। भीम भी भोजन समाप्त कर चुके थे। पानी पीकर, हाथ-मुँह धोकर राक्षस के स्वागत के लिये तैयार हो गए। एक तो देर से भूखा, उस पर पकवान के खा जाने से नाराज राक्षस आँधी की तरह भीमसेन पर टूटा। उसका बल सँभालकर एक ही उखाड़ में भीम ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया, और घूँसों और रद्दों की झड़ी लगा दी। राक्षस के प्राण भीम के कठोर प्रहारों को न सह सके। उसे मारकर भीमसेन ठंडे होकर घर लौटे। माता कुंती और युधिष्ठिर, अर्जुन आदि भाई भीम को पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

★ द्रौपदी का स्वयंवर तथा विवाह

एकचक्रा पुरी में अनेक देशों का भ्रमण कर आए हुए एक साधु-स्वभाव ब्राह्मण से पाडवों को द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार मिला। सुनकर अर्जुन तथा भीम को एक प्रकार की चंचलता होने लगी। माता कुंती ने क्षत्रिय राजकुमारों के मनोभावों को समझकर वहाँ से चलने की

आज्ञा दे दी। इसी समय व्यासजी भी वहाँ पहुँचे, और स्वयंवर में जाने की सलाह दे गए।

गंगा के किनारे से होकर पांडवगण पांचाल-देश की यात्रा कर रहे थे। रात के अँधेरे में हाथ में मशाल लेकर अर्जुन आगे-आगे चल रहे थे। एक जगह चित्ररथ गंधर्व अपनी स्त्रियों को लिए हुए गंगा में जल-विहार कर रहा था। अर्जुन को देखकर वह क्षुब्ध हुआ। उस रास्ते न आने के लिये उसने अर्जुन को डाँटा, पर अर्जुन चले गए। तब उसने कहा—"देखो, गंगा में दिन को मनुष्य नहाते है, रात को हम लोग। हमारे आनंद में रुकावट न डालो।" अर्जुन ने कहा—"नदी, पर्वत, प्रांतर आदि सब समय के लिये प्रशस्त है, वहाँ कोई बाधा नही हो सकती।" सुनकर चित्ररथ लड़ने को तैयार हो गया, और अर्जुन पर बाणों की वर्षा कर चला। गंधर्व के वार को रोककर अग्निबाण के प्रहार से इंद्र-पुत्र अर्जुन ने चित्ररथ का रथ जला दिया। चित्ररथ भी घायल होकर गिर गया। उसकी दशा देखकर उसकी पत्नी ने युधिष्ठिर की शरण ली। स्त्री-जाति पर दयाकर चित्ररथ को छोड़ देने के लिये युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दी। अर्जुन ने उसे छोड़ दिया। गंधर्व ने पार्थ की वीरता से प्रसन्न होकर मैत्री कर ली। चित्ररथ ने घोड़े दिए, अर्जुन ने आग्नेयास्त्र। घोड़े आवश्यकता पड़ने पर लेने के लिये कहकर अर्जुन चित्ररथ से विदा हुए। वहाँ से पाडवों ने उत्कोच-तीर्थ की यात्रा की। वहाँ से धौम्य नाम के ब्राह्मण की तपस्या तथा उसका कर्मकांड पर अधिकार देखकर पाडवों ने उसे अपना पुरोहित स्वीकार किया।

वहाँ से ये लोग पांचाल-देश के लिये रवाना हुए। इनका वेश ब्राह्मणों का-सा था ही। रास्ते में बहुत-से ब्राह्मण दक्षिणा पाने की आशा से तथा स्वयंवर की विशेषताएँ देखने के लिये पांचाल-देश की यात्रा करते हुए मिले। पांडवों को अपना साथी समझकर सब खुले दिल से स्वयंवर की बातचीत कर रहे थे। उनसे पांडवों को मालूम हुआ कि यहाँ भारत-भर के राजा एकत्र होंगे। स्वयंवर के लिये बड़ा समारोह किया गया है। देश-देश के गुणी वहाँ अपने गुणों का प्रदर्शन करेंगे। कृष्णा यज्ञ से निकली है, और उसके रूप की प्रशंसा नही हो सकती। मत्स्य-लक्ष्य को बेधनेवाला ही द्रौपदी को ब्याह सकता है।

ब्राह्मणों की बातों को सुन-सुनकर अर्जुन को बड़ा उत्साह हो रहा था। पांडव प्रतिदिन दूना रास्ता तय करने लगे। मनोहर दृश्य, हरे-भरे खेत, बहती हुई स्वच्छ सलिला नदी, ऊँचे-ऊँचे आकाश को चूमनेवाले पहाड़, मधुर कलरव कर-करके बहते हुए स्फटिक-चूर्ण, जल-झरनों को पार कर, पांडव पांचाल-देश के प्रांत भाग में आकर उपस्थित हुए।

बहुत कुछ सोच-विचार कर माता कुंती की आज्ञा से ब्राह्मणों के वेश में पांडवों ने एक कुम्हार के घर में आश्रय लिया। वहाँ से राजभवन बहुत दूर न था।

स्वयंवर का जमाव शुरू हो गया था। देश-देश के राजा चतुरंगिनी सेना लेकर पांचाल में डेरा जमा चुके थे। कुरु-वंश के दुर्योधन भी अपने मित्र कर्ण के साथ गए थे। राजा द्रुपद ने समागत राजा-महाराजों के लिये बड़ी तैयारियाँ कर रक्खी थीं; द्रुपद के अतिथि-सत्कार की चारों ओर प्रशंसा हो रही थी। उन भोजन-पान, नृत्य-गीत और दान-दक्षिणा आदि से हुए अतिथि-सत्कार को देखकर इंद्र भी लज्जित होता था।

निश्चित समय आने पर स्वयंवर शुरू हुआ। ऊँचे मंच पर उत्तमोत्तम वेश-भूषा किए हुए देश-देश के राजा सुशोभित थे। एक ओर ब्राह्मणों का दल आशीर्वाद की सामग्री लिए हुए शोभा पा रहा था। पुन: मंत्रों की ध्वनि गूँज रही थी। विशाल मंडप में वंदनवार लगे थे, मंगल-कलश रक्खे हुए थे। मध्य भाग में जयमाला लिए हुए भाई धृष्टद्युम्न के साथ कृष्णा खड़ी थी। राजागण मुग्ध दृष्टि से कृष्णा की अलौकिक रूप-राशि अवलोकन कर रहे थे।

वहीं बीचोंबीच मत्स्य-लक्ष्य का स्थान था। ऊपर आकाश में मत्स्य था। उसके नीचे एक चक्र बराबर घूम रहा था। जमीन पर रक्खे हुए जल में उसकी छाया पड़ रही थी। चक्र में एक तीर के पार होने-भर का छिद्र था। जल में छाया को देखते हुए जो मनुष्य लक्ष्य-वेध करेगा, उसे ही कृष्णा पति के रूप में वरण करेगी, महाराज द्रुपद ने प्रतिज्ञा की थी। कृष्णा के लिये तो राजों को बड़ा लालच था, पर लक्ष्य को देखकर सबके दिल धड़क रहे थे! यथासमय धृष्टद्युम्न ने महाराज द्रुपद की प्रतिज्ञा सुनाकर राजों को लक्ष्य-वेध करने के लिये आमंत्रित किया। एक-एक करके राजा लोग उठने लगे, और तीर मारकर लज्जित हो-होकर

बैठते गए। धीरे-धीरे सभी राजा इस प्रकार परास्त हो गए। सबके तीर चक्र से टकराकर जमीन पर आ गिरे। राजों का दल पराजित हुआ देखकर धृष्टद्युम्न ने क्षत्रिय-नरेंद्रों को दुख-भरे कुछ अपमान-सूचक शब्द कहे। इससे क्रुद्ध होकर महावीर कर्ण लक्ष्य-वेध के लिये उठे, पर जनता को यह कहते हुए सुनकर कि यह सूतपुत्र है, कृष्णा ने इनकार कर दिया कि कर्ण द्वारा लक्ष्य-वेध होने पर भी मैं उससे विवाह न करूँगी। कृष्णा के शब्दों से अपमान मानकर महावीर कर्ण ने शरासन रख दिया। राजन्यवर्ग लज्जा से सिर झुकाकर मौन रह गया।

इसी समय ब्राह्मण की गोल से एक बड़ा ही सुंदर युवक मृगेंद्र-गति से लक्ष्य-स्थान की ओर चला। उसे देखकर सब ब्राह्मण उसका मजाक करने लगे कि जहाँ बड़े-बड़े शूर-वीर नरेंद्रों की न चली, वहाँ यह महाराज अपनी मूर्खता-प्रदर्शन के लिये साबित-कदम हो रहे हैं। उन्हीं मे से किसी-किसी ने कहा कि किसी का बल - विक्रम समझे बिना ऐसा नहीं कहना चाहिए, संभव है, इस नवयुवक से यहाँ ब्राह्मणों का मुख उज्ज्वल हो। इस प्रकार वाद-विवाद चल रहा था कि ब्राह्मण-वेशधारी महावीर अर्जुन ने लक्ष्य-स्थान पर जाकर धनुप उठा लिया। कृष्णा बड़े प्रेम से युवक को देख रही थी। नरेंद्र-मंडल में ब्राह्मण-युवक की संयत मुद्रा से आतंक फैल गया। वीर अर्जुन ने एक तीर लेकर जल में लक्ष्य का चित्र देखकर निशाना मारा। तीर अचूक मछली की आँख पर लगा। ब्राह्मणों में जय-जय होने लगी। धृष्टद्युम्न ने भी लक्ष्य-विद्ध होने का समाचार दिया, पर नरेंद्र-मंडल ने विश्वास न किया। देखकर उसी शांत भाव से अर्जुन ने दूसरा तीर धनुप में जोड़कर मारा, जिससे चक्र कट गया, और वेधा हुआ मत्स्य जमीन पर आ गिरा। अब किसी को शंका करने की गुंजायश न रही। कृष्णा ने बड़े प्यार से युवक ब्राह्मण के गले में जयमाला डाल दी।

राजाओं में बड़ी हलचल मच गई। कुछ की राय हुई कि ब्राह्मण को कुछ धन देकर कन्या ले ली जाय। इसी दल के अंतर्भुक्त दुर्योधन भी था। अर्जुन की बगल में ही कृष्णा खड़ी थी। कुछ मूर्ख राजकुमारों ने अर्जुन के पास जाकर, धन लेकर कृष्णा को दे देने का प्रस्ताव किया भी, पर महावीर पार्थ ने इनकार कर दिया। नरेंद्र-मंडल इससे बड़ा क्षुब्ध हो गया। सब अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर कृष्णा को ब्राह्मण से छीन लेने पर

कटिवद्ध हो गए। स्वयंवर-सभा युद्ध-क्षेत्र में बदल गई। भयानक युद्ध होने लगा। एक ओर अर्जुन अकेले, दूसरी ओर संपूर्ण राजों का समुदाय, पर आँधी जिस तरह दिगंत को व्याप्त कर लेनेवाले मेघों को उड़ा देती है, उसी तरह महावीर अर्जुन के प्रखर तीरों की चोट न सहकर राजों का दल छिन्न-भिन्न होकर दूर हो गया, और स्वयंवर-सभा में शांति आ गई। कृष्णा का हाथ पकड़कर महावीर अर्जुन घर की ओर चले। राजा की पुत्री कृष्णा ने पति का अनुसरण किया, पर उसका हृदय अपनी भिन्न अवस्था की भावना से धड़क रहा था। धृष्टद्युम्न को भी चैन न था। यह अज्ञात-कुल-शील ब्राह्मण कौन है, जानने की उसकी इच्छा प्रबल हो रही थी। बहन कृष्णा के भाग्य का फ़ैसला देखने के लिये उत्सुक होकर वह भी इन दोनो की दृष्टि बचाकर इनके साथ-साथ चला। मार्ग में एक छोटी नदी के किनारे कृष्णा के विश्राम कर लेने के विचार से महावीर अर्जुन एक शिला-खंड पर उसे बैठाकर बैठ गए, और बड़े स्नेह से आश्वासन देते हुए बोले—"शुभे! घबराओ मत, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं महाराज शांतनु का प्रपौत्र, महात्मा भीष्म का पौत्र और महाराज पांडु का तीसरा पुत्र अर्जुन हूँ। हम लोग लाक्षा-गृह-दाह से बचकर भिक्षाटन करते हुए यहाँ तक पहुँचे हैं।" सुनकर कृष्णा के हर्ष की सीमा न रही। छिपे हुए धृष्टद्युम्न ने भी यह बात सुन ली। अर्जुन ने यह भी कहा कि हम लोग अमुक जगह एक कुम्हार के घर पर टिके हुए हैं। पूरा पता मालूम कर धृष्टद्युम्न चुपचाप लौट गया, और पिता को सारा संवाद सुनाया। महाराज द्रुपद को इस खबर से बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने वेदोक्त रीति से विवाह करने के विचार से पांडवों को अपनी राजधानी में बुला लाने के लिये धृष्टद्युम्न-प्रमुख वीरों को उस कुम्हार के यहाँ भेज दिया।

कृष्णा को साथ लेकर अर्जुन माता के यहाँ पहुँचे। माता कुंती मकान के भीतर थीं। अर्जुन ने प्रसन्नता से माता को पुकारकर कहा—"मा, आकर देखो, आज बड़ी अच्छी चीज़ लाया हूँ।" माता ने भीतर से ही कहा—"बेटा, बड़ी खुशी की बात है।" बाहर आकर देखा, तो कृष्णा खड़ी थी। अर्जुन ने सब समाचार कहा, प्रसन्न होकर माता ने विजयी पुत्र को गले लगाकर बहू को सस्नेह चूमा।

इसी समय महाराज द्रुपद के भेजे हुए, धृष्टद्युम्न-प्रमुख राजपरिवार

के लोग तथा सेनापति आदि पांडवों को राजधानी ले चलने के लिये पहुँचे, और माता कुंती तथा द्रौपदी के साथ पाँचो पांडवों को राजमहल में लिवा लाए। महाराज द्रुपद बड़े आदर-भाव से युधिष्ठिर से मिले, और अर्जुन के साथ कृष्णा के विवाह की बातचीत करने लगे। युधिष्ठिर ने कहा—"महाराज, अर्जुन हममें तीसरे हैं। अभी तो हमी दोनों का विवाह नही हुआ।" द्रुपद ने कहा—"तो आप ही कृष्णा से विवाह कीजिए।" महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"हमारी माता सत्य की मूर्ति है, उनकी आज्ञा है, हम पाँचो भाई कृष्णा से विवाह करें।" इस पर महाराज द्रुपद को बड़ा आश्चर्य हुआ। परंतु उसी समय वहाँ भगवान् वेदव्यास आ गए, और उन्होने द्रुपद को समझाया कि गत जन्म में द्रौपदी ऋषि की कन्या थी, और महादेवजी की पूजा करके पाँच बार 'पति' कहकर वर माँगा था, इसलिये इसके पाँच पति होने का भगवान् शंकर ने वर दिया था, इस जन्म में वह फलीभूत हुआ है। इससे महाराज द्रुपद की शंका मिट गई, और बड़े समारोह से पाँचो पांडवों के साथ द्रौपदी का शुभ विवाह संपन्न कर दिया। यहाँ श्रीकृष्ण से भी पांडवों की भेंट और मैत्री हुई।

द्रौपदी के विवाह की खबर तमाम देशों में फैल गई। महाराज धृतराष्ट्र ने भी सुना। भीष्म और द्रोण आदि को लाक्षा-गृह से पांडवों के बच जाने पर बड़ा हर्ष हुआ, पर दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला प्रचंड हो गई। वह फिर किसी छल से पांडवों पर अनर्थ करना चाहता था, किंतु उस समय उसकी न चली। भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर आदि धर्मात्मा मनुष्यों ने महाराज धृतराष्ट्र को समझाया कि जब पांडव बचे हुए हैं, और राज्य के हक़दार हैं, तब उन्हें बुलाकर उनका आधा हिस्सा उन्हें दे देना ही ठीक होगा; अन्यथा वे अब द्रुपद के साथ मिल गए हैं, और स्वयं भी वीर हैं, अपने हक के लिये युद्ध करेंगे, तो व्यर्थ को वंश-नाश होगा। महाराज धृतराष्ट्र को यह बात जँच गई। उन्होंने विदुर को पांडवों के पास बुला लाने के लिये भेज दिया। महाराज द्रुपद से मिलकर विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र का शुभ समाचार सुनाया, और पूरा आदर-सम्मान प्राप्त कर श्रीकृष्ण, कुंती, द्रौपदी और पाँचो पांडवों को साथ लेकर हस्तिनापुर लौटे। यहाँ महामना भीष्म आदि ने दुर्योधन के बैर को बचाने के उद्देश से पांडवों को खांडवप्रस्थ देकर, वहीं जाकर

राजधानी बनाने की सलाह और प्रोत्साहन दिया। गुरुजनों की पद-धूलि मस्तक पर धारण कर पांडव हस्तिनापुर से दूर खांडवप्रस्थ चले गए। वहाँ के लोगों ने पांडवों का बड़ा स्वागत किया। पांडवों ने भी कृषि, वाणिज्य और शिक्षा आदि के विस्तार से खांडवप्रस्थ को हस्तिनापुर की तरह उन्नतिशील बना लिया, और सुख-पूर्वक निवास करने लगे।

★ अर्जुन का वनवास और सुभद्रा से विवाह

पाँचो पांडव आनंद-पूर्वक खांडवप्रस्थ में रहने लगे। एक दिन वहाँ देवर्षि नारद पांडवों से मिलने आए। धर्मात्मा पांडवों ने उनका बड़ा सम्मान किया। नारद ने पांडवों से कहा—"तुम पाँच पुरुषों के एक ही स्त्री है, पर तुम लोगों ने पत्नी के साथ रात्रि-वास करने का नियम नहीं बनाया। यह अच्छा नहीं। इससे आपस में वैर होने की संभावना है। सुंद और उपसुंद नाम के दो भाई थे। तिलोत्तमा पर मुग्ध होकर, दोनों आपस में लड़कर मर गए। तुम लोग समझदार धर्मात्मा हो। पत्नी से रमण करने के नियम बना लो।" देवर्षि नारद की युक्ति सबको पसंद आई। एक-एक मास प्रत्येक भाई द्रौपदी के साथ रहेगा, ऐसा नियम बन गया।

धीरे-धीरे कुछ काल और व्यतीत हो गया। एक दिन एक ब्राह्मण रोता और पांडवों को गालियाँ देता हुआ राजभवन के द्वार पर आया। उस समय महावीर अर्जुन द्वार पर बैठे थे। उसने फरियाद की कि चोर उसकी गौएँ चुरा ले गए हैं। सुनकर अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ, किंतु वह उस समय निरस्त्र थे। उनके अस्त्र जिस मकान में थे, वहाँ महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ वार्तालाप कर रहे थे। अर्जुन विचार में पड़ गए। यदि ब्राह्मण की गौएँ बचाने जाते हैं, तो नियम-विरुद्ध कार्य होता है। महाराज युधिष्ठिर उस घर में द्रौपदी के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। बारह मास का वनवास स्वीकार करना होगा। यदि नहीं जाते, तो ब्राह्मण का शाप पड़ता है। अंत में उन्होंने जाने का निश्चय किया। फिर घुसकर अस्त्रागार में चले गए, और अपना धनुष तथा तरकस उठा लाए। चोरों को खदेड़कर ब्राह्मण की गौएँ छुड़ा लीं। ब्राह्मण आशीर्वाद देता हुआ प्रसन्न होकर घर गया।

महावीर अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिर के सामने अपराधी की तरह हाजिर

हुए, और अपने दोष का उल्लेख किया। और-और भाई भी थे। महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"बड़े के रहते छोटे के जाने में कोई दोष नहीं; फिर तुम अपने किसी कार्य के लिये नहीं गए, दूसरे के उपकार के लिये जाकर तुम अपराधी नहीं हुए।" धर्मराज का यह आश्वासन अर्जुन को पसंद न आया। उन्होंने कहा—"जो प्रतिज्ञा हो चुकी है, उसका पालन न करना पाप है। आप स्नेह के वश ऐसा कह रहे हैं। मैं बारह साल के लिये अवश्य वनवास स्वीकार करूँगा।" यह कहकर धर्मराज तथा भीम को प्रणाम कर नकुल, सहदेव और द्रौपदी से मिलकर धनुर्धर महावीर पार्थ विदा हुए।

देश-देशांतरों का भ्रमण करते हुए अर्जुन एक बार गंगा में स्नान कर रहे थे। उनके अनुपम रूप पर मुग्ध होकर कैरव्य-नामक नागराज की कन्या उलूपी उन्हें आकर्षित कर नागलोक में ले गई। एक परम सुंदरी षोड़शी युवती को अनिमेष प्रेम-दृष्टि से अपनी तरफ़ देखते हुए देखकर अर्जुन ने पूछा—"हे वरानने, तुम कौन हो?"

स्नेह से सिक्त कोमल स्वर में उलूपी ने कहा—"वीरवर, मैं नागराज-कन्या उलूपी हूँ। आपकी पुरुष-प्रभा को देखकर आपसे विवाह करने की इच्छा से मैंने आपको यहाँ आकर्षित किया है।"

अर्जुन ने कहा—"भद्रे! मैं प्रतिज्ञा-बद्ध होकर ब्रह्मचर्य-पालन कर रहा हूँ।"

उलूपी प्रसन्न होकर बोली—"हे पांडु-नंदन! मैं आपका व्रत खंडित करना नहीं चाहती। मुझसे विवाह करने पर आपके व्रत को और बल प्राप्त होगा, क्योंकि उसके साथ मेरी प्रसन्नता भी जाकर मिलेगी। आपको ब्रह्मचर्य का सत्य-रहस्य मालूम होगा।"

अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से विवाह कर एक रात वहीं रहे, पश्चात् कुछ दिनों तक गंगा-तट पर रहकर अंग, वंग, कलिंग आदि देशों में भ्रमण करते हुए अनेकानेक तीर्थों के दर्शन किए। विचरण करते हुए अर्जुन समुद्र-तट पर अवस्थित मणिपुर नाम की राजधानी में गए। वहाँ की राजकन्या चित्रांगदा पर मुग्ध होकर उसके पिता के पास उससे विवाह करने की आज्ञा लेने के लिये गए। उसके पिता ने कहा—"यदि पांडु-पुत्र यह स्वीकार करें कि राजा की कन्या से हुआ पुत्र नाना के वंश के अंतर्गत होगा, तो राजा अपनी कन्या चित्रांगदा से अर्जुन का विवाह कर देंगे। अर्जुन को यह प्रस्ताव

चित्रांगदा- घटोत्कच - राक्षस
राजकुमारी
चित्रांगदा- बभ्रुवाहन-

मंजूर हुआ। चित्रांगदा के साथ उनका शुभ विवाह हो गया, और तीन साल तक वह चित्रांगदा के साथ मणिपुर में रहे। बभ्रुवाहन नाम का एक सुंदर शिशु चित्रांगदा के गर्भ से भूमिष्ठ हुआ।

पत्नी से विदा होकर महावीर पार्थ प्रभास-तीर्थ की ओर चले। रास्ते में पड़नेवाले तीर्थों के दर्शन कर, वर्गा नाम की अप्सरा को शाप से मुक्त कर वह प्रभास पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्ण ने इनका बड़ा स्वागत किया। कृष्ण से द्रुपद के यहाँ मिलकर अर्जुन इनके परम भक्त हो गए थे। उनसे इनकी मैत्री भी हो गई थी। वनवास का कुल वृत्तांत, कृष्ण के पूछने पर, अर्जुन ने बतलाया। कृष्ण ने अर्जुन के मनोरंजन के लिये रैवतक पर्वत पर सारा प्रबंध करा दिया। नृत्य-गीतादि से अर्जुन का बड़ा सत्कार किया गया। द्रौपदी-स्वयंवर के बाद पांडवों का परिचय खुलने पर अर्जुन की वीरता की देश-देश में ख्याति हो गई थी। यादवों ने भी उनकी प्रशंसा सुनी थी। अब, अर्जुन के आने पर, श्रीकृष्ण ने स्वयं एक दिन यादवों को एकत्र कर अर्जुन का अद्‌भुत अस्त्र-कौशल दिखवाया। आनंद-मंगल में इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हो गया। इसी समय यादवों का एक त्योहार पड़ा। वे लोग बड़ी साज-सज्जा से अपनी पत्नियों के साथ मद्य-पान कर रैवतक-पर्वत पर यह उत्सव मनाते थे। पुर के सभी युवक-युवती वहाँ एकत्र होने लगे। श्रीकृष्ण महावीर पांडु-नंदन को साथ लेकर चारों ओर घूम-घूमकर मेला दिखा रहे थे। उसी समय दिव्य वस्त्राभूषणों से सजी हुई बलदेवजी की बहन सुभद्रा सखियों के साथ आती हुई देख पड़ी। महावीर पार्थ एक दृष्टि से युवती कुमारी सुभद्रा को देख रहे थे।

मुस्किराते हुए श्रीकृष्ण ने व्यंग्य किया—"मित्र अर्जुन, तपस्वी ब्रह्मचारी को स्त्री की तरफ आँख न उठाना चाहिए।"

अर्जुन लज्जित होकर बोले—"हाँ मित्र, आप ठीक कहते हैं, पर जो तीर हाथ से निकल चुका हो, उसके लिये क्या किया जाय?"

"मित्र अर्जुन!" श्रीकृष्ण बोले—"यह मेरी बहन भद्रा है। इसे पाने की तुम्हारे लिये एक ही सूरत है। स्वयंवर होने पर पता नहीं, यह किसे वरण करे। क्षत्रियों में एक उपाय हरण करने का भी प्रचलित है। यदि तुम इसे पाना चाहते हो, तो इसका हरण करो; पर तुम्हें अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर लेना चाहिए।"

अर्जुन ने समय का निश्चय कर भीमसेन को सेना लेकर मिलने के लिये लिख दिया। बलराम दुर्योधन को प्यार करते थे। उन्होंने उसे आने का निमंत्रण भी दिया था। अपनी सेना के साथ दुर्योधन भी रवाना हो चुका था। भीम भी चुनी हुई सेना लेकर सूचना के अनुसार आ रहे थे।

उपयुक्त अवसर देखकर उत्सव समाप्त होने के समय, बल-पूर्वक अर्जुन ने सुभद्रा को रथ पर बैठाकर घोड़े बढ़ाए। बात-की-बात में खबर चारों ओर फैल गई, वीर यादवों ने अर्जुन को पकड़ने के लिये पीछा किया। घोर युद्ध छिड़ गया। अर्जुन का अद्भुत समर-कौशल देखकर सुभद्रा मुग्ध हो गई। पति को कठिनता में पड़ा देखकर स्वयं सारथि का काम करने लगी। यादव-वीर अर्जुन की बाण-वर्षा के सामने न टिके। रथ क्रमशः बढ़ते-बढ़ते बहुत दूर निकल आया। इधर भीमसेन भी आ पहुँचे। फिर क्या था? चिरकाल के पश्चात् महावीर अर्जुन को देखकर तथा वीरता-पूर्वक यादवों की राजकुमारी सुभद्रा का हरण सुनकर भीम-प्रमुख पांडवों की सेना पुनः-पुनः सिंहनाद करने लगी। श्रीकृष्ण को संपूर्ण समाचार मालूम थे। उन्होंने बलराम तथा अपर यादव-वीरों को समझाया, और युद्ध बंद कर देने के लिये दूत भेजा। लड़ाई बंद हो गई। यादवगण समादर-पूर्वक अर्जुन तथा भीमादि को ले गए। वहाँ शास्त्रानुसार सुभद्रा के साथ अर्जुन का शुभ विवाह-कार्य संपन्न हुआ। फिर प्रिय पत्नी को लेकर वनवास के बाकी दिन पुष्कर-तीर्थ में पूरे कर बड़े हर्ष से अर्जुन खांडवप्रस्थ में भाइयों से आकर मिले। यथासमय सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु-नामक बालक पैदा हुआ।

★ खांडव-दाह

सुख-पूर्वक सखा कृष्ण के साथ अर्जुन खांडवप्रस्थ में निवास कर रहे थे। एक दिन ब्राह्मण के वेश से अग्निदेव द्वार पर उपस्थित हुए। अर्जुन से बोले—"हे महावीर पांडु-नंदन, मैं अग्नि हूँ। सौ वर्ष तक श्वेत राजा के यज्ञ में हवि खाते-खाते मुझे अजीर्ण हो गया है। यदि खांडव-वन के जीव मुझे दग्ध करने को मिलें, तो मेरा रोग दूर हो जाय, परंतु इसके लिये एक बड़ी अड़चन है। वहाँ तक्षक रहता है। वह इंद्र का मित्र है। वहाँ आग

लगने पर इंद्र उसकी मदद करेगा, वरुण को बुलाकर जल द्वारा आग बुझवा देगा। वन को दग्ध करने में आप मेरी सहायता कीजिए।"

अर्जुन ने कहा—"मुझे आपकी सेवा मंजूर है, परंतु मेरे ऐसे अस्त्र नहीं, जिनसे मैं इंद्र का सामना कर सकूँ। यदि आप मुझे दिव्य अस्त्र प्रदान करें, तो अवश्य मैं आपके कार्य में सहायक हूँगा।"

सुनकर अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गांडीव नाम का विशाल धनुष, हमेशा तीरों से भरा रहनेवाला अक्षय नाम का तरकस और वरुण-देव से प्राप्त कर कपिध्वज नाम का विशाल रथ अर्जुन को दिया। अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्ण ने अपने मित्र की मदद के लिये सारथि होना स्वीकार कर लिया। अर्जुन अग्निदेव की इच्छा पूरी करने के लिये खांडव-वन को चले।

देखते-देखते खांडव-वन सहस्रों ज्वालाओं से प्रज्वलित हो उठा। जीव-जंतु घोर चीत्कार करने लगे। हाथी, बाघ, सिंह, चीते, गैंडे, रीछ, सांप और अनेक जातियों के पक्षी उस वन में वास करते थे। सब उस प्रचंड अग्नि में जलकर भस्म होने लगे। श्रीकृष्ण बड़ी तेज़ी से वन के चारों ओर तेजस्वी घोड़ों से चक्कर लगा रहे थे। जो पशु बाहर भागने का प्रयत्न करता था, वह अर्जुन के बाण से विद्ध होकर प्राण खोता था। आकाश-मार्ग से उड़कर भगनेवाले पक्षी भी शर-विद्ध होकर जलती हुई अग्नि में गिरकर भस्म होते थे। खांडव-वन-दाह की खबर इंद्र को भी हुई। उन्होंने मेघों को भेजकर जल-वर्षा द्वारा अग्नि को बुझा देने की आज्ञा दी। चारों ओर काली-काली भयानक घटा छा गई। कृष्ण ने अर्जुन को सचेत करते हुए समझाया कि ये इंद्र के भेजे हुए बादल हैं, बहुत संभव है, देवराज से तुम्हें युद्ध करना पड़े। वीर पांडु-नंदन पार्थ ने वायव्य अस्त्रों द्वारा मेघों को उड़ा दिया। तब इंद्र स्वयं युद्ध करने के लिये आए। बड़ी देर तक दोनों ओर से बाणों की वर्षा होती रही। अर्जुन का पराक्रम प्रबल पड़ता गया। अपने मित्र तक्षक को इंद्र न बचा सके। इंद्र ने जब किसी तरह विजय की आशा न देखी, तब साक्षात् कृष्ण और अर्जुन के सामने प्रकट हुए और समर-कौशल के लिये बारंबार अर्जुन की तारीफ करने लगे। देवराज को प्रसन्न देखकर अर्जुन ने उनसे दिव्यास्त्र मांगे। इंद्र ने कहा—"यह मनोरथ भगवान् आशुतोष की आराधना से सिद्ध होगा।"

यह कहकर, पुत्र को स्नेह देकर देवराज इंद्र कृष्ण और अर्जुन से विदा हुए। अब तक अग्निदेव का कार्य भी समाप्त हो चुका था। इस दाह में केवल छ प्राणी बचे थे--अश्वसेन, मायासुर और शार्ङ्ग पक्षी के रूप में रहनेवाले मंदपाल मुनि के चार पुत्र। अग्निदेव प्रसन्न होकर अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे। मायासुर भी अर्जुन के पास आया और प्राणों की भिक्षा पाने के कारण कृतज्ञ होकर अपनी सेवा के लिये विनय करने लगा। श्रीकृष्ण ने उससे कहा--"हे शिल्पि-श्रेष्ठ ! महाराज युधिष्ठिर के लिये खांडवप्रस्थ में तुम ऐसा उत्तम भवन निर्माण करो, जैसा लोगों की दृष्टि में आज तक न पड़ा हो।"

सभापर्व

★ सभा-भवन, राजसूय-यज्ञ और जरासंध-वध

कृष्ण के कहने पर मय दानव कैलास के उत्तर गया। वहां दानवों की एक राजधानी थी। वहीं, विंदु नाम के सरोवर के पास, दानवों के यज्ञ के लिये बनाए गए सुविशाल सभा-भवन के मनोहर कारीगरी के चित्ताकर्षक सामान रक्खे थे। मय दानव वह सब एकत्र कर खांडवप्रस्थ ले आया।

खांडव-दाह के बाद कृष्ण अर्जुन के साथ पांडवों के पास चले आए। मय को देखकर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए, और महाराज युधिष्ठिर से उसकी तारीफ की। शुभ मुहूर्त देखकर सभा-भवन की नींव डाली गई। मय पूरी तल्लीनता से सभा-निर्माण करने लगा।

कुछ दिनों तक पांडव के यहां रहकर कृष्ण ने द्वारका की यात्रा की। पांचों पांडव, कुंती, द्रौपदी तथा सुभद्रा ने सजल नेत्रों से उन्हें विदा किया। कृष्ण बड़ी-बड़ी आशाएं दिलाकर गए थे। पांडवों की, विशेषकर भीम और अर्जुन की, अपार शक्ति को प्रत्यक्ष कर, उनमें यथेष्ट उत्साह भर गए थे। यथासमय सभा-भवन निर्मित हो गया। इसमें मणि, मोती, हीरे, पन्ने, पुखराज आदि कितनी क़ीमत तक के लगे थे, इसका हिसाब नहीं हो सकता। दिव्य सरोवर, उद्यान, फर्श आदि ऐसे थे, उस समय भारतवर्ष में और कहीं न थे। उस सभा-भवन की सजावट तथा विभूति देखकर जागता हुआ मनुष्य भी स्वप्नावेश में हो जाता था। कहीं-कहीं ऐसी स्वच्छता थी कि फर्श जल-भरा सरोवर ज्ञात होता था। मणि के सोपान, कमल और द्रुम आदि देखकर लोग मुग्ध हो जाते थे। वाटिका में सब रत्नों की कारीगरी थी, पर देखकर लोग समझते थे कि असमय में गंधराज, बेला, चमेली, चंपा, यूथिका आदि पुष्प खिले हुए हैं, उनमें फूलों की ~ इस तरह भर दी गई थी कि वे सुगंध भी देते थे।

शुभ समय निश्चित कर महाराज युधिष्ठिर इसी भवन में राजसिंहासन पर आसीन हुए। भाँति-भाँति के उत्सव होने लगे। ब्राह्मणों को पकवान आदि भोजन करा प्रचुर दक्षिणा दी गई। देश-देश के कलावंत आए, और अपनी विद्या का प्रदर्शन कर गए। इसी समय देवर्षि नारद ने आकर युधिष्ठिर की बड़ी प्रशंसा की। सभा-भवन को देखकर महाराज युधिष्ठिर के अपार ऐश्वर्य का निश्चय कर नारदजी ने उन्हे राजसूय-यज्ञ करने के लिये कहा।

एक दिन महाराज युधिष्ठिर ने मंत्रियों को बुलाकर उनकी भी राय ली। सबने समस्वर से राजसूय-यज्ञ के लिये सलाह दी। परंतु इसके लिये दिग्विजय की आवश्यकता है, और यह प्रजा के पूर्ण सहयोग से ही हो सकती है, ऐसा विचारकर महाराज युधिष्ठिर ने एक दिन उसी सभा-भवन में अपनी सारी प्रजा का आवाहन किया। प्रजा युधिष्ठिर के शासन से परम प्रसन्न थी। उसकी शिक्षा का पूरा प्रबंध हो चुका था। वाणिज्य का विस्तार भी प्रजा की श्री-वृद्धि के लिये किया जा चुका था। उन्हें शास्त्र तथा शस्त्रों में पारंगत करने के उद्योग भी जारी थे। उनकी सेवा-शुश्रूषा का भी राज्य की ओर से प्रबंध था। पुनः पांडव पाँचो भाई उनसे अपने सगे-संबंधियों की तरह वार्तालाप करते थे। राजा-प्रजावाला भाव न रखते थे। इसलिये प्रजाजन एकमन होकर राजसूय-यज्ञ की बातें सुनकर फूले न समाए और बडे हर्ष से महाराज युधिष्ठिर की सहायता के लिये तैयार हो गए।

सब तरफ़ से निश्चय कर युधिष्ठिर ने दूत भेजकर द्वारका से कृष्ण को बुलवाया। महाराज युधिष्ठिर का आमंत्रण पढ़कर उसी समय कृष्णजी भेजे हुए रथ पर सवार होकर महाराज युधिष्ठिर से मिलने के लिये चल दिए।

श्रीकृष्ण को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए, राजसूय-यज्ञ का संकल्प उन्हे सुनाया। श्रीकृष्ण भारत में धर्म-राज्य की स्थापना चाहते थे। उसका बीज अंकुरित हो रहा है देखकर, उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को इस कार्य के लिये प्रोत्साहन दिया। एक अड़चन बताई कि मगध-देश का राजा जरासंध जब तक जीवित है, तब तक यह शुभ कार्य हो नहीं सकता, क्योंकि वह सबको रोकेगा, और उसके पराक्रम के भय से दूसरे नरेश

इस यज्ञ में सम्मिलित न होंगे। पुनः श्रीकृष्ण ने कहा—"महाराज पांडु-नंदन, उसकी महाशक्ति से पराजित होकर हमने मथुरा छोड़ दी, और समुद्र के बीच द्वारका में राजधानी स्थापित की है। वह राजाओं को कैद कर नरमेध-यज्ञ करना चाहता है। यदि हम उस पर विजय प्राप्त कर सके, तो अनेक राजे प्राण-दान पाकर हमेशा के लिये हमारे पक्ष में हो जायँगे।" महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की आज्ञाकारिता स्वीकार कर ली। कृष्ण भी भीम और अर्जुन को साथ लेकर राजगृह के लिये रवाना हुए।

तीनो ने ब्राह्मण-वेश बना लिया। इंद्रप्रस्थ से चलकर अनेकानेक नदी-नद पार करते हुए, मगध में गोरथ-पर्वत के पास से राजगृह की शोभा देखते हुए, जरासंध के पिता बृहद्रथ के बनाए मंदिर का ऊपरी हिस्सा तोड़कर चुपचाप चार दीवार पारकर सीधे जरासंध की सभा में पहुँचे। ब्राह्मण

जानकर जरासंध पैर धुलाने के लिये उठा। पर कृष्ण ने इनकार कर दिया, और अपना परिचय देते हुए युद्ध के लिये ललकारा। जरासंध स्वाभिमानी वीर था। भीम से उसकी कुश्ती तय हो गई। देखने के लिये नगर-भर के लोग एकत्र हुए। चौदह दिनों तक घोर द्वंद्व युद्ध होता रहा। अंत में जरा-

सध थक गया। भीम ने उसके पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया, और उसका एक पैर लात से दबाकर, दूसरा पकडकर बीच से फाड़ डाला। जरासंध के वध से नगर के लोग बड़े भयभीत हुए। पर कृष्ण ने सबको धैर्य दिया। फिर कोटागृह में जाकर राजाओं को मुक्त किया। भीम का पराक्रम देश-देशांतरों तक फैल गया। राजागण भीम तथा कृष्णार्जुन के कृतज्ञ होकर अपने-अपने राज्य को गए। प्रसन्न-चित्त से सब लोग इंद्रप्रस्थ में महाराज युधिष्ठिर से मिले।

★ दिग्विजय और शिशुपाल-वध

राजसूय-यज्ञ के लिये दिग्विजय आवश्यक हो गई। राजाओं से कर लेकर उन्हें आमंत्रित करना था। महाराज युधिष्ठिर ने सलाह करके चारो भाइयों को एक-एक दिशा में भेजा, सबके साथ विशाल चतुरंगिनी सेना चली। भीम पूर्व दिशा को चले। कोशल, काशी, पाचाल, विदेह, वग आदि देशों को जीतकर हीरे-मोती, सोना-चाँदी आदि धन-रत्न और बहु-मूल्य वस्तुएँ लेकर, उन्हें निमंत्रण देकर लौटे। अर्जुन उत्तर तरफ गए। उन्होंने प्राग्ज्योतिष, उलूक और कश्मीर आदि देशों को जीता। इसके बाद उत्तर-कुरु नाम के गंधर्व-देश में गए। उसे मायापुरी कहकर द्वारपालों ने कर देकर अर्जुन को विदा किया। वह भी प्रचुर धन-राशि अपने साथ लाए। नकुल पश्चिम गए। महेद्रव, जैरीषक, रोहित, शिवि, दशार्ण और त्रिगत आदि देशों को जीतकर, राजाओं को निमंत्रण देकर, अपार धन-संग्रह कर लाए। सहदेव दक्षिण के मथुराधिप, कुतिभोज और मत्स्यराज आदि मित्र राजाओं से मिलते हुए किष्किंधा में वानरो के राज्य मे पहुँचे। सात दिन तक सहदेव से वानरों का घोर सग्राम हुआ। अंत में वानरो ने प्रसन्न होकर, धन-रत्नादि देकर सहदेव को विदा किया। पश्चात् कच्छ, द्रविड, कलिंग, पुरी आदि देशों से उन्होंने कर वसूल किया, और खबर भेजकर विभीषण से भी मैत्री-रूप मोती आदि मँगवा लिए। सब भाई दिग्विजय कर यथासमय इंद्रप्रस्थ वापस आए। महाराज युधिष्ठिर के खजाने में धन-रत्नों के ढेर लग गए।

बड़े समारोह से यज्ञ की कार्यवाही होने लगी। भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन

व्यास इस यज्ञ के प्रधान नियत किए गए। धौम्य तथा याज्ञवल्क्य, वसु के पुत्र और पौत्र होता हुए। इनके शिष्यादि सहायक रहे। बड़े उपचारों से यज्ञ का अनुष्ठान शुरू हुआ। देश-देश के वेदज्ञ ब्राह्मण बुलाए गए। दिन-रात वेद-मंत्रों का गान होने लगा। कश्यप, पराशर, वामदेव, जैमिनी, वैशपायन, च्यवन, विश्वामित्र, कण्व, गौतम, मैत्रेय, भरद्वाज आदि ऋषि-महर्षि भी आमंत्रित होकर आए।

द्रुपद, विराट, जयद्रथ, शिशुपाल, भगदत्त, बलराम, धृष्टद्युम्न आदि-आदि नरेंद्रगण चारों दिशाओं से एक-एक कर यथासमय उपस्थित होने लगे। हस्तिनापुर से भी भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन, दुःशासन आदि आमंत्रित होकर यज्ञ देखने के लिये पधारे। कृष्ण की राय से महाराज युधिष्ठिर ने सबको यथोचित कार्य का भार दिया। भीष्म और द्रोण को यज्ञ की कार्यावली के निरीक्षण का भार सौंपा, कृपाचार्य को सुवर्ण-रत्नों की परीक्षा तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा देने का, महाराज दुर्योधन को राजा-महाराजाओं के उपहार स्वीकार करने का, अश्वत्थामा को ब्राह्मणों के सत्कार का, दुःशासन को भोजन-भांडार का, श्रीकृष्ण ने स्वयं ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य स्वीकार किया।

जब सब राजा एकत्र हो गए, और सबके आदर-सत्कार की बारी आई, तो महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म को प्रणाम करके पूछा कि किसकी पूजा पहले होनी चाहिए। भीष्म ने कहा, यहाँ उपस्थित लोगों में कृष्ण ही सबसे श्रेष्ठ हैं। सुनकर सहदेव कृष्ण के पैर पखारने लगे। शिशुपाल को यह कार्य बड़ा बुरा लगा। वह भीष्म तथा कृष्ण को गालियाँ देने लगा। उसने कहा—"यह राजाओं का अपमान किया गया है। वृद्ध भीष्म की बुद्धि मारी गई है। यहाँ तो कृष्ण के पिता भी मौजूद हैं, तो क्या वह अपने पिता से भी बढ़कर हो गया? भगवान् व्यासदेव, आचार्य द्रोण आदि पूज्य-पाद पुरुष-प्रवरों के रहते कृष्ण की पूजा करके पांडवों ने तथा वृद्ध भीष्म ने मूर्खता प्रदर्शित की है। यदि राजा की पूजा करनी थी, तो यहाँ नरेंद्र-शिरोमणि दुर्योधन, शाल्व, शल्य, रुक्मी आदि विद्यमान थे। मेरी समझ में न आया कि कृष्ण सर्वश्रेष्ठ कैसे हो गया?" शिशुपाल के तरफ़दार दुर्योधन आदि राजाओं को इस भर्त्सना से बड़ी प्रसन्नता हुई। पर पितामह को कुवाच्य कहते हुए सुनकर भीम से न रहा गया। गुस्से से उनका सारा

बदन भर गया। वह झपटकर शिशुपाल की ओर चले, तो भीष्म ने उन्हें पकड़कर स्नेह की दृष्टि से देखते हुए शांत किया। श्रीकृष्ण चुपचाप खड़े हुए गालियाँ सुनते रहे। शिशुपाल कृष्ण की बुआ का लड़का था। बचपन में शिशुपाल को बदमाश जानकर उसकी माता ने कृष्ण से कहा था, इसके सौ कुसूर भी माफ कर देना। कृष्ण इसलिये शांत भाव से खड़े सुन रहे थे। कृष्ण को गालियाँ देकर शिशुपाल फिर भीष्म को जली-कटी सुनाने लगा—"इन राजाओं को धन्यवाद है, जिनके कारण, हे भीष्म, तुम्हारी और कृष्ण की जान बची हुई है।" कई गालियाँ खा चुकने पर भीष्म का धैर्य जाता रहा। वह क्रोध में आकर बोले—"चेदीश्वर शिशुपाल ! तुम मुझे जानते हो। तुम तो एक शिशु हो, तुम मेरे मुकाबले क्या आ सकोगे ! तुम्हारे तरफदार सब राजाओं के साथ क्षण-मात्र में मैं तुम्हें यमलोक दिखा सकता हूँ।" महावीर भीष्म के भव्य मुख-मंडल की चढ़ी हुई आँखें और टेढी भौहें देखकर शिशुपाल दब गया। पर आवेश में आकर फिर कृष्ण को गालियाँ देने लगा। सभा के सभी नरेंद्र स्तब्ध हो रहे थे, और शीघ्र किसी विपत्ति के होने की शंका कर रहे थे। कृष्ण क्षमा करते गए, इधर शिशुपाल की सौ गालियाँ पूरी हो गईं। पर क्रोधांध कब रुकता है ? उसने पुनः गाली दी। इस बार कृष्ण के होठ फडक उठे, आँखें लाल हो गईं। उनका वह चेहरा ही बदल गया। उन्हें देखकर उनके विरोधी दहल उठे। कृष्ण ने अपना प्रसिद्ध अस्त्र सुदर्शन चक्र लेकर शिशुपाल की ओर चला दिया। देखते-देखते उसका सिर कटकर जमीन पर आ गिरा। नरेंद्र-मंडल में आतंक फैल गया। महाराज युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कृष्णजी की विनय करते हुए उन्हें शांत किया, पश्चात् राजाओं को परितृप्त किया। पुन शिशुपाल के पुत्र महीपाल को उसके पिता के सिंहासन पर अधिरूढ़ किया।

इस प्रकार शांति होने पर पुनः यज्ञ की कार्यावली शुरू हुई। चारों ओर पांडवों की प्रशंसा होने लगी। इसी समय राजप्रासाद में विचरण करता हुआ दुर्योधन वहाँ पहुँचा, जहाँ मय ने स्थल को जल-रूप निर्माण किया था। जल समझकर दुर्योधन कपडे समेटने लगा। वहीं कुछ दूर पर द्रौपदी खड़ी थी। दुर्योधन का दृश्य देखकर हँसने लगी, और सुनाकर बोली, अंधे के अंधा ही पैदा होता है। आवाज़ दुर्योधन के कान में पड़ी। उसका चेहरा उतर गया। पर कुछ न कहकर उस अपमान को दुर्योधन पी गया। पुनः कुछ दूर

चला, तो वहाँ एक ऐसा आईना था, जो पारदर्शी था। दुर्योधन की समझ में न आया कि यहाँ आईना जड़ा हुआ है। वह उसे रास्ता समझकर सीधे चलता गया, इससे उसका सर आईने से टकरा गया। साथ भीम भी थे। अब की भीम को भी हँसी आ गई। राजा और खासतौर से दुर्योधन-जैसे अभिमानी राजा के लिये यह साधारण अपमान न था। पर कोई उपाय न था! इसलिये जलकर दुर्योधन अपने ही आत्मा में उस आग को दबाकर रह गया। बदले के लिये समय की प्रतीक्षा करने लगा।

यज्ञ सकुशल समाप्त हुआ। दुःशासन अजस्र दान कर-करके भांडार को खाली कर देना चाहता था, पर वह साक्षात् लक्ष्मी का भांडार था। स्वयं विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण पांडवों से सहयोग कर रहे थे। वह कैसे रिक्त होता? फल यह हुआ कि आशा से अधिक भोजन-पान तथा दान-दक्षिणा आदि पाकर ब्राह्मण लोग अत्यंत प्रसन्न हुए, और पांडवों का यशोगान करते हुए अपने-अपने घरों को गए। देश-देश के कलावंत भी पांडवों की कीर्ति-गाथा और आदर-सत्कार आदि की चारों ओर प्रशंसा करने लगे। नरेंद्र-मंडल भी सब तरह से सुखी तथा पांडवों के आतिथ्य से प्रीत होकर विदा हुआ।

श्रीकृष्ण को काफी समय लग गया। सबके चले जाने के बाद उनकी विदाई हुई। उनकी बहन सुभद्रा भी भाई के साथ गई। द्वारका पहुँचकर कृष्ण ने देखा, द्वारका की वह शोभा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई थी। पूछने पर मालूम हुआ कि शिशुपाल का मित्र शाल्व, अपने मित्र का बदला लेने के लिये, कृष्ण की अनुपस्थिति में, वायुयान द्वारा आकाश-मार्ग से द्वारका पर चढ़ आया था। साथ उसकी सेना भी आकाश-मार्ग से लड़ रही थी। द्वारका के अधिकांश वीर पांडवों के यहाँ आमंत्रित होकर चले गए थे। शत्रु-पक्ष आकाश-मार्ग से परशु, भल्ल, शक्ति, तोमर, शतघ्नी आदि अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर द्वारका को ध्वस्त करने लगा! तब प्रद्युम्न के सेना-पतित्व में एक सेना शत्रु का सामना करने के लिये चली। शाल्व पराजित होकर भग गया है, सुनकर कृष्ण को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसी क्षण चतुरंगिनी सेना लेकर शाल्व की राजधानी पर चढ़ाई की। शाल्व वायुयान पर चढ़कर समुद्र की ओर भग गया। कृष्ण के पास वायुयान न था। वह भूमि से ही उसका मुकाबला करने के लिये समुद्री तट घेरे रहे। वह लौटा, और कृष्ण पर तीरों के प्रहार करने लगा। कृष्ण ने नीचे से ही उसके तीर काट दिए, और

दिव्यास्त्र द्वारा उसके वायुयान के दो खंड कर दिए। शाल्व पृथ्वी पर चक्कर खाता हुआ आ गिरा। कृष्ण ने उसे पकड़कर खड्ग द्वारा उसके दो टुकड़े कर दिए। इस प्रकार बदला लेकर द्वारका लौटे।

★ द्यूत-क्रीड़ा और द्रौपदी का चीर-हरण

विदा होकर हस्तिनापुर आने पर दुर्योधन की ईर्ष्या की आग सहस्रों लपटों से जलने लगी। पांडवों को जलाने का विचार करता हुआ वह खुद उससे जलने लगा। इससे उसका स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। जो काँटा दिल में चुभा हुआ था, उसके निकलने का कोई उपाय न नजर आता था। एक दिन वह महाराज धृतराष्ट्र के पास बैठा था। पुत्र-स्नेह से धृतराष्ट्र उसके शरीर पर हाथ फेरने लगे। पहले से उसे दुर्बल देखकर सस्नेह पूछा—"वत्स, तुम दिन-दिन दुबले क्यों हुए जा रहे हो। तुम्हारा स्वास्थ्य तो इतना गिरा हुआ कभी न था।" दुखी होकर दुर्योधन बोला—"पिताजी, पांडवों की तारीफ सुनकर तथा उनकी श्रीवृद्धि देखकर मैं सदा चिंता-ग्रस्त रहता हूँ। वे देखते-देखते संसार-प्रसिद्ध हो गए, और मुझसे कुछ भी न किया गया।" धृतराष्ट्र ने धैर्य देकर समझाया कि सच्चे भाव से रहने पर समय स्वयं सबको यश तथा कीर्ति के लिये सुयोग देता है। कर्ण तथा शकुनि भी उस समय वहाँ थे। कर्ण ने कहा—"मित्र, तुम व्यर्थ के लिये चिंता-ग्रस्त हो। चलो, हम लोग सलाह करके कार्य-क्रम का निश्चय कर लें। तुम्हें पांडवों से अधिक कीर्ति तथा यश मिल जायगा।" मामा शकुनि ने मुस्किराकर कहा—"वत्स दुर्योधन, तुमने पहले यह बात कही होती, तो अब तक तुम्हीं संसार-प्रसिद्ध नजर आते, छल हमेशा बल से बड़ा माना गया है। मैं ऐसे-ऐसे दाँव तुम्हें दिखाता कि तुम भी समझते, मामा के पास कैसे-कैसे जौहर छिपे हैं।"

प्रसन्न होकर कर्ण और शकुनि को साथ लेकर दुर्योधन एकांत में गया। वहाँ आपस में तीनों की मंत्रणा होने लगी। शकुनि बोला—"जिस तरह पांडवों ने सभा-मंडप बनवाया है, उसी तरह तुम भी एक बनवाओ। उन्होंने यज्ञ किया है, तुम वहाँ जुआ खेलो। महाराज धृतराष्ट्र को मना लो। वह तुम्हें प्यार करते हैं। तुरंत आज्ञा दे देंगे। फिर जुआ तो बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं का ही खेल है। जिसको पेट-भर भोजन नहीं मिलता, वह क्या

जुआ खेलेगा। सभा-भवन बन जाने पर भीष्म, द्रोण, कृप, महाराज धृतराष्ट्र आदि सबको बुलाओ, और युधिष्ठिर को बुलाकर पहले से जुआ खेलने के लिये राजी कर लो। वह डरपोक है, पहले जरूर इनकार करेगा, पर शकुनि की जबान सरस्वती को चरका बताती है, बेचारा युधिष्ठिर तो कल का छोकड़ा है। ऐसी दलीलें पेश करूं कि बच्चे की अक्ल ठिकाने आ जाय। वह तो वह, उसके पीर भी जुआ खेलें। तब तुम देखो मामा के दांव-पेच, चार चालों में मात करता हूं। घबराओ नहीं, मेरे पास सिद्ध पांसा है। मैं हार

नहीं सकता। तुम यह फैसला कर लेना कि युधिष्ठिर के साथ मेरी तरफ से मामाजी खेलेंगे—बस, जाओ, बच्चे की तरह खुश रहो, खाओ और मौज करो। देखो, मैं तुम्हें थोड़े दिनों में कितना प्रसिद्ध करता हूं।"

शकुनि की बात सुनकर कर्ण को बड़ी खुशी हुई। उसने दुर्योधन पर

याद रखते हुए कहा—"मित्र, इससे अच्छा पांडवों को नीचा दिखलाने का दूसरा उपाय न होगा। जो पाडव आज संसार-प्रसिद्ध हो रहे हैं, वे जए में हारकर हमारे गुलाम हो जायेंगे। इससे उनकी प्रशसा मिट जायगी, और उनका सारा वैभव हमारे पास आ जाने पर हमी सब देशों में सबसे नामी कहलाएँगे।" दुर्योधन इतने सीधे उपाय से इतना बड़ा और मुश्किल काम बनते हुए देखकर मारे खुशी के अग मे फूला न समाया। वह सीधे धृतराष्ट्र के पास गया, और सारी बाते एकात मे सुनाई। पुत्र की भलाई चाहनेवाले स्नेह-दुर्बल पिता ने आज्ञा दे दी। फिर क्या था, अच्छे-अच्छे कारीगर बुलाए गए, और जल्द-से-जल्द अच्छे-से-अच्छा सभा-भवन तैयार करने की आज्ञा दे दी गई।

दुर्योधन, दु.शासन, कर्ण और शकुनि आदि की गुप्तमत्रणाएँ तथा आमोद-प्रमोद होते रहे। इस तरह की उच्छृखल प्रसन्नता में समय पार हो रहा था कि सुविशाल भव्य सभा-भवन तैयार हो गया। तब सलाह करके इमारत दिखाने के विचार से दुर्योधन ने पांडवों को बुला भेजा। महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाँचो भाई यथासमय दुर्योधन के अतिथि-स्वरूप हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। पांडवों को देखकर हस्तिनापुर के लोग अत्यंत प्रसन्न हुए और बड़े प्रेम से पाँचो भाइयों से मिले। महाराज युधिष्ठिर आदि पाँचो भाइयों ने भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र और गाधारी आदि के यहाँ जा-जाकर उन्हें प्रणाम किया। उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर भाई दुर्योधन, दु.शासन आदि से मिले। दुर्योधन बड़ी प्रसन्नता से महाराज युधिष्ठिर आदि को सभा-भवन में ले गया, और उसका कला-कौशल दिखलाया। फिर कहा—"भाई, यह सभा-भवन हमने द्यूत-क्रीड़ा के विचार से बनवाया है। पिताजी ने भी इसके लिये आज्ञा दी है।" महाराज युधिष्ठिर ने सुनकर कहा—"जुआ खेलना तो पाप है।" वहीं शकुनि भी था। जोर से हँसकर बोला—"युधिष्ठिर, धर्म की डींग हाँकनेवाले जैसे खुद बेवकूफ होते हैं, वैसे ही दूसरे को भी समझते हैं—तभी तो उन्हें, यह पाप है, और यह पुण्य है, कहकर शिक्षा दिया करते हैं। तुम अक्लवाले आदमी हो। अच्छा बतलाओ, दूसरे का देश जीत लेना, दूसरों का धन बल-पूर्वक छीन लेना, और तारीफ यह कि इसके बाद एक यज्ञ करके पुण्य का ढोल पीटना, यह धर्म और सत्य है? यह पुण्य है?—

बतलाओ, आदमीयत क्या कहती है ? और यहाँ, यहाँ तो दो मनुष्य, दो राजे बैठकर जुआ खेलेंगे; न लड़ाई, न झगड़ा, न आदमी कटेंगे, न त्राहि-त्राहि होगी। जो जीता, वह ले गया, बस। इसे तुम पाप कहते हो ! तुमको मालूम हो कि इसके देखने के लिये भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि सब धर्मात्मा बुलाए जायेंगे।" महाराज धृतराष्ट्र भी पधारेंगे, और जो नतीजा हासिल होगा, सुनेंगे। फिर यह पाप कैसे हो गया ?"

महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"अगर हमारे गुरुजन भी जुआ देखने के लिये आवेंगे, तो ठीक है।" दुःशासन बोला—"यह जुआ महाराज दुर्योधन और आपसे होगा। महाराज दुर्योधन खुद न खेलेंगे, उनकी तरफ से मामा शकुनि पाँसा फेकेंगे। हार-जीत महाराज दुर्योधन की होगी।" युधिष्ठिर ने इसका उत्तर न दिया।

दूसरे दिन दरबार लगा। हस्तिनापुर के बड़े-बड़े लोग सभा-भवन में आमन्त्रित होकर आए। भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, विदुर, महाराज धृतराष्ट्र आदि के आसन सुशोभित हो गए। हस्तिनापुर के खासोआम सब एकत्र हुए। युधिष्ठिर को सादर साथ लेकर दुर्योधन भी भाइयों तथा शकुनी और कर्ण के साथ पहुँचा। दो अलग-अलग टुकड़ियाँ हो गईं। एक ओर कौरव बैठे, एक ओर पाडव। हस्तिनापुर के लोग परस्पर वार्तालाप करने लगे कि दुर्योधन के कारण इस वंश की कुशल न होगी। बीच में खेलने की जगह करके दाँव रक्खा गया। महाराज युधिष्ठिर ने पाँसा फेंका। पर कुछ न हुआ। अब शकुनि पाँसा लेकर उँगलियों में गड़गड़ाने लगा। महाराज युधिष्ठिर ने धन-रत्नों की बाज़ी लगाई। शकुनि ने पाँसा फेंका, उसका दाँव आ गया। कौरव ठहाका मारकर हँसने लगे। भीष्म और विदुर आदि को यह बड़ा बुरा लगा। पर राजदरबार के विचार से मौन बैठे रहे। दुबारा महाराज युधिष्ठिर ने अपने राज्य की बाज़ी लगाई। शकुनि का दाँव फिर आया। कौरवों के हर्ष की सीमा न रही। बिचारा युधिष्ठिर ने अपने साथ चारों भाइयों को दाँव पर रक्खा। फिर शकुनि का पाँसा पड़ा। दुर्योधन ने बड़ी शान से भीम की तरफ देखा। भाई का खयाल कर भीम चुप हो रहे। युधिष्ठिर ने कहा—"अब तो मैं सर्वस्व हार चुका, अब क्या खेलूँ ?" शकुनि ने कहा—"अब द्रौपदी को रक्खो, इस बार तुम जीते, तो जो कुछ हार चुके हो, सब वापस ले जाओ।" युधिष्ठिर को नष्ट संपत्ति का लोभ

हुआ, दाँव पर उन्होंने द्रौपदी को भी लगा दिया। सभा के सज्जन लोग घोर पाप—घोर पाप की आवाज लगाने लगे। पर कुछ फल न हुआ। शकुनि ने पाँसा फेंका, फिर उसका दाँव पड़ा। द्रौपदी की जीत से दुर्योधन ने जैसे सौर ससार पर विजय कर ली हो, उसे ऐसी खुशी हुई। मन-ही-मन धृतराष्ट्र भी खुश थे।

दुर्योधन ने विकर्ण को बुलाकर कहा—"जाओ, पाँसे के समाचार द्रौपदी से कहकर उसे सभा-भवन मे ले आओ। वह अब हमारी दासी है।" सभा के लोग भाइयों का ऐसा पतन देखकर रोने लगे। विकर्ण द्रौपदी के पास गया। पाँसे के समाचार सुनकर द्रौपदी ने पूछा—"विकर्ण! महाराज युधिष्ठिर ने पहले अपनी बाजी लगाई थी या मेरी?" विकर्ण ने विनीत भाव से कहा—"देवी! महाराज युधिष्ठिर ने पहले अपने साथ चारो भाइयों की बाजी लगाई थी।" द्रौपदी ने कहा—"तो जाओ, सभा में कहो कि द्रौपदी नहीं आना चाहती। महाराज युधिष्ठिर खुद हारकर, अपना स्वत्व खोकर, मेरी बाजी नहीं लगा सकते, यह अन्याय है।" विकर्ण ने सभा में लौटकर द्रौपदी का समाचार दुर्योधन को सुनाया। भीष्म और विदुर आदि विद्वज्जनों ने द्रौपदी की उक्ति का समर्थन किया, परंतु मदांध दुर्योधन को न्याय कब सूझता था? उसने दु:शासन को सभा में द्रौपदी को पकड़ लाने के लिये भेजा। दु:शासन को देखकर बड़ी विनय से द्रौपदी ने कहा—"दु:शासन, मेरी लज्जा न लो। मैं कुल-वधू हूँ। मेरे धर्म की ओर देखो। फिर इस समय मैं रजस्वला हूँ।" दु:शासन ने द्रौपदी की विनय पर ध्यान न दिया। उसकी क्रूर मुद्रा देखकर द्रौपदी गांधारी के महल को भगी, किंतु दौड़कर दु:शासन ने खुले बाल पकड़ लिए, और घसीटता हुआ सभा-भवन को ले चला।

सभा में पहुँचकर भीष्म की ओर देखकर रोती हुई द्रौपदी बोली—"पितामह! क्या आपके कुल की यही मर्यादा है? क्या महाराज युधिष्ठिर अपनी बाजी लगाने के बाद हारकर मेरी बाजी लगा सकते थे?"

अब भीष्म से न रहा गया। उन्होंने कहा—"बेटी, न्याय तेरी तरफ है। कौरवों का अत्याचार पृथ्वी सहन न कर सकेगी।" कृष्णा को विवश सजल नेत्रों से असहाय पतियों की ओर देखते हुए देखकर वीर-श्रेष्ठ भीम से न रहा गया। वह भीषण सिंहनाद से सभास्थल को विकंपित करते हुए बोले—"हे सूर्य, हे व्योम, हे भीष्म, प्रमाद-ग्रस्त युधिष्ठिर के अन्याय-कार्य

के कारण निरपराधिनी कृष्णा का जिस हाथ से नीचात्मा दुःशासन ने केश-कर्षण किया है, उस हाथ को मैं युद्ध में उखाड़कर फेंक दूंगा, तुम्हें साक्षी

कर प्रतिज्ञा करता हूं।" सभा-स्थल तथा कौरव युद्ध काल के लिये भय से थरथर कांपने लगे। अर्जुन ने भीम को पकड़कर आश्वस्त करते हुए बैठाल दिया, पर भीम को उत्तेजित करने के विचार से दुर्योधन द्रौपदी को देख-कर अपनी जांघ पर थपकियां मारता हुआ बैठने का इशारा करने लगा। भीम क्रुद्ध थे ही, पुन: दर्प से उठकर खड़े हो गए, और वैसे ही गरजकर बोले—"दुष्ट दुर्योधन ने जिस जांघ पर बैठने के लिये इशारा करके कृष्णा का अपमान किया है, मैं अपनी भीम-गदा के प्रचंड घात से उसकी उस जांघ को तोड़ दूंगा।"

इस बार धृतराष्ट्र को बहुत बुरा लगा, पर सब लोग विपत्ति की चिंता करने लगे। अर्जुन ने फिर भीम को शांत कर बैठाया। चिढ़कर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी—"द्रौपदी मेरी दासी है, इस सभा में उसे नंगी करो।"

त्रस्त होकर द्रौपदी ने सभा के मनुष्य-मनुष्य से लाज बचाने की प्रार्थना की, पर सब लोगों ने सिर झुका लिया। तब कृष्णा को कृष्ण की याद आई। सजल आँखों ऊँचे स्वर से पुकार-पुकारकर कहने लगी—"हे दीन-बंधु! हे भक्त-वत्सल! हे करुणा-सागर, कृष्ण, इस विपत्ति में तुम्हीं मेरे उद्धारकर्ता हो। दासी की लाज तुम्हारे ही हाथ है भगवन्!"

भगवान् कृष्ण का मन चचल हो उठा, वह अपने पूर्ण रूप की ओर जाने लगे, तो द्रौपदी की दशा उनके ध्यान-नेत्रों के सामने आ गई। वह इस अत्याचार से चकित हो गए, और माया का स्मरण किया। माया हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई। भगवान् कृष्ण ने कहा—"हस्तिनापुर की राजसभा में द्रौपदी का वस्त्र हरण हो रहा है। जाओ, उसे नग्न न होने दो।" द्रौपदी हाथ जोड़े हुए प्रार्थना करती जाती थी, दुःशासन वस्त्र खींचता जा रहा था। वह खींचते-खींचते थक गया, हारकर बैठ गया।

द्रौपदी की प्रार्थना से धृतराष्ट्र को भी दया आ गई। उन्होंने कहा—"बेटी, तू माँग, क्या माँगती है।" द्रौपदी ने आँसू पोछकर कहा—"महाराज युधिष्ठिर जो कुछ हार चुके है, वह सब वापस कर दीजिए।" महाराज धृतराष्ट्र ने कहा—"बेटी, तेरे लिये हमने वह सब वापस कर दिया।" यह कहकर वह सभा-भवन से चले गए। रास्ते में दुर्योधन के मित्रों ने कहा—"आपने दुर्योधन के लिये बड़ा बुरा किया। भीम की प्रतिज्ञा आप सुन चुके हैं।" धृतराष्ट्र को पुत्र-स्नेह ने फिर दबाया। उन्होंने बचने का उपाय पूछा। उन मित्रों ने कहा—"राज्य वापस देकर बारह साल का वनवास और एक साल के अज्ञात-वास की बाजी पर फिर जुआ हो। इस तरह पाडव हारकर राज्य पाने का मौका ही न पाएँगे, न दुर्योधन मारा जायगा।" धृतराष्ट्र ने फिर आज्ञा दे दी।

लाचार होकर युधिष्ठिर को फिर खेलना पड़ा, क्योंकि राज्य प्राप्ति के लिये धृतराष्ट्र की यह शर्त भी जोड़ दी गई। इस बार भी युधिष्ठिर ही हारे।

वनपर्व

✱ पांडवों का काम्यक-वन के लिये प्रस्थान

जुए मे सर्वस्व हारकर बारह साल का बनवास और एक साल का अज्ञात-वास भी स्वीकार करके खिन्न-चित्त मे पाडवों के साथ युधिष्ठिर वन के लिये तैयार होने लगे । चारों भाई और द्रौपदी उनका अनुसरण करते हुए चले ।

माता कुंती वृद्ध हो गई थी, इसलिये युधिष्ठिर उन्हें विदुर के घर ले गए, और कष्टों के झेलने की उनकी असमर्थता समझाते हुए भक्ति-पूर्वक बोले—

"माता, जब तक हम लोग वनवास और अज्ञातवास की अवधि पूरी करके पापी दुर्योधन से बदला नहीं चुकाते, तब तक आप चाचा विदुर के ही यहाँ रहें।" इसके बाद कृष्णा-सहित पाँचों भाइयों ने उन्हें प्रणामकर पुरोहित धौम्य के साथ वन के लिये प्रस्थान किया। मलिन वेश धारण किए हुए युधिष्ठिर के पीछे-पीछे चारों भाई द्रौपदी के साथ चले जा रहे थे। बात-की-बात में खबर हस्तिनापुर में फैल गई। लोग दुर्योधन तथा आँख के अंधे होकर भी अक्ल के दुश्मन राजा धृतराष्ट्र की कड़ी आलोचना करने लगे। ब्राह्मणों ने सोचा—"ऐसे अधम राजा का राज्य इसी समय छोड़ देना चाहिए। जहाँ अन्याय है, जहाँ धर्म की ओर दृष्टि नहीं, वहाँ ब्राह्मणों को कदापि न रहना चाहिए।" वे अन्य पुरवासियों के साथ एकत्र होकर उच्च स्वर से युधिष्ठिर का नाम लेकर पुकारते हुए पीछे-पीछे दौड़े। ब्रह्म-मंडली तथा पौर-जनों को प्रेम-वश पीछा करते हुए देखकर धर्मात्मा युधिष्ठिर खड़े हो गए। ब्राह्मणों ने घेरकर कहा—"धर्मराज, बिना तुम्हारे यह राज्य श्मशान से भी भयंकर है। हम लोग भी तुम्हारे साथ वन चलेंगे। हम पर दया करो, हमें अपने साथ ले चलो, यहाँ हमारा निबाह न होगा।" ब्राह्मणों के साथ तमाम साधारण लोगों को देखकर महाराज युधिष्ठिर चिंता में पड़ गए। सोचकर ब्राह्मण तथा पुरवासियों को धैर्य देते हुए बोले—"हे विप्रगण! आप लोग प्रायः सभी वृद्ध हो रहे हैं। वन के दुःसह कष्टों को न झेल सकेंगे। पुनः मैं अब राजा नहीं रहा। वन में आप लोगों की उचित सेवा तथा भोजन-पान का प्रबंध मैं न कर सकूँगा। इसमें मुझे पाप होगा। इसलिये आप लोग अपने-अपने गृह लौट जाइए। अवधि पूरी कर मैं आप लोगों की सेवा में हाजिर हो सकूँ, इसके लिये घर बैठे हुए ही परमात्मा से प्रार्थना कीजिए, इसमें मेरा यथेष्ट कल्याण होगा।" पर महाराज युधिष्ठिर के आश्वासन से भी ब्राह्मणों ने पीछा न छोड़ा। अन्य लोग तो लौट गए। ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज, चौथे पन में तपस्या करना हमारा धर्म है। आप हमारे भोजन-पान की चिंता न कीजिए। हम भिक्षा-भ्रमण कर लेंगे। हम केवल आपके साथ रहना चाहते हैं।" लाचार होकर महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को साथ ले लिया।

ब्राह्मणों को साथ चलते हुए देखकर पुरोहित धौम्य ने महाराज युधिष्ठिर को सूर्यदेव की उपासना द्वारा प्रसन्न करने की सलाह दी। युधिष्ठिर

के स्वीकृत होने पर मंत्र तथा पूजा का विधान भी बतला दिया। भगवान् मरीचिमाली ही संसार को अन्न तथा जल देकर प्रसन्न करते हैं, इस भाव से मंत्र जपते हुए महाराज युधिष्ठिर उपासना पूर्ण करने लगे। मंत्र-सिद्धि के समय दिव्य रूपधारी सूर्यदेव युधिष्ठिर के सामने आविर्भूत हुए, और अक्षयथाली देते हुए बोले—"इसे लेकर तुम ब्राह्मणों की सेवा करो।" द्रौपदी भोजन पकाकर उसी थाली में लेकर ब्राह्मणों को खिलाने लगीं। पांडवों को भोजन कराकर बाद को स्वयं भोजन करती। सब लोगों की तृप्ति होने तक बराबर थाली से अन्न निकलता रहता। इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर कुरुक्षेत्र होते हुए सरस्वती-नदी के किनारे पर काम्यक-वन में जाकर वास करने लगे।

इसी समय एक दिन महाराज धृतराष्ट्र विदुर पर अत्यंत रुष्ट हो गए। कारण यह था कि विदुर पांडवों के पक्ष में प्राय राजसभा में उनकी तारीफ करते थे। धृतराष्ट्र में पुत्र-स्नेह की दुर्बलता थी। एक दिन उन्होंने विदुर को दुतकार दिया। उन्होंने सोचा, यह मेरे पुत्रों का अमंगल चाहता है, विदुर को इस अपमान से सख्त चोट पहुँची। वह पांडवों के पास रहने के लिये, काम्यक-वन को चल दिए। उनके जाने से पांडवों को धृतराष्ट्र के मंद व्यवहार पर बड़ा क्षोभ हुआ, पर विदुर को वे पिता की ही तरह समझते और उनकी सेवा करने लगे। कुछ दिनों बाद महाराज धृतराष्ट्र को विदुर की सहृदयता का अभाव खटकने लगा। बचपन से उनका जो स्नेह तथा आदर प्राप्त करते आ रहे थे, उनके बिना आत्मा विकल होने लगी; तब संजय को बुला लाने के लिये भेजा। संजय के पहुँचने पर पांडवों ने विदुर को जाने की ही सलाह दी। माता कुंती उन्हीं के यहाँ रहती थीं। विदुर भी राजाज्ञा तथा अन्य बातों का विचार कर हस्तिनापुर चले गए।

राजकुमार होने के कारण वनवास में पांडवों को कष्ट तो होता था, पर स्वभाव के साधु होने के कारण महात्माओं तथा तीर्थों के दर्शन से, उनके अमृतोपम उपदेशों तथा प्राकृतिक दिव्य छटाओं के प्रभाव से उन्हें आत्मिक तथा धार्मिक प्रसन्नता ही होती थी। पांडव काम्यक-वन, द्वैत-वन आदि अनेकानेक वनों, शैल-शिखरों, तीर्थों तथा देवालयों की यात्रा करते फिरे। उनके वनवास की खबर अब तक भारतवर्ष-भर में फैल चुकी। पांचाल-राज को इससे बड़ा दुःख हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण सुनते ही पांडवों

से मिलने को चल दिए। प्राण-तुल्य पांडवों तथा आत्मा के समान प्यारी बहन कृष्णा को देखकर कृष्ण करुणा से विचलित हो गए, आँखों से अनर्गल अश्रु-धार बहने लगी। कृष्णा भी प्रिय कृष्ण को देखकर रोके हुए भाव के प्रबल वेग को न रोक सकी, उन्हें पकड़कर रोने लगी। श्रीकृष्ण ने अपने को सँभालकर द्रौपदी को अनेक प्रकार से धैर्य दिया, पांडवों को भी समझाया कि वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि पूर्ण कर, वे हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन से अपना राज्य वापस माँगें। इस प्रकार की अनेकानेक बातें हुईं। पांडवों तथा द्रौपदी ने कृष्ण की बड़ी खातिरदारी की।

पांडव धार्मिक तथा राजनीतिक बातों से वनवास का समय पूरा कर रहे थे, इसी समय वेदव्यासजी उनसे आकर मिले। पांडव द्वैत-वन से पुन. काम्यक-वन में आकर रह रहे थे। पांडवों की तपस्या के समाचार से प्रसन्न होकर भगवान् वेदव्यास ने कहा—"वत्स युधिष्ठिर, मैं चाहता हूँ, जब तक तुम लोग वन मे हो, तब तक भावी युद्ध की तैयारी के लिये दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर लो। दुर्योधन का जैसा स्वभाव है, इससे ज्ञात होता है, तुम्हारे लिये युद्ध करना अनिवार्य होगा, पर बिना पूरी तैयारी किए तुम लोग भीष्म, द्रोण-जैसे महारथ वीरों का मुकाबला न कर सकोगे।" व्यासदेव की यह आज्ञा युधिष्ठिर के चित्त में बैठ गई। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्, हमें तो दिव्यास्त्रों की साधना का कोई मार्ग मालूम नहीं, आप जैसी आज्ञा देंगे, वैसा करने के लिये हम तन-मन से तैयार हैं।" मुस्किराकर व्यासजी ने कहा—"वत्स युधिष्ठिर, तुम धर्म-पुत्र हो। साधुओं से किस प्रकार बातचीत की जाती है, यह तुम जानते हो, तुम्हारी सदाशयता से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुममें अर्जुन बुद्धि-वृत्ति तथा क्षात्रवीर्य का उत्तम आधार है। तप के द्वारा देवों के शिरोमणि महादेवजी को प्रसन्न करके अर्जुन पाशुपत अस्त्र प्राप्त करे, तो तुम्हारी शक्ति का फिर संसार सामना नहीं कर सकता। इन्द्रादि देवताओं को भी प्रसन्न कर उनके अमोघ अस्त्र प्राप्त करना चाहिए। मैं सलाह दूँगा, कैलास-पर्वत पर जाकर अर्जुन भगवान् पशुपति की तपस्या करे। अपर देवों से इसके बाद आप मुलाकात हो जायगी।" इस प्रकार उपदेश देकर व्यासजी ने प्रस्थान किया।

महाराज युधिष्ठिर ने अपर भाइयों तथा द्रौपदी के सामने महावीर अर्जुन को स्नेह-पूर्वक बुलाकर कहा—"भाई ! हम लोगों में बाण-विद्या-विशारद तुम्हीं हो। महर्षि वेदव्यासजी की आज्ञा तुमने भी सुनी है। दुर्योधन से युद्ध होने के पहले हमें यथेष्ट शक्ति-संग्रह कर लेना चाहिए। अभी हम इतने योग्य नहीं हो सके कि भीष्म-द्रोण-जैसे महावीरों का युद्ध में सामना करें। हमें तैयारी के लिये देवताओं से भी शस्त्र-संग्रह कर लेना चाहिए। भगवान् पशुपति से पाशुपत-नामक महास्त्र प्राप्त करना अत्यावश्यक है। इंद्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, यम आदि देवताओं की भी शक्तियों का संग्रह आवश्यक है। तुम उत्तराखंड जाकर भगवान् शिव को तपस्या से तुष्ट करके पाशुपत-नामक महास्त्र प्राप्त करो। शक्ति को प्राप्त करके ही हम शत्रुओं में आतंक पैदा कर सकेंगे।"

तपस्या, शक्ति-संचय और भावी युद्ध की बात सुनकर अर्जुन रोमांचित हो उठे। उनकी नसों में रक्त की तीव्र धारा बहने लगी। बाहें वीर-रस के स्फुरण से फड़कने लगीं। हृदय पुलकित हो बारंबार उच्छ्वसित होने लगा। शौर्य और प्रतिभा से मुख-मंडल प्रदीप्त हो गया। उन्होंने उसी क्षण अपना तरकस बाँधा, और हाथ में धनुष लेकर यात्रा की तैयारी कर दी। श्रद्धा से धर्मराज और महावीर भीम के चरण छुए। फिर सविनय सिर झुकाकर गद्गद कंठ से कहा—"दादा, धर्मराज, कृष्णा, नकुल और सहदेव की रक्षा का भार आप ही पर रहा। देखिएगा, इन्हें किसी प्रकार की विपत्ति न हो।" अर्जुन की पीठ सहलाते हुए स्नेह-स्वर से भीमसेन बोले—"वीर ! जाओ। तुम्हारा मार्ग सुगम और साधना सफल हो। यहाँ से निश्चिंत रहना।" नकुल और सहदेव भूमिष्ठ हो अर्जुन को प्रणाम करने लगे। उन्हें उठाकर स्नेह देकर अर्जुन विदा हुए।

पति को दीर्घकाल के लिये जाते हुए देखकर कृष्णा वहाँ से चलकर एक कुंज में प्रतीक्षा कर रही थी। अर्जुन ने जाते हुए देखा था, मिलने के लिये गए। कृष्णा के दोनों कपोलों पर अनर्गल आँसुओं की धारा बह रही थी। शीघ्र लौटने का आश्वासन देकर द्रौपदी की दुःख-भरी दृष्टि से अर्जुन ने विदा ग्रहण की। फिर वीर तपस्वी की तरह त्याग के प्रभाव से

परिवार-प्रेम को भूलकर एकचित्त से भगवान् भूतनाथ का ध्यान करते हुए उत्तराखंड की ओर चल दिए।

धैर्य-पूर्वक चलते-चलते कुछ दिनों में अर्जुन गंधमादन-पर्वत आदि दुर्लंघ्य शैलों का अतिक्रमण करते हुए कैलास के पास आ उपस्थित हुए। उन्होंने सामने दृष्टि डाली, तो रास्ते पर एक लंबी जटाओंवाला वृद्ध तपस्वी देख पड़ा। निकट जाकर अर्जुन ने महात्मा जानकर साधु को प्रणाम किया। रुक्ष भाव से साधु ने अर्जुन से कहा—"यह तपोभूमि है। यहाँ कोई अस्त्र लेकर विचरण नहीं करता। तुम कौन हो ? अस्त्र फेंक दो।"

प्रणाम कर अर्जुन बोले—"महात्मन् ! मैं क्षत्रिय हूँ। अभी मैंने अपने इस धर्म को छोड़ा नहीं, फिर अपने अस्त्र कैसे छोड़ दूँ ?" अपना उद्देश्य छिपाकर भी अर्जुन ने उचित उत्तर दिया। तपस्वी इस वाक्चतुरता से प्रसन्न होकर स्नेह-दृष्टि से अर्जुन को देखते हुए बोले—"वत्स ! मैं देवराज इंद्र हूँ। तुम्हारा मनोहर उत्तर सुनकर मैं प्रसन्न हुआ। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, तुम मुझसे तदनुकूल वर माँग लो।"

अर्जुन विनम्र होकर बोले—"हे अमरेंद्र ! मुझे अपने दिव्य अस्त्र प्रदान कीजिए। मैं आपका शिष्य होकर केवल शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ।"

इंद्र मुस्किराकर बोले—"वत्स अर्जुन ! तुम देवों के देव जिन महादेव की आराधना के लिये आए हो, उन्हें प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त करो; पश्चात् संपूर्ण देवता तुम्हें अपने दिव्यास्त्र प्रदान करेंगे। पर वत्स ! यह तो बताओ, इन अस्त्रों को लेकर तुम करोगे क्या ? मनुष्यों पर तो इन अस्त्रों का प्रयोग वर्जित है।"

दृष्टि झुकाए हुए पांडु-नंदन महावीर अर्जुन ने उत्तर दिया—"हे देवेंद्र ! मेरे भाई राज्य से च्युत, क्षीण-बल होकर वनों में दुःख के दिन बिता रहे हैं। हम लोग राजवंश होकर भी इस समय सर्वथा भिक्षुक की दशा को प्राप्त हैं। शक्ति का संग्रह इसीलिये मेरा लक्ष्य हो रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं उसका दुरुपयोग भी करूँगा।"

प्रसन्न होकर इंद्र ने अर्जुन की पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया—"वत्स ! तुम संसार-प्रसिद्ध महावीर होगे। तुम्हारे अपार रण-कौशल की सहायता देवताओं को भी लेनी पड़ेगी। तुम भगवान् पशुपति की साधना में सिद्धि प्राप्त करो। अभी भविष्यांश न कहूँगा।"

देखते-देखते देवराज इंद्र जैसे कुहरे के पिंड में बदलते हुए उड़कर शून्य में विलीन हो गए। महावीर अर्जुन कुछ दूर चलकर कैलास-पर्वत के पद-देश पर एक सुहावनी भूमि निश्चित कर तपस्या में संलग्न हुए।

उत्तरोत्तर अर्जुन की तपस्या उग्र से उग्रतर हो चली। पहले उन्होंने भोजन-पान आदि को संयम-पूर्वक वश किया, तत्पश्चात् पूर्ण रूप से आहार का परित्याग कर दिया। पुन ऊर्ध्वबाहु होकर तप करने लगे। कैलास के तपस्वियों के एक दल ने महावीर कुंती-पुत्र की उग्र साधना से घबराकर भगवान् भूतनाथ से जाकर यह प्रार्थना की—"भगवन्, पांडु-पुत्र अर्जुन किसी रजोगुण की प्रेरणा से अत्युग्र साधना में लीन हो रहे हैं, उनका तेज सत्त्व-गुणवाले साधुओं को असह्य हो रहा है, आप दया कर उनकी मनोवांछा पूरी कीजिए।" भक्तों की प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव मुस्किराए, और उन्हें सांत्वना देते हुए बोले कि बहुत जल्द वह अर्जुन की तपोऽभिलाष पूर्ण करेंगे। साधुगण शंकर को भूमिष्ठ प्रणाम कर अपने-अपने आश्रम लौट आए।

एक दिन पार्वतीजी को साथ लेकर महादेवजी अर्जुन की तपस्थली की ओर चले। अर्जुन को तपस्या करते अब तक पाँच महीने हो चुके थे। वह अपने इष्ट की पूजा के लिये पुष्प आदि का चयन कर अपने स्थान को आए ही थे कि देखा, एक सुअर घुरघुराता हुआ वन के एक कोने से आ निकला। सुअर को देखकर उसे मारने के अभिप्राय से वीर अर्जुन ने धनुष में शर-योजना की। परंतु देखा, एक व्याध उसी सुअर को अपना लक्ष्य बनाए हुए वन से बाहर निकला। अर्जुन ने व्याध की परवा न की, और सुअर पर अपना तीर छोड़ दिया। व्याध और अर्जुन दोनों के तीर सुअर को लगे। विकट चीत्कार करता हुआ सुअर क्षण-मात्र में मृत्यु को प्राप्त हुआ। सुअर को मरा देखकर अर्जुन व्याध से अप्रसन्न हुए, बोले—"जब पहले हम उस पर शर-संधान कर चुके, तब तुमने तीर क्यों छोड़ा?" व्याध ठहाका मारकर हँसा। बोला—"ऐसी बात तो कोई मूर्ख ही कहेगा। सुअर को तो बहुत पहले से हम अपना निशाना बनाए थे।" नीच जाति के व्याध को उचित शिक्षा देने के लिये अर्जुन ने पुनः धनुष में शर-संधान किया। व्याध खड़ा हँसता रहा। इसे नीच जाति की धृष्टता से हुआ अपना अपमान समझकर अर्जुन ने क्रोध से धनुष की ओर टंकार खींचा।

तीर पूरी ताक़त से छूटा ! पर व्याध को उसकी चोट न लगी। वह तीर जैसे हवा को पाकर दूसरी ओर मिट्टी में धँसकर रह गया। मन-ही-मन लजाकर अर्जुन व्याध पर बाणों की वर्षा करने लगे। पर व्याध को एक भी बाण न लगा। वह हँसता हुआ उनके बिलकुल नजदीक आ गया। तब केवल धनुष की नोक से अर्जुन उसे खोदने लगे। जब होश में आए, और अपने क्रोधोन्माद के कारण हुए इस बालपन को समझा, तब धनुष फेंककर तलवार खींच ली, और उससे व्याध पर प्रहार किया, पर व्याध की देह में लगकर तलवार टुकड़े-टुकड़े हो गई। मूठ हाथ से दूर फेंकर युद्ध अर्जुन व्याध से मल्लयुद्ध करने लगे, पर तपस्या से क्षीण हुए शरीर को इतना परिश्रम सह्य न हुआ, अर्जुन थककर वहीं बेहोश हो गए।

व्याध खड़ा रहा। होश में आकर अर्जुन ने सोचा—"बड़ी देर हो गई, मैंने अपने इष्ट की पूजा नहीं की। पहले पूजा कर लूँ, तब व्याध से युद्ध करूँ।" अर्जुन की जबान में अब सभ्यता की झलक आई। उन्होंने व्याध से कहा—"भाई, एक प्रार्थना मैं तुमसे करता हूँ। तुम आज्ञा दो, तो मैं अपने इष्ट श्रीमहादेवजी की पूजा कर लूँ। इसके बाद मैं तुमसे युद्ध करूँगा।" हँसकर व्याध ने कहा—"अच्छी बात है, अब पूजा करके अपनी शक्ति बढ़ा लो।" इस अपमान को चुपचाप पीकर अर्जुन पूजा करने लगे। पर मन से उन्हें बराबर व्याध लिपटा हुआ देख पड़ा। वह सोचने लगे—"व्याध के रूप में साक्षात् देवाधिदेव तो मेरी परीक्षा लेने के लिये नहीं आए? मुझे इस प्रकार आज तक किसी महावीर के द्वारा भी लाञ्छित नहीं होना पड़ा।" फिर होश में आ अपना मंत्र जपने लगे। अपने ही हाथों निर्मित मिट्टी की शिव-मूर्ति को माला पहनाकर भक्ति-भाव से भूमिष्ठ हो प्रणाम कर जब अर्जुन उठे, तब यह देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि शिवमूर्ति पर चढ़ाई हुई उनकी वही माला व्याध के गले में पड़ी थी। अब उन्हें यह समझते हुए भी भ्रम न हुआ कि यह व्याध उनकी तपस्या से प्रसन्न साक्षात् शिव उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करने के लिये आए हुए हैं। अर्जुन ने भक्ति-भाव से हाथ जोड़कर भूमिष्ठ हो व्याध को प्रणाम किया। फिर आँखें खोलकर देखा, तो साक्षात् महादेव पार्वतीजी के साथ उनके सामने खड़े हुए दीख पड़े। भगवान् सर्वभूतों के पति आशुतोष शंकर ने गंभीर जलद-स्वर में कहा—"वीर अर्जुन ! तुम यथार्थ ही क्षत्रिय

हो। तपस्या से क्षीण होते हुए भी तुम मन से किंचिन्मात्र दुर्बल नहीं हुए। तुम्हारा क्षत्रियत्व और एकनिष्ठ तपस्या देखकर मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। तुम मुझसे जो वरदान चाहो, माँग लो।"

इष्टदेव को प्रसन्न देखकर अर्जुन का हृदय-कमल खिल गया। भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर उन्होंने उमानाथ शंकर से कहा—"भगवन्! हम लोग राज्य से च्युत होकर हीन भिक्षुकों की तरह वनों में मारे-मारे फिरते हैं। अब हममें कोई शक्ति नहीं रह गई। आप हम पर कृपालु होकर अपना पाशुपत अस्त्र प्रदान करें, आपके पवित्र चरणों में मेरी यही प्रार्थना है।"

प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने अर्जुन को अपना संसार-प्रसिद्ध पाशुपत-अस्त्र दान किया। उसके प्रयोग और संवरण के मंत्र भी बतला दिए। फिर सावधान कर दिया कि मनुष्यों पर इस अस्त्र का उपयोग वर्जित है। अर्जुन ने अस्त्र लेकर प्रणाम किया। फिर देखा, तो वहाँ से भगवान् शिव अंतर्धान हो चुके थे।

★ अर्जुन का स्वर्ग-गमन

वर प्राप्त कर अर्जुन प्रफुल्ल चित्त से अपने पूजा-स्थान से चलकर रास्ते पर आए, तो देवराज इंद्र के सारथि मातलि को रथ लेकर खड़े प्रतीक्षा करते देखा। अर्जुन को देखते ही बड़े आदर-भाव से संबोधन करते हुए मातलि ने कहा—"हे पांडुनंदन! आपके तप की सार्थकता से देव-लोक में बड़ी प्रसन्नता है। आपको स्वर्ग ले जाने के लिये देवराज इंद्र ने मुझे रथ-समेत यहाँ भेजा है। मैं देवराज का सारथि मातलि हूँ। स्वर्ग में समस्त देवता आपके पदार्पण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वहाँ चलकर अपना अभीष्ट पूरा कीजिए, और बदले में अपने प्राप्त महास्त्र के प्रयोग से देव-शत्रु असुरों का विनाश कीजिए।"

मातलि का आमंत्रण सुनकर अर्जुन देवलोक देखने की पुलकित आशा से उस सजे हुए उज्ज्वल रथ पर बैठ गए। मातलि ने वायु के समान वेग-शाली घोड़ों को स्वर्ग की ओर चालित किया। रास्ते में अर्जुन को अनेका-नेक ऐसे लोक देखने को मिले, जिनके अस्तित्व की उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। इस पृथ्वी के क्रिया-कलाप से वहाँ आश्चर्य में डालनेवाली

अनेक भिन्नताएँ मिलीं। वहाँ की रचना अर्जुन की समझ में न आई। वह किन-किन क्रमों से चल रही है, मातलि अर्जुन को संक्षेप में समझाते गए। क्रमशः इंद्रलोक निकट हो आया। मातलि ने बतलाया, अब रथ शीघ्र स्वर्ग-राज्य में प्रवेश करनेवाला है।

इंद्र, यम, वरुण, जयंत, अग्नि आदि देवता नियत स्थान पर अर्जुन की प्रतीक्षा कर रहे थे। निश्चित समय पर रथ उपस्थित हुआ। देवताओं ने बड़े स्नेह से महावीर अर्जुन का स्वागत किया। रथ से उतरकर पहले वीर पांडु-पुत्र ने देवराज इंद्र को, पश्चात् अन्यान्य देवताओं को प्रणाम किया। इंद्र आदि देवताओं ने भी स्नेह से उन्हें हृदय से लगाया। फिर बहुत ही सुंदर एक सुसज्जित स्थान पर उन्हें ले जाकर ठहराया, और भाँति-भाँति के भोज्य पदार्थों, माला-चंदन और पारिजात आदि सुगंधित पुष्पों तथा दिव्य वस्त्राभूषण और दास-दासियों से उनका आतिथ्य-सत्कार किया।

धीरे-धीरे स्वर्ग में महावीर अर्जुन की दिव्य कीर्ति फैलने लगी। देवताओं ने उन्हें अपने दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दी। देवों के विरोधी असुरों का, अपनी अद्भुत दक्षता तथा अस्त्र-शिक्षा से, उन्होंने विनाश कर दिया। इससे स्वर्ग में उनकी अत्यंत ख्याति हुई। उन्हें वहाँ रहते पाँच साल पूरे होने को हुए।

एक रात को अर्जुन अपने शयन-गृह में लेटे हुए थे। झरोखों से पारिजात की सुगंध भर रही थी। स्वर्ग के ऐश्वर्य, सौंदर्य और विभूतियों की कल्पना में अर्जुन का मन मर्त्य की लोलुप ईर्ष्या को मिलाकर देख रहा था कि स्वर्ग और मर्त्य के भेदों का कारण क्या है। साथ ही अपने राज्य से च्युत भाइयों और कृष्णा की याद आ रही थी—"अब तक दुर्योधन की ईर्ष्या की आग से वे दग्ध तो न हो गए होंगे?" भीम के अपार बल का भरोसा उन्हें शांत कर रहा था। कृष्ण, सुभद्रा आदि-आदि प्रियजनों की स्मृति के चक्र में इसी प्रकार मन प्रवर्तित हो रहा था। शस्त्र और गीत-वाद्य की शिक्षा पूरी होने ही को थी, पर अधीरता कभी-कभी उसे अधूरी ही छोड़कर युधिष्ठिर और कृष्ण-कृष्णा आदि से मिलने के लिये निस्संग बढ़ जाती थी। प्रतिज्ञा, संकल्प और सिद्धि आदि के शास्त्रीय विचार उन्हें आश्वासन देकर रोक लेते थे।

इस तरह के विचारों में अर्जुन का एकाकी मन लगा हुआ था, तभी शय्या पर एक अप्सरा के बैठने के स्पर्श से प्रदीप्त कामोत्तेजना से सजग हो

वह उठकर बैठ गए। देखा, स्वर्ग की निरुपमा सुंदरी अप्सरा उर्वशी है, जिसे इंद्र की सभा में लघु-चपल-पद मनोहर अपूर्व नृत्य करते हुए उन्होंने देखा था। उसकी भंगिम वासनासिक्त आयत नेत्र, उसका चंद्र-निंदित अतंद्र कांति से खिला शुभ्र मुख, इंदीवर-गंध, मुक्त प्रलंब केश, चिर-यौवन-भारोत्फुल्ल शोभा देखकर अर्जुन विस्मित-से देखते ही रहे। दैत्य-विजयी संसार के श्रेष्ठ नर-रत्न को रूप द्वारा पराभूत समझकर अप्सरा मुस्किराई। अर्जुन होश में आ उठकर खड़े हो गए। विनय-पूर्वक हाथ जोड़कर बोले—'माता! ऐसे समय आने का कष्ट क्यों किया?"

अर्जुन के संबोधन से उर्वशी दंग हो गई। बड़ी लज्जा लगी। पर वारांगना अपना संकोच छोड़कर बोली—"पार्थ! तुम ऐसे संबोधन से मुझे लज्जित कर रहे हो। अप्सरा कभी माता और वधू नहीं बनती। वह उसी की है, जिसे वह चाहे, उसे जो चाहे। मैं तुम्हें चाहती हूँ। तुम्हारी कामना करके ही मैं यहाँ आई हूँ।"

अर्जुन धीमे स्वर से बोले—"माता! आपकी यह कामना सफल नहीं हो सकती। आप मेरे वंश की माता हैं। पुनः आप देवराज की अप्सरा हैं। वह मेरे गुरु और पिता हैं। माता! मुझे कृपा की दृष्टि से देखिए, मेरा कल्याण कीजिए। मैं मनुष्य हूँ। रिपु के वश हो जाना तो मनुष्य की ही जन्म-सिद्ध दुर्बलता है। रूप-दर्शन के क्षणिक अपराध के लिये मुझे क्षमा कीजिए, और अब आगे कभी इस प्रकार का दोष न हो, ऐसा वर दीजिए। मैं विद्यार्थी हूँ। यहाँ अस्त्र तथा नृत्य-गीत-शिक्षा के लिये आया हुआ हूँ। विद्यार्थी का धर्म भोग नहीं। पुनः संगीत तथा नृत्य-शास्त्र में मेरे आचार्य गंधर्वों की कोटि में आप भी हैं, इस प्रकार आप भी मेरी आचार्या हैं। मैं इतने अपराधों का भार किस प्रकार उठा सकूँगा देवि?"

उर्वशी चकित हो अर्जुन को देखती रही। वासना से जर्जर हृदय से दीर्घ निःश्वास छोड़ बोली—"अर्जुन! अप्सरा से भोग में दोष नहीं। तुम किसी प्रकार की चिंता न करो। एक तो मैं जाति से काम की उपासना के लिये पुरुष-विचार से, उच्च-नीच, श्रेष्ठ-अपकृष्ट के द्विधा-संकोच, ग्रहण-त्याग से परे हूँ, मुक्त हूँ, दूसरे, स्त्री होकर, तुम्हारे सहयोग की कामिनी हूँ; तुम अपनी ओर से संकोच करके, विजयी वीर होकर, कापुरुष, निर्वीर्य न बनो। मेरी वासना तृप्त करो।"

अर्जुन लज्जा और ग्लानि से कांपने लगे। बोले—"मैं आपके सामने नहीं हो सकता। आप देवराज इंद्र की प्रेमिका हैं, मेरी माता हैं। मुझे आप क्षमा करें।"

उर्वशी सँभली। बोली—"लेकिन तुम्हें दूसरे दोष से छुटकारा न मिलेगा।"

अर्जुन ने कहा—"और जो भी दोष होगा, मैं ग्रहण करने के लिये नत-मस्तक हूँगा।"

"तो अर्जुन," उर्वशी बोली—"तुम एक वर्ष तक नपुंसक रहोगे। यह मैं कामिनी के रूप से कह रही हूँ, लेकिन वत्स, तुमने मुझे माता कहा है, मैं तुम्हारी इंद्र-संबंध से मा हूँ। मा होकर तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, यह शाप तुम्हारे लिये वरदान होगा। जब एक साल का अज्ञात-वास पूरा करोगे, उस समय नपुंसक के रूप में अपने को छिपाकर रख सकोगे। तुम्हें कोई पकड़ न पाएगा।"

कहकर उर्वशी स्नेह की पवित्र दृष्टि से अर्जुन को निहारने लगी। अर्जुन ने आदर से हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

★ पांडवों का कार्य-क्रम

कई वर्ष हो गए, पर अर्जुन की खबर न मिली। इससे पांडव उदास रहते थे। अर्जुन की बातें सोचते हुए एकांत में द्रौपदी की आँखें सजल हो आती थीं, पर कोई चारा न था। आँचल से आँसू पोंछकर बड़े धैर्य से वह अर्जुन की बाट जोहती रहीं। सब भाइयों तथा कृष्णा को अर्जुन के वियोग से दुखी जानकर भीम उनकी साधना तथा तत्परता की बीती कथाएँ सुना-कर धैर्य देते थे। कहते थे—"अर्जुन में बालपन से मैंने जैसी लगन देखी है, वह अवश्य अपनी शिक्षा के उद्योग में होगा। वह देवताओं की शरण में गया है, उसका अमंगल तो कभी हो ही नहीं सकता।" भीम के विश्वास-पूर्ण मेघ-गंभीर शब्दों से भाइयों के साथ द्रौपदी को बल प्राप्त होता, वे स्वस्थ हो जाते थे। इस प्रकार दुःख में भी जप, तप, वेद-पाठ तथा ऋषि-ब्राह्मणों की सेवा में उनके दिन पार होते रहे।

इसी समय एक बार पांडवों के यहाँ महर्षि बृहदश्व ने आतिथ्य स्वीकार

किया। धर्मराज ने उनका हृदय से स्वागत तथा आदर-सत्कार किया। महर्षि के भोजन-पान के पश्चात् युधिष्ठिर अपने दुःख की कथा सुनाने लगे। जुए मे युधिष्ठिर को राज्य हारा हुआ सुनकर बृहदश्व ने कहा—"राजन्, यदि अब आगे कभी जुआ खेलने की नौबत आए, तो आप मुझे बुलाइएगा। इसके हुनर मेरे अच्छे जाने हुए हैं। आप सीधे, सज्जन मनुष्य हैं, इसीलिये हार गए।" महर्षि जुआ खेलने में कुशल हैं, यह जानकर युधिष्ठिर ने अनुरोध किया कि वह कृपाकर उन्हें वे सब हुनर सिखला दें। महर्षि बृहदश्व को उनकी प्रार्थना मजूर हुई, और धर्मराज को जुए के दांव-पेच बतलाने के लिये वह वही कुछ दिनों तक टिके रहे।

कुछ दिनों बाद महर्षि नारद पांडवों से आकर मिले। पाडवों ने उनका बडा सम्मान किया। नारद ने कहा—"महर्षि लोमश इद्रलोक से अर्जुन के कुशल-समाचार लेकर शीघ्र आपसे आकर मिलेंगे। आप चिंता न करें। स्वर्ग में जब तक अर्जुन अस्त्र-शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, तब तक आप महर्षि लोमश के साथ देशाटन तथा तीर्थ-दर्शन कर डालिए।" नारद ने महाराज युधिष्ठिर के आग्रह से अनेक प्रकार की धार्मिक कथाएँ सप्रेम सुनाईं।

नारद के कथनानुसार कुछ दिनों बाद लोमश ऋषि इद्रलोक से अर्जुन का शुभ सवाद लेकर पांडवों से आकर मिले। उन्हें देखकर पांडवों के हृदय की सत्ता हरी हो गई। बडी श्रद्धा तथा भक्ति से युधिष्ठिर-भीम आदि ने उनका स्वागत किया। द्रौपदी ने कुछ जल से और कुछ आँसुओं से उनके पैर धोकर आँचल से पोंछे, और बैठने को पवित्र मृग-चर्म बिछा दिया। फिर सचित किया हुआ भोजन, फल, मधु आदि उनकी सेवा में लाकर रक्खा। तृप्ति-पूर्वक भोजन कर ऋषि ने प्रसन्न पांडवों को आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर ऋषि से अर्जुन का सवाद पूछा। सब भाई और कृष्णा वहीं उन्हें घेरकर बैठे हुए थे। प्रसन्न होकर लोमश बोले—"महाराज, अर्जुन ने महादेव को प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त कर स्वर्ग में बड़ी कीर्ति अर्जित की है। अब वह वहाँ देवों की युद्ध-विद्या सीख रहे हैं। गंधर्व और अप्सराएँ भी प्रसन्न होकर उन्हें नृत्य-गीत की शिक्षा दे रही हैं। उनके दिन बड़े सुख से बीत रहे हैं। उन्हें केवल यही कष्ट है कि वह अपनी शिक्षा पूरी कर अभी तक आप लोगों से आकर नहीं मिल सके। देवराज इद्र ने आपको धैर्य रखने के लिये सदेश भेजा है, और कहा है कि कर्ण के कवच की चिंता

न करें, उसके लिये देवराज स्वयं प्रयत्न करेंगे। अर्जुन ने आपको और भीमसेन को प्रणाम, नकुल और सहदेव को स्नेह और द्रौपदी को प्रेम सूचित किया है।"

पांडवों के मुख पर प्रसन्नता छा गई। युधिष्ठिर ने अनुरोध किया—"भगवन्! जब तक अर्जुन शिक्षा पूरी करके आते हैं, तब तक हमें आप तीर्थों के दर्शन करा दें। महर्षि नारद ने मुझे आज्ञा की है कि महर्षि के सभी स्थान देखे हुए हैं।"

लोमश शांत स्वर से बोले—"युधिष्ठिर, तीर्थ-दर्शन की लालसा बड़े भाग्यवान् मनुष्य में पैदा होती है। तीर्थों में बड़े-बड़े तपस्वियों के भी दर्शन होते हैं, और यों तो तीर्थ प्राकृतिक सौंदर्य के आगार हैं ही। मैं दो बार समस्त भारतवर्ष के तीर्थों की यात्रा कर चुका हूँ। अच्छी बात है, इस पवित्र सकल्प में मैं अवश्य सहायक हूँगा।"

महाराज युधिष्ठिर ने वृद्ध ब्राह्मणों को बुलाकर विनय-पूर्वक प्रणाम करते हुए कहा—"आप लोगों को मेरे साथ तीर्थ-भ्रमण में विशेष कष्ट होगा, अतः आप अब महाराज धृतराष्ट्र के यहाँ लौट जाइए; मुझे विश्वास है, वह आप लोगों के प्रति विरोधाचरण न करेंगे, और यदि वहाँ आप लोगों को स्थान न मिले, तो आप लोग पांचाल चले जायें, वहाँ पांचालराज, संबंध का विचार कर, आप लोगों को अवश्य ही आदर-पूर्वक बसा लेंगे।"

निश्चित पुष्य नक्षत्र में जप, यज्ञ और स्वस्ति-पाठ करके लोमश ऋषि के साथ पांडव तीर्थ-भ्रमण के लिये नैमिषारण्य की ओर चले। साथ पुरोहित धौम्य तथा रहे-सहे ब्राह्मण भी थे। मार्ग में तरह-तरह की कथाएँ अपने-अपने गिरोह में होती जाती थीं। यथासमय सब लोग गोमती-नदी के तट पर स्थित सुप्रसिद्ध नैमिषारण्य में आकर उपस्थित हुए। यहाँ से अधिक ऋषि कभी भारत के किसी तपोवन में न थे। सब लोग तपोवन की शांत शोभा देखकर मुग्ध हो गए।

यहाँ प्रयाग, वेदतीर्थ और गया आदि तीर्थों में ऋषियों तथा प्राकृतिक रम्यता के दर्शन करते, अनेकानेक कथाएँ सुनते हुए सब लोग गंगासागर नाम के प्रसिद्ध तीर्थ में उपनीत हुए। अपार जल-राशि की वीचिसंकुल-लीला ब्रह्म और संसार का दिव्य ज्ञान देने लगी। महाराज युधिष्ठिर को यह तीर्थ बहुत ही सुहावना मालूम दिया। यहाँ से वह दक्षिण की

ओर चले। वैतरणी-नदी तथा कलिंग-देश को पार कर दाहने हाथ को चलते हुए सुदूर प्रभास-तीर्थ में आए।

यहां यादवों ने पांडवों का बड़ा स्वागत-सम्मान किया। सुभद्रा बड़े स्नेह से द्रौपदी से मिली। उनके तीर्थों के चले चरणों की धूलि ग्रहण कर अपने सौभाग्य की प्रशंसा करने लगीं। बलराम जुए के अन्याय का उल्लेख करते हुए पांडवों की दशा पर दुखी हुए। कृष्ण ने भाग्य पर सारा दोष मढ़ा। सात्यकि ने रोष में आकर कहा—"इस अन्याय का बदला यह होगा कि हमी यादव लोग अपनी सेना लेकर कौरवों पर चढ़ाई करें, और उन्हें मारकर पांडवों का राज्य उन्हें वापस दें।" धर्मपुत्र युधिष्ठिर बोले—"नहीं, हमें वनवास की प्रतिज्ञा तो पूरी करनी ही होगी। नहीं तो अधर्म होगा। इसके बाद यदि युद्ध की ही नौबत आई, तो कोई बात नहीं। कृष्ण को युधिष्ठिर की नीति से युक्त उक्ति पसंद आई। बलराम मुस्कराकर बोले—"युधिष्ठिर सत्य ही धर्मराज हैं।"

बड़ी मेहमानदारी के बाद यहां से भी पांडवों को चलने की तैयारी होने लगी। यहां से वे उत्तर को चले। सरस्वती-नदी पार करते हुए सिंधु-तीर्थ होकर कश्मीर पहुंचे। वहां से विपाशा-नदी उतरकर हिमालय के सुबाहु-राज्य में पहुंचे। इस पार्वत्य प्रांत के सभ्य राजा ने पांडवों का बड़ा सम्मान किया। यहां अतिथि-रूप में रहकर पांडवों ने मार्ग-श्रम दूर किया। यहां से लोमश मुनि मनोहर पर्वतों के दुर्गम मार्गों से पांडवों को गंधमादन-शिखर की ओर ले चले। पहाड़ी, बीहड़ रास्तों से चलते हुए द्रौपदी को बड़ा कष्ट हुआ। भीमसेन उन्हें सहारा देते हुए धीरे-धीरे ले चले। महर्षि लोमश के बतलाने पर सब लोगों ने गंधमादन और बदरिकाश्रम के बीच से बहती हुई भगवती भागीरथी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

फिर सब लोग एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे। बड़ी ऊंची चढ़ाई थी। इसी समय जोर से आंधी चली। एक-एक गिरि शिला के साथ मिलते हुए शिलाओं के ढेर गिरने लगे। बड़ी मुश्किल से बड़े-बड़े पेड़ों के तने पकड़े आड़ में बैठे हुए पांडवों ने जान बचाई। इसके बाद जोर से पानी बरसने लगा। जान आफत में थी। द्रौपदी के पैरों में खून के फौवारे छूटने लगे। ऐसी संकटजनक परिस्थिति देखकर भीम ने घटोत्कच को याद किया। पिता को संकट में पड़ा हुआ जानकर, उसी वक्त वह वीर आकर हाजिर

हुआ, और भीम का प्रणाम किया। भीम ने कहा—"तुम्हारी माता द्रौपदी अब चल नहीं सकती। मार्ग दुर्गम है। नकुल, सहदेव को भी कष्ट है, पर वे किसी तरह चले चलेंगे।" घटोत्कच ने सहानुभूति-सूचक स्वर में कहा—"पिताजी, मेरे और भी साथी हैं। मैं उन्हें बुलाता हूँ। आपमें से किसी को पैदल न चलना होगा।" यह कहकर उसने क्षण-मात्र में अपने अनेकानेक साथियों को बुला लिया। वे लोग पांडवों तथा महर्षि लोमश आदि को कंधे पर बिठाकर एक अत्यंत सुहावने स्थान पर ले आए।

★ भीमसेन की हनुमान्‌जी से भेंट, कमल लाना

बदरिकाश्रम के इस रम्य वन की शोभा पांडवों को बहुत पसद आई। कलकल-नाद करते पहाड़ों से झरने उतर-उतरकर जाह्नवी से मिल रहे

थे। पर्वतीय रग-बिरगी चिड़ियां, जैसी समतल भूमि पर उन्हें नहीं देख पड़ी, डालों पर मधुर स्वर से प्रकृति के मगल-गीत गा रही थीं। हिम पर पड़ती हुई सूर्य की रश्मि से अनेक प्रकार के आश्चर्यकर सुदर वर्ण

बदल रहे थे, जैसे स्वर्ग के जगमग चित्रित स्वर्ण-द्वार का ही रूप हो। वहाँ सभी के मुखों पर निष्काम भाव, शांति विराज रही थी।

एक दिन हजार दलोंवाला एक कमल किसी तरह हवा में उड़कर द्रौपदी के पास आकर गिरा। उसकी मंजुल शोभा देखकर, उसकी सुगंध से दूरतर क्षेत्र को भी मोद मिलता हुआ जानकर द्रौपदी ने भीमसेन से प्रणय का अनुरोध कर कहा—"देखो प्रिय, यह फूल तो मैं धर्मराज को भेंट करने के लिये लिए जा रही हूँ, पर यदि तुम मुझे प्यार करते हो, तो ऐसे ही फूल मेरे लिये और ले आओ—उस तरफ से उड़कर आया है, वहीं उधर ही खिलता होगा।" कहकर चपल चरणों से द्रौपदी धर्मराज को फूल उपहार देने चली गई। भीम कुछ देर तक प्रिया की चपलता को देखते रहे, फिर गदा उठाकर उसी तरफ को चल दिए। कुछ ऊँचे चढ़ने पर उन्हें उसी कमल की-सी सुगंध मिलने लगी।

पहाड़ चढ़ जाने के बाद भीमसेन को एक बड़ा केले का वन मिला। एक पगडंडी वन के बीच से गई थी। उसी पर चलने लगे। जहाँ रास्ता न मिलता, वहाँ केले के पेड़ उखाड़कर रास्ता कर लेते थे। इस उत्पात से वन के बंदर और हिरन आदि डरकर इधर-उधर भागने लगे। भीमसेन कुछ बढ़े, तो देखा, एक बड़ा-सा बंदर बीच रास्ते में पड़ा हुआ था। उसके पास जाकर भीम ने जोर से हाँक लगाई। उस गर्जना से वहाँ के पशु-पक्षी डरकर चारों ओर भागने और उड़ने लगे, पर बंदर अपनी जगह से न हिला। भीम ने डाँटकर कहा—"तू रास्ता क्यों नहीं छोड़ता ?"

बंदर बोला—"बुड्ढा हो गया हूँ। उठ नहीं पाता। मेरी पूँछ एक तरफ को कर दो, फिर चले जाओ।"

भीम ने सोचा—ठीक है। पूँछ पकड़कर इन्हें ऐसा फेरा जाय कि बिना पड़े किसी केले के पेड़ पर चढ़ जायें। सोचकर बाएँ हाथ में पूँछ पकड़कर उठाया। पर बंदर न हिला। तब गदा बाएँ हाथ में लेकर दाहने हाथ से उठाने लगे। फिर भी बंदर न उठा। यह देखकर भीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ लजाए भी। पर हिम्मत करके गदा जमीन पर रखकर, दोनों हाथों पूरे जोर से पूँछ पकड़कर उठाने लगे। बंदर फिर भी न हिला। भीमसेन बहुत लज्जित हुए। हाथ जोड़कर सामने आ खड़े हुए, और विनयपूर्वक परिचय पूछा। उत्तर मिला—"मैं रामचंद्रजी का दास हूँ, मुझे हनु-

मान् कहते हैं।" भीमसेन चरणों पर गिर पड़े। पैरों की धूलि मस्तक पर लगाई। महावीर बोले—"भीम, तुम एक रिश्ते से मेरे छोटे भाई हो। तुम्हारा जन्म भी पवन के अंश से हुआ है। मेरी इच्छा तुमसे परिचय प्राप्त करने की थी।"

पुनः प्रणाम कर भीम ने अपने भाइयों की विपत्ति की कथा महावीरजी को सुनाई, और महाभारत में पांडवों के पक्ष से लड़ने को आमंत्रित किया। महावीरजी ने कहा—"भीम, वहाँ हमारा प्रतिभट कौन होगा ? फिर, हम तो केवल राम के कार्य के लिये लड़ सकते हैं।" भीम ने कहा—तो आप आइए अवश्य, और मेरे भाई अर्जुन के नंदिघोष रथ की ध्वजा पर बैठकर भारत का युद्ध देखिए।" भीमसेन का यह आमन्त्रण महावीर ने मंजूर किया। भीम ने फिर कमल दिखाकर उसका पता पूछा। महावीर ने सामनेवाले गंधमादन-पर्वत पर बतला दिया, और कहा कि वहाँ एक सरोवर है, उसके अधिपति कुबेर हैं ; उसी सरोवर में ऐसे कमल खिले हुए हैं ; पर वहाँ रक्षक रहते हैं।

महावीर को भक्ति-पूर्वक भूमिष्ठ प्रणाम करके भीमसेन उस सरोवर की तरफ़ चल दिए। गंधमादन-पर्वत पर पहुँचकर भीम ने देखा, कि कई झरने एकत्र होकर एक जगह सरोवर का आकार प्राप्त कर बह रहे थे। वहीं सहस्रदल कमल खिले हुए थे। पर वह सरोवर यक्षों से सुरक्षित हो रहा था। भीमसेन सरोवर के किनारे गए, और उतरकर फूल तोड़ने लगे। जब लेकर चले, तब यक्षों ने उन्हें रोककर उनका नाम और उस तपोभूमि में गदा लेकर आने और फूल तोड़ने का कारण पूछा। भीम ने अपना नाम बतलाते हुए कहा कि क्षत्रियत्व की रक्षा के लिये वह अपना शस्त्र गदा लिए रहते हैं, और वहाँ वह युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और कृष्णा के साथ स्वर्ग से अर्जुन के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस समय वह सरोवर से कमल ले जाने के लिये आए थे। रक्षकों ने कहा—"यह हमारे स्वामी कुबेर का प्यारा सरोवर है। वह यहाँ जल-विहार किया करते हैं। आपको फूल तोड़ने का क्या अधिकार था ?" भीम ने कहा—"पूजा के लिये कहीं से भी फूल तोड़े जा सकते हैं। बक-बक मत करो।" रक्षक यक्ष ऐसा उत्तर सुनकर क्रुद्ध हो गए, और वहीं फूल रख देने को कहा। इससे भीम को गुस्सा आया, और वह रक्षकों को मारने लगे। कुछ पिटे हुए रक्षक कुबेर को संवाद देने तथा

और सहायक बुला लाने के विचार से भगे हुए गए, और सब हाल कुबेर को जाकर सुनाया। अर्जुन की प्रतीक्षा करते हुए पांडव आए हुए है, सुनकर कुबेर ने वहाँ रहकर फल-मूलादि का इच्छानुरूप भोग करने को पांडवो के पास आदर-प्रार्थना के तौर पर कहला भेजा।

भीम को बहुत देर तक लौटते हुए न देखकर धर्मराज ने कृष्णा से पूछा, और यह जानकर कि भीम कमल के फूल लेने गए है, भीम से किसी की तकरार हो जाने की शका कर अपने साथियो को लेकर घटोत्कच की सहायता से उधर ही को चले। जब धर्मराज अपने दल के साथ वहाँ पहुँचे, उस समय भीमसेन यक्षो को घायल कर गदा लिए हुए लडने को ललकार रहे थे। भीम को देखकर धर्मराज बड़े चिंतित हुए। पास जाकर देखा, तो भीम को कोई चोट न लगी थी। भीम को उन्होंने छाती से लगाकर कहा—"यह सिद्धो की जगह है, यहाँ तुम्हे तकरार न करनी थी।" कुछ देर बाद कुबेर का दूत सवाद लेकर आ पहुँचा।

इस प्रकार प्रियजनो के साथ पाडव गधमादन मे ही अर्जुन की प्रतीक्षा करने लगे। उधर सब प्रकार की शिक्षाओ मे पूर्ण हो अर्जुन ने इंद्र से चलने की आज्ञा माँगी। देवराज ने अनेक प्रकार के आभूषण आदि देकर अर्जुन को विदा किया। मातलि रथ पर उन्हे बैठाकर स्वर्ग से मर्त्य के लिये रवाना हुए। आकाश से उतरते हुए शुभ्र-ज्योति की तरह इंद्र का रथ अर्जुन को लेकर गंधमादन-पर्वत पर आया। चारो भाई पांडव तथा पांचाली पाँच वर्ष के बाद अर्जुन को पाकर प्रसन्नता के समुद्र में जैसे बह चले। अर्जुन ने गुरुजनों को प्रणाम कर, छोटे भाइयों को स्नेह दे स्वर्ग के पाए हुए उपहार तथा आभरण पांचाली को पहना दिए। फिर आराम तथा भोजन-पान के पश्चात् निश्चित चित्त से सबको अपनी समस्त साधन की कथाएँ सुनाने लगे।

★ दुर्योधन आदि को बंधन से मुक्त करना

गधमादन-पर्वत से पांडव द्वैतवन को चले। वहाँ से पुनः काम्यक वन की यात्रा की। यामुन नाम के पर्वत के पासवाले घोर वन मे फल-मूल की खोज मे गए भीम एक विशाल अजगर की सीधी गाँस मे घिरने लगे। वह सर्पराज पांडवों के कुल के शाप-भ्रष्ट राजा नहुष थे। अगस्त्य मुनि ने

अपराध के कारण इन्हें शाप दिया था। भीम बड़ी विषम परिस्थिति में पड़े। इसी समय इन्हें खोजते हुए धर्मराज वहाँ आ पहुँचे। साँप के कुछ धार्मिक प्रश्नों का उत्तर देकर भीम को उसके ग्रास से बचा लाए। पांडवों के काम्यक वन पहुँचने पर श्रीकृष्ण उनसे आकर मिले। अर्जुन से बहुत दिनों से मुलाकात न हुई थी। अर्जुन की तपस्या तथा दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति की कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। द्रौपदी को धैर्य देकर कि उनके पाँचों लड़के द्वारका में प्रसन्न हैं, सुभद्रा बड़े स्नेह से उनकी देख-रेख तथा पालन-पोषण करती है, और प्रद्युम्न उन्हें सब प्रकार की अस्त्र-शिक्षा दे रहे है, पाडवो से विदा होकर वह द्वारका गए। यहाँ से पांडव पुनः द्वैतवन को चले गए। धर्मराज की आज्ञा से लौटे हुए ब्राह्मणों के मुख से पाडवों की तपस्या तथा कठोर दुःख की कथा सुनकर महाराज धृतराष्ट्र रोने लगे। फिर अर्जुन की तपस्या तथा वर-प्राप्ति की बातें सुनकर बड़ी चिंता में पड़ गए, क्योंकि ऐसे वीर को विजय पाने की कोई शंका न थी, और उन्हीं के पुत्रों के भाग्य मंद थे।

पाडवों की बातों से जलकर एक दिन दुर्योधन कर्ण और शकुनि के साथ परामर्श करने लगा। निश्चय हुआ कि अपना अपार वैभव पाडवो को चलकर दिखाना चाहिए। साथ ही धन-रत्न, हाथी, घोड़े तथा रथो पर अपनी रानियों को भी लेकर चलें। हमारा ऐश्वर्य देखकर पांडवो को ईर्ष्या होगी, और उस आग से वे जल-जलकर अशक्त होते रहेंगे। लेकिन महाराज धृतराष्ट्र से यह कहा जाय कि द्वैतवन मे हमारी गौएँ रहती हैं, हम उन्हें देखने जा रहे हैं, मौका मिलने पर शिकार खेलने का भी विचार है; पांडवों से हम न मिलेंगे।

दुर्योधन ने एक दिन बड़े दुलार से द्वैतवन जाने की इच्छा प्रकट करते हुए पिता से आज्ञा माँगी। महाराज धृतराष्ट्र को दुर्योधन की पहले निश्चित की हुई बातें मालूम होने पर भी उन्होंने आज्ञा दे दी। फिर क्या था, बड़ी शान से सजावट होने लगी। हाथियों पर सुनहरे हौदे कस दिए गए। सोने और चाँदी के बड़े-बड़े, हीरे और मोतियों की झालर से जग-मगाते हुए, मखमल की ऊँची गद्दीवाले रथ तैयार हो गए। कर्ण और शकुनि के साथ दुर्योधन अपना रनिवास भी साथ लेकर सैन्यों के तुमुल-कोलाहल के मध्य अपने ऐश्वर्य का अद्भुत प्रकाश दरिद्र, राज्यच्युत पांडवों

को दिखाने के उद्देश्य से चला। यथासमय वह मद-मत्त दल द्वैतवन में आ पहुँचा। वन के जीव-जंतु भीषण कोलाहल से चौंककर चारो ओर भागने लगे। पांडवों को भी वहाँ के ऋषियों से महाराज दुर्योधन का रानियों के साथ गोधन देखने और शिकार करने के लिये द्वैतवन आना मालूम हुआ। किसी-किसी ने उनकी अपार साज-सज्जा की तारीफ़ की यह भी कहा कि भीतरी उद्देश्य पांडवों को ऐश्वर्य दिखाकर चकित कर देना है। धर्मराज युधिष्ठिर सुनकर चुप रह गए।

वन के विशाल भू-भाग में खीमे गड़ चुके थे। कर्ण और शकुनि के साथ दुर्योधन शिकार में मत्त था। रोज बाघ-शेर, वराहादि जंगली जीव मार-मारकर लाए जाते थे। एक दिन दुर्योधन की इच्छा रानियों को लेकर वहीं के सरोवर में स्नान करने की हुई। सरोवर के किनारे पांडव कुटी बनाकर रहते थे। दुर्योधन को इस प्रकार वहाँ जल-केलि करके पांडवों को ऐश्वर्य प्रदर्शन आसान जान पड़ा। सरोवर के दूसरे किनारे की जमीन साफ़ करने के लिये आदमी भेजे गए। पर उस समय गंधर्वों का राजा चित्रसेन अपने साथी गंधर्वों तथा अप्सराओं के साथ जल-केलि के विचार से वहाँ जाकर, उसी तट पर ठहरा हुआ था। दुर्योधन के आदमी वहाँ गए, तो गंधर्वों ने कहा कि हम पहले से आए हुए हैं, जब तक हम नहाकर चले न जायँगे, तब तक यहाँ कोई दूसरा नहाने के लिये न आ सकेगा।

सिपाही लौट गए। उनकी जबानी गंधर्वों की अहंकार-भरी बातें सुनकर दुर्योधन तमतमा उठा। कहा, सशस्त्र सेना साथ लेकर जाओ, और गंधर्वों को वहाँ से निकाल बाहर करो। दुबारा दुर्योधन की सेना सरोवर के किनारे गई। उस समय चित्रसेन अप्सराओं के साथ जल-विहार कर रहा था। कुछ सैनिकों ने जाकर कहा—"ऐ गंधर्वो! धृतराष्ट्र के पुत्र, कुरुवंश के सूर्य, महातेजा, महाराज दुर्योधन यहाँ शीघ्र स्नान करने आ रहे हैं, तुम लोग बहुत जल्द यह स्थान छोड़ दो।" सैनिकों की ऐसी गर्वोक्ति सुनकर गंधर्व हँसने लगे। किसी ने कहा—"अंधे के अंधा ही होता है।" किसी दूसरे ने कहा—"पीटकर भगा दो इन्हें। लात के लोग बात से नहीं राह पर आते।"

इस तरह दोनो ओर से घोर संग्राम छिड़ गया। गंधर्वों ने दुर्योधन के सैनिकों को भगा दिया। दुर्योधन के पास भागे हुए सैनिक गए, और सारा समाचार सुनाया। सुनकर कर्ण तथा शकुनि के साथ सारी सेना लेकर दुर्यो-

धन भी मैदान में आ गया, और घोर युद्ध छिड़ गया। कर्ण की करारी चोटों से गंधर्व बहुत व्याकुल हुए। अब तक चित्रसेन सरोवर में अप्सराओं के साथ स्नान ही कर रहा था। गंधर्वों की सेना को व्याकुल तथा अस्त-व्यस्त होकर भागती हुई देखकर, अपना विशाल धनुष लेकर युद्ध-स्थल पर आ पहुँचा। चित्रसेन अविराम जल-धारा की तरह कौरवों की सेना पर बाण बरसाने लगा। कौरव-सेना व्याकुल होकर भागने लगी। कर्ण को प्रबल पड़ता देखकर उसने सम्मोहनास्त्र का संधान किया। तीर के छूटने पर बचे हुए लोगों को मोह आ गया। होश में आते-आते कर्ण को चित्रसेन ने विरथ कर दिया। डरकर कर्ण दूसरे रथ पर चढ़कर भाग गया, पर दुर्योधन डटा रहा। क्रुद्ध गंधर्वराज ने पाश के प्रयोग से दुर्योधन को बाँध लिया। फिर कौरवों की महिलाओं को भी कैद कर लिया। पश्चात् सबको रथों पर बैठाकर स्वर्ग ले चला। दुर्योधन बहुत लज्जित हुआ। महिलाएँ त्रस्त होकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को सहायता के लिये पुकारने लगीं।

महाराज युधिष्ठिर ने अपनी कुटी में बैठे हुए व्योम-मार्ग से सहायता की पुकार सुनी। महिलाएँ यह भी कह रही थीं कि गंधर्व बाँधे लिए जा रहा है। धर्मराज अधीर हो गए। भीम ने कहा—"महाराज, दुर्योधन के पापों का प्रायश्चित्त ईश्वर ने गंधर्वों द्वारा दिला दिया। अब हमें चुपचाप यहीं बैठ रहना चाहिए।" महाराज युधिष्ठिर असंतुष्ट होकर बोले—"भाई, यह भाव ठीक नहीं। गंधर्व दूसरी जाति के हैं। फिर यहाँ हमारी महिलाएँ भी हैं। यह हमारी ही इज्जत जा रही है। हमारा जो आपस का विवाद है, उसे हमीं समझेंगे। जब बाहर का कोई हमें दबाएगा, तब हम एक सौ पाँच भाई उससे लड़ने के लिये हैं। भीम! तुम सेनापति होकर अर्जुन, नकुल और सहदेव को साथ लेकर इसी वक्त जाओ, और अपनी देवियों तथा भाई दुर्योधन को मुक्त करो।" महिलाओं का पक्ष लेते हुए देखकर युधिष्ठिर के प्रति श्रद्धा से द्रौपदी का मस्तक नत हो गया। उन्होंने धर्मराज की धर्म-मूर्ति को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। भीम भाइयों के साथ मैदान में आकर खड़े हुए, और ज़ोर से हाँक लगाकर गंधर्व को ललकारा। अर्जुन ने कहा—"दादा, तुम तब तक ठहरो। गंधर्व आकाश-मार्ग में है, मैं उसके रथ की गति रोक दूँ।" यह कहकर वीर अर्जुन ने दिव्यबाण-धार द्वारा गंधर्व के रथ की गति रोक दी। इधर भीम बार-बार युद्ध के लिये ललकार रहे थे।

चित्रसेन को पहले बड़ा गुस्सा लगा। रथ को आगे बढ़ता हुआ न देखकर पांडवों को भी वैसी ही शिक्षा देकर उसने आगे चलने का निश्चय किया। आकाश से पांडवों पर तीक्ष्ण तीरों की वर्षा होने लगी। पर महावीर अर्जुन से गंधर्व की अस्त्र-विद्या एक न चली। गंधर्व के संपूर्ण दिव्यास्त्रों को काटकर महाकर्षण-अस्त्र द्वारा अर्जुन ने बल-पूर्वक गंधर्व को आकाश-मार्ग से नीचे उतारा। अर्जुन की अद्भुत शिक्षा स्वर्ग में भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। चित्रसेन हृदय से घबरा गया। रथ नीचे उतरा। तब भीम रथ के पास गदा लिए पहुँचे, और चित्रसेन को निष्प्रिय देखकर महिलाओं के साथ दुर्योधन को उतार लिया। अर्जुन ने अपनी मंत्र-पूर्ण शर-शक्ति वापस ले ली, फिर हँसते हुए गंधर्वराज के पास गए, और मित्र को हृदय से लगाया। चित्रसेन ने कहा—"पांडव! तुम्हारी महत्ता को न समझ सकनेवाला दुर्योधन कितना पापी है। वह तुम्हें अपना ऐश्वर्य दिखलाने के विचार से आया था।" दोनों मित्र हँसकर मिले। फिर कौरव-परिवार को साथ लेकर भीमसेन महाराज युधिष्ठिर के पास चले। दुर्योधन ने धर्मराज को लज्जित होकर प्रणाम किया। धर्मराज ने स्नेह से भाई को आशीर्वाद दिया। द्रौपदी बड़े प्रेम से कौरव-राज-कुल-वधुओं से मिली। चलते समय दुर्योधन ने अर्जुन से कहा—"अर्जुन! तुम हमसे, जो चाहो, वर माँग लो।" अर्जुन ने उत्तर दिया—"दुर्योधन, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो समय आने पर मैं तुमसे वर माँगूँगा। इस प्रकार पांडवों से क्षीण-प्रभ होकर कुरुराज दुर्योधन अपनी राजधानी को आए।

★ द्रौपदी-हरण

एक दिन दुर्योधन की बहन दुःशला का पति, सिंध का राजा जयद्रथ अपनी सेना के साथ काम्यक वन से होकर गुजरा। पांडव उस समय द्वैत-वन से चलकर फिर काम्यक वन आ गए थे। उस समय आश्रम सूना था। पाँचों पांडव शिकार के लिये निकले थे। केवल द्रौपदी आश्रम में थी। जयद्रथ दूसरे विवाह के इरादे से निकला हुआ शाल्व देश को जा रहा था। द्रौपदी पल्लवों के भार से झुके हुए एक पेड़ की डाल पकड़े एकांत में खड़ी कुछ सोच रही थी। मुख पर पड़ती हुई सूर्य की किरणें उसकी अपार रूप-राशि

धन भी मैदान में आ गया, और घोर युद्ध छिड़ गया। कर्ण की करारी चोटों से गंधर्व बहुत व्याकुल हुए। अब तक चित्रसेन सरोवर में अप्सराओं के साथ स्नान ही कर रहा था। गंधर्वों की सेना को व्याकुल तथा अस्त-व्यस्त होकर भागती हुई देखकर, अपना विशाल धनुष लेकर युद्ध-स्थल पर आ पहुँचा। चित्रसेन अविराम जल-धारा की तरह कौरवों की सेना पर बाण बरसाने लगा। कौरव-सेना व्याकुल होकर भागने लगी। कर्ण को प्रबल पड़ता देख-कर उसने सम्मोहनास्त्र का संधान किया। तीर के छुटने पर बचे हुए लोगों को मोह आ गया। होश में आते-आते कर्ण को चित्रसेन ने विरथ कर दिया। डरकर कर्ण दूसरे रथ पर चढ़कर भाग गया, पर दुर्योधन डटा रहा। क्रुद्ध गधर्वराज ने पाश के प्रयोग से दुर्योधन को बाँध लिया। फिर कौरवों की महिलाओ को भी कैद कर लिया। पश्चात् सबको रथो पर बैठाकर स्वर्ग ले चला। दुर्योधन बहुत लज्जित हुआ। महिलाएँ त्रस्त होकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को सहायता के लिये पुकारने लगीं।

महाराज युधिष्ठिर ने अपनी कुटी में बैठे हुए व्योम-मार्ग से सहायता की पुकार सुनी। महिलाएँ यह भी कह रही थी कि गंधर्व बाँधे लिए जा रहा है। धर्मराज अधीर हो गए। भीम ने कहा—"महाराज, दुर्योधन के पापों का प्रायश्चित्त ईश्वर ने गंधर्वों द्वारा दिला दिया। अब हमें चुपचाप यही बैठ रहना चाहिए।" महाराज युधिष्ठिर असतुष्ट होकर बोले—"भाई, यह भाव ठीक नही। गधर्व दूसरी जाति के हैं। फिर यहाँ हमारी महिलाएँ भी हैं। यह हमारी ही इज्जत जा रही है। हमारा जो आपस का विवाद है, उसे हमीं समझेंगे। जब बाहर का कोई हमें दबाएगा, तब हम एक सौ पाँच भाई उससे लड़ने के लिये हैं। भीम! तुम सेनापति होकर अर्जुन, नकुल और सहदेव को साथ लेकर इसी वक्त जाओ, और अपनी देवियों तथा भाई दुर्योधन को मुक्त करो।" महिलाओं का पक्ष लेते हुए देखकर युधिष्ठिर के प्रति श्रद्धा से द्रौपदी का मस्तक नत हो गया। उन्होंने धर्मराज की धर्म-मूर्ति को हाथ जोडकर प्रणाम किया। भीम भाइयों के साथ मैदान में आकर खड़े हुए, और जोर से हाँक लगाकर गधर्व को ललकारा। अर्जुन ने कहा—"दादा, तुम तब तक ठहरो। गंधर्व आकाश-मार्ग में है, मैं उसके रथ की गति रोक दूँ।" यह कहकर वीर अर्जुन ने दिग्बंधन-शर द्वारा गंधर्व के रथ की गति रोक दी। इधर भीम बार-बार युद्ध के लिये ललकार रहे थे।

चित्रसेन को पहले बड़ा कुतूहल लगा। रथ को आगे बढ़ता हुआ न देखकर पांडवों को भी वैसी ही शिक्षा देकर उसने आगे चलने का निश्चय किया। आकाश से पांडवों पर तीक्ष्ण तीरों की वर्षा होने लगी। पर महावीर अर्जुन के गंधर्व की अस्त्र-विद्या एक न चली। गंधर्व के संपूर्ण दिव्यास्त्रों को काट-कर महाकर्षण-अस्त्र द्वारा अर्जुन ने बल-पूर्वक गंधर्व को आकाश-मार्ग से नीचे उतारा। अर्जुन की अद्भुत शिक्षा स्वर्ग में भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। चित्र-सेन हृदय से घबरा गया। रथ नीचे उतरा। तब भीम रथ के पास गदा लिए पहुँचे, और चित्रसेन को निश्चित देखकर महिलाओं के साथ दुर्योधन को उतार लिया। अर्जुन ने अपनी मधुर-पूर्ण स्नेह-आश्रित वाक्य से भी, फिर हँसते हुए गंधर्वराज के पास गए, और मित्र को हृदय से लगाया। चित्रसेन ने कहा—'पांडव! तुम्हारी महत्ता को न समझ सकनेवाला दुर्योधन कितना पापी है। वह तुम्हें अपना ऐश्वर्य दिखलाने के विचार से आया था।" दोनों मित्र हँसकर मिले। फिर कौरव-परिवार को साथ लेकर भीमसेन महाराज युधिष्ठिर के पास चले। दुर्योधन ने धर्मराज को लज्जित होकर प्रणाम किया। धर्मराज ने स्नेह से भाई को आशीर्वाद दिया। द्रौपदी बड़े प्रेम से कौरव-राज-कुल-वधुओं से मिली। चलते समय दुर्योधन ने अर्जुन से कहा—'अर्जुन! तुम हमसे, जो चाहो, वर माँग लो।" अर्जुन ने उत्तर दिया—'दुर्योधन, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो समय आने पर मैं तुमसे वर माँगूँगा। इस प्रकार पांडवों से सम्मानित होकर कुरुराज दुर्योधन अपनी राजधानी को आए।

★ द्रौपदी-हरण

एक दिन दुर्योधन की बहन दुःशला का पति, सिंधु का राजा जयद्रथ अपनी सेना के साथ काम्यक वन से होकर गुजरा। पांडव उस समय द्वैत-वन से चलकर फिर काम्यक वन आ गए थे। उस समय आश्रम सूना था। पाँचों पांडव शिकार के लिये निकले थे। केवल द्रौपदी आश्रम में थी। जयद्रथ दूसरे विवाह के इरादे से निकला हुआ शाल्व देश को जा रहा था। द्रौपदी पल्लवों के भार से झुके हुए एक पेड़ की डाल पकड़े एकांत में कहीं कुछ सोच रही थी। मुख पर पड़ती हुई सूर्य की किरणें उसकी अपार कान्ति

की ओर स्पष्ट तथा सुंदर रूप से प्रत्यक्ष करा रही थीं। वन में चारों ओर अधखुली, मधु-भरी, हवा से हिलती कलियों को घेरकर भौंरे गूंज रहे थे। समय बड़ा ही सुहावना हो रहा था। इसी समय आते हुए सिंध-नरेश जयद्रथ ने द्रौपदी की वह दिव्य मुख-कांति देख ली। कामी के हृदय को रूप की किरणों के तीर पार कर गए। वह व्याकुल हो गया। फिर कोटिकास्य नाम के एक दूत को द्रौपदी के पास समझाकर भेजा।

राजपुरुष के रूप में एक अनजाने को आता हुआ देख, द्रौपदी डाल छोड़कर, सँभलकर खड़ी हो गई। उस पुरुष ने द्रौपदी से कहा—"सुलोचने, मैं शिवराज का पुत्र कोटिकास्य हूँ। वह, जो अनिमिष आँखों से उस सरोवर के तट से तुम्हारी ओर देख रहे हैं, महावीर युवक सिंध देश के अधिपति जयद्रथ हैं। उनके साथ उनके अधीनस्थ कई और राजे हैं। तुम्हारा परिचय क्या है ?"

"भद्र !" द्रौपदी बोली—"ऐसे एकांत स्थान में आपसे वार्तालाप मेरे लिये अनुचित है। आपने अपना विशद परिचय दिया, इसलिये मैं भी आपको अपना परिचय दे दूँ। पश्चात् आप लोगों का यथोचित सत्कार मेरे पति आकर करेंगे। मैं पांचाल-राज द्रुपद की कन्या और पाँचों पांडवों की परिणीता पत्नी हूँ।"

. टिकने की बात सुनकर, कोटिकास्य प्रसन्न होकर जयद्रथ के पास चला, और सारा हाल उससे जाकर कहा। मौका अच्छा देखकर जयद्रथ आश्रम के लिये चला। द्रौपदी अतिथि-सत्कार के लिये आश्रम में रहे-सहे थोड़े-से फल-फूल लेकर तैयार होने लगी।

जयद्रथ पर काम का पूरा प्रभाव पड़ चुका था। और, द्रौपदी को अपनी पत्नी बनाना चाहता था। कुटी में जाकर आसन ग्रहण करके उसने द्रौपदी से कुशल-प्रश्न किया। संक्षेप में अपने तथा पतियों के मंगल-समाचार देकर द्रौपदी ने भी जयद्रथ के राज्य, सेना और कोष की कुशल-कामना की। द्रौपदी को रिझी हुई जानकर जयद्रथ ने कहा—"सुनो, मैं तुम्हारे पतियों को मारकर तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।" इस नीचता से द्रौपदी को क्रोध आ गया, और जयद्रथ को उसने कुछ कड़ी बातें सुना दीं। कामी जयद्रथ हँसता हुआ बोला—"वामे, तुम्हारी गालियाँ भी मुझे प्रिय मालूम देती हैं।" ऐसा कहकर वह द्रौपदी को पकड़ने के लिये बढ़ा। डरकर कृष्णा

धौम्य को पुकारने लगी। पर जयद्रथ ने बल-पूर्वक द्रौपदी को उठाकर अपने रथ पर बैठा लिया। धौम्य ने बहुत फटकारा, और भय दिखाया कि पांडव तुम्हें इसका बड़ा बुरा फल चखाएंगे, किंतु वह रथ बढ़ाकर वन से भागा।

इसी समय पांडव भी शिकार खेलकर आ गए। जयद्रथ बहुत थोड़ी दूर गया था—वन की सीमा भी पार न कर पाया था, द्रौपदी-हरण की खबर पाते ही भीमसेन गदा लिए हुए उसी हालत में दौड़े। युधिष्ठिर ने कहा—"भीम, इसे मारना मत, यह बहन दुःशला का पति है।" भीम के पीछे अर्जुन भी दौड़े। भीम थोड़ी ही देर में निकट पहुंच गए। भीम का वज्र-गंभीर सिंहनाद सुनकर द्रौपदी आश्वस्त हुई। जयद्रथ के दल में खल-बली मच गई। कोटिकास्य रथ बढ़ाकर जयद्रथ की रक्षा के लिये आया, पर क्रुद्ध भीम का उस समय काल भी सामना न कर सकता था। उनके एक ही गदा-प्रहार से रथ और घोड़े-समेत कोटिकास्य का मस्तक चूर्ण हो गया। अर्जुन ने बाणों की ऐसी वर्षा की कि जयद्रथ की सेना की गति रुक गई, वे घूमकर लड़ने को विवश होने लगे। पर चोर की जान कितनी! जयद्रथ द्रौपदी को वहीं छोड़कर रथ लेकर भागा। सेना भी छतभंग होकर प्राण-रक्षा के लिये इधर-उधर भागने लगी। भीम और अर्जुन द्रौपदी को आदर-पूर्वक ले आए।

भीम का गुस्सा ठंडा न हुआ था। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—"महाराज, आप लोग आश्रम में चलकर द्रौपदी को आश्वस्त करें, मैं तब तक जयद्रथ को देख लूं।" अर्जुन ने कहा—"दादा, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। कृष्णा की रक्षा तथा सेवा नकुल और सहदेव अच्छी तरह कर लेंगे।" युधिष्ठिर ने फिर याद दिला दी कि जान से न मारना।

दोनों भाई दौड़ चले। दूर जयद्रथ के जाते हुए रथ को देखकर, अर्जुन ने अव्यर्थ तीर छोड़कर रथ के पहिए काट दिए। परिस्थिति विषम देखकर जयद्रथ रथ से कूदकर भागा। भीम पकड़ने के लिये दौड़े। अर्जुन पीछे-पीछे दौड़ते हुए कहने लगे—"दादा, मैं तुम्हारे साथ दौड़ न पाऊंगा, पर उसे जान से न मारिएगा।"

भीम क्षण-भर में जयद्रथ के पास पहुंच गए, और उसे उठाकर दे मारा। नीचे डालकर घोंट रहे थे, तब तक अर्जुन भी पहुंच गए। अर्जुन ने छुड़ाकर कहा—"दादा, लाओ, इसका सिर मूड़ दें।" भीम पकड़े रहे, अर्जुन ने

अर्द्धचंद्र बाण से उसका सिर मूड़ दिया। फिर बाँधकर द्रौपदी के पास ले चले। जयद्रथ की बुरी दशा देखकर करुणार्द्र हो द्रौपदी ने छुड़वा दिया। इस अपमान से दुखी होकर जयद्रथ वन मे जा भगवान् शंकर की तपस्या करने लगा। उन्हें प्रसन्न कर पाँचो पाडवों को जीतने का वर माँगा। शंकर ने कहा, अर्जुन को छोड़कर और किसी से न हारोगे।

★ कर्ण को शक्ति-प्राप्ति

वन मे गंधर्व से पराजित होने के बाद कर्ण के मन मे पांडवो के प्रति द्वेष-भाव बढ गया। अर्जुन को पराजित करने की आशा से वह तपस्या करने लगे। पुत्र अर्जुन की मंगल-कामना से इंद्र कर्ण की तपस्या से बहुत घबराए। उन्होंने निश्चय किया, कर्ण संसार का इस समय सर्वश्रेष्ठ दानी है, यदि ब्राह्मण का वेश धारण कर इससे कुंडल और कवच माँग लेंगे, तो निःसंदेह अर्जुन का कल्याण होगा। कुंडल्न और कवच के रहते अर्जुन कर्ण को मार नही सकते। यह सोचकर इद्र कर्ण के पास चले।

सूर्य को भी इसी तरह अपने पुत्र कर्ण पर प्रेम था। उन्होंने सोचा, यदि देवराज कुंडल-कवच माँग ले जायँगे, तो कर्ण के लिये हार अनिवार्य होगी, उन्होने कर्ण से आकर कहा—"वत्स कर्ण, देवराज इद्र तुम्हारे पास भिक्षार्थ आ रहे हैं।" कर्ण ने कहा—"पिता, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। मैं द्वार से प्रार्थी को विमुख न करूँगा, चाहे उस प्रार्थना मे मुझे प्राण-सशय भी देख पड़े।" सूर्य बोले—"वत्स, प्राण-सशय ही है। इद्र अर्जुन की रक्षा के लिये ब्राह्मण के वेश से तुम्हारे कुडल और कवच माँगने आ रहे हैं। उन्हे न देना।"

महावीर कर्ण ने मुस्किराकर कहा—"पिता, मैं सब तरह देश मे अधम गिना जाता हूँ। तुम तो सब कुछ देखते हो। दुर्योधन का साथ मैंने इसलिये ग्रहण किया, क्योंकि वह मनुष्य है—उसी ने मुझे मनुष्य के रूप में, सब मनुष्यों के बराबर, सबसे पहले माना। इसी मनुष्यता की रक्षा के लिये मैं अतिथि को विमुख नही करता। यदि देवराज अर्जुन की रक्षा के लिये भिक्षुक होकर कुंडल और कवच के रूप मे मेरे प्राण लेने के लिये आ रहे हैं, तो आएँ, पिता, संसार देखे कि इतना अधम कर्ण अपनी प्रतिज्ञा

की रक्षा के लिये प्राणों का भी दान कर सकता है। पर वह पांडवों की तरह धर्मात्मा फिर भी नहीं !" महावीर कर्ण का मुख-मंडल प्रसन्न व्यंग्य से उज्ज्वल हो गया। पुत्र को आशीर्वाद देकर भगवान् सूर्य ने दुःख के साथ प्रस्थान किया।

थोड़ी देर में देवराज इंद्र वृद्ध ब्राह्मण के वेश में आए। कर्ण ने आदर-पूर्वक अतिथि से आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा—"कर्ण, मैंने सुना है, तुम बड़े दानी हो। मैं तुमसे तुम्हारे कुंडल और कवच माँगने आया हूँ।"

"अच्छा ब्राह्मण !" कर्ण के होठों पर बड़ी ही मार्मिक मुस्कान खिंच गई। फिर उस महावीर, महादानी ने तेज शस्त्र से शरीर का कवच और कुंडल काटकर इंद्र को दे दिया। एकटक इंद्र कर्ण का महान् वीरत्व देखते रहे। उन्हें याद आया, यह वही महापुरुष है, जिसने आचार्य परशुराम से शिक्षा प्राप्त करते समय, जाँघ पर मस्तक रखकर सोते हुए गुरु के निद्रा-भंग की शंका करके, जाँघ में काटते हुए वज्र-कीट की पीड़ा सह ली, पर जाँघ नहीं हिलाई। इंद्र को बड़ी लज्जा लगी। जब वह कुंडल और कवच लेकर चलने लगे, पैर नहीं उठ रहे थे। अंत में लजाकर लौट पड़े। बोले—"कर्ण ! तुम धन्य हो। मैं देवराज इंद्र हूँ। तुम वज्र को छोड़कर मुझसे वर की प्रार्थना करो।" कर्ण ने मुस्किराकर कहा—"देवराज, आप अपने पुत्र की कल्याण-कामना में व्रती हैं, यह मुझे मालूम था।" सुनकर इंद्र ध्यान करके, असलियत को समझकर बोले—"हाँ कर्ण ! तुम जानते थे। सूर्यदेव ने तुमसे कहा है, पर प्रतिदान में तुम अपनी क्षति-पूर्ति कर सकते हो।" कर्ण ने कहा—"आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो आप मुझे अपनी अमोघ शक्ति दान कीजिए।" इंद्र ने शक्ति दे दी, फिर कहा—"कर्ण ! तुम जिस शत्रु पर इसे छोड़ोगे, उसका वध अनिवार्य है, पर इसके बाद यह शक्ति हमारे पास चली आवेगी।" यह कहकर अर्जुन के प्राणों की एक दूसरी शंका लिए हुए इंद्र ने वहाँ से प्रस्थान किया।

★ यक्ष से भेंट

धीरे-धीरे वनवास की अवधि समाप्त हो आई, एक साल अज्ञात-वास का रह गया। महाराज युधिष्ठिर इस चिंता में थे कि कहाँ अज्ञात-वास

का समय पूरा किया जाय कि दुर्योधन को इसका पता न हो। इस प्रकार की चिंता करते हुए, महाराज युधिष्ठिर कृष्ण तथा अपने भाइयों के साथ आश्रम में बैठे हुए थे कि एक रोता हुआ ब्राह्मण सामने आकर खड़ा हो गया। पूछने पर कहा—"यहाँ एक हिरन आश्रम के डंडे में सींगें खुजला रहा था। मेरी अरणी उसी डंडे में लटकाई थी, वह हिरन की सींगों में लिपट गई। हिरन ने छुटाने की कोशिश की, पर छूटी नहीं। मैं छुड़ाने दौड़ा, तो हिरन भाग गया।"

ब्राह्मण को दुखी देखकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को आज्ञा दी कि हिरन को खोजकर अरणी ला दें। फिर खुद भी धनुष लेकर हिरन की खोज में निकले। बड़ी देर बाद वह हिरन मिला। पर वह पकड़ में न आया। उसे तीर मारने पर न-जाने कैसे बच जाता था। पांडव बहुत घबराए। अंत में प्यास से व्याकुल होकर एक जगह पेड़ की छाँह में बैठ गए। कुछ दूर पर एक तालाब था। पानी पीने और ले आने के विचार से नकुल-सहदेव और अर्जुन-भीम क्रमशः गए, परंतु एक आकाश-वाणी हुई कि पानी पीने से पहले प्रश्न के उत्तर देने की बात न मानकर पानी पी लेने के कारण प्राण खो बैठे।

जब युधिष्ठिर गए, तब भी उसी तरह आकाश-वाणी हुई—"मेरे प्रश्न के पहले उत्तर दे दो, तब पानी पियो।" युधिष्ठिर प्यास से व्याकुल होने पर भी खड़े हो गए, पर कोई देख न पड़ा। तब उन्होंने कहा—"जो महाशय इस प्रकार बोल रहे हैं, वह सामने आएँ।" इस पर युधिष्ठिर ने देखा, एक हंस ने सामने आकर मनुष्य की वाणी में कहा—"हाँ, यह मैं आ गया।" युधिष्ठिर ने पुनः कहा—"आप अपना परिचय दीजिए।" उसने कहा—"मैं यक्ष हूँ।" इसके बाद यक्ष ने प्रश्न करना शुरू किया, युधिष्ठिर उत्तर देते गए। युधिष्ठिर के सभी उत्तर सही हुए। यक्ष ने इस पर वर देने की इच्छा प्रकट की। युधिष्ठिर ने कहा, अज्ञान-वश मेरे भाइयों का विनाश हुआ है, आप कृपा करके उन्हें जिला दीजिए। यक्ष ने वैसा ही किया। युधिष्ठिर को यक्ष के कार्य से बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने विनय-पूर्वक पुनः यक्ष से प्रार्थना की कि ऐसा कार्य कोई यक्ष नहीं कर सकता, मेरे भाई यक्षों से अधिक बलवान् हैं, आप अपना सच्चा परिचय दीजिए। तब यक्ष ने कहा—"मैं धर्म हूँ, युधिष्ठिर, तुम मेरे पुत्र हो, तुम पुनः वर

माँगो।" युधिष्ठिर ने ब्राह्मण की अरणी माँगी। फिर कहा—"वनवास के बारह साल हम पूरे कर चुके हैं, अब तेरहवें साल हमें कोई पहचान न सके, आप ऐसा वर देकर स्थान-निर्देश भी कर दीजिए।" अरणी तथा वर देकर धर्म ने कहा—"तुम लोग रूप बदलकर विराट-नगर में जाकर रहो।" यह कहकर धर्म अंतर्धान हो गए, और पांडव प्रसन्नता से आश्रम को लौटे।

विराटपर्व

★ पांडवों का प्रस्थान और स्थान-ग्रहण

धीरे-धीरे वनवास का समय पूरा होने को हुआ। एक दिन महाराज

युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से कहा—"हे भूदेवगण! हमारा वनवास का समय

समाप्त-प्राय है। अब एक साल हमें अज्ञातवास करना होगा। पर यह वन-वास-काल से सकट-पूर्ण है। क्योंकि दुर्योधन को यदि हमारा पता मिल गया, तो फिर हमें बारह वर्ष का वनवास-दु ख उठाना पड़ेगा। आप लोग निश्चित चित्त से ईश्वर का ध्यान कीजिए। हम लोग अज्ञात-वास का समय पूरा कर पुन आपकी सेवा में दत्तचित्त होंगे।" महाराज युधिष्ठिर की भक्ति-युक्त सरल वाणी सुनकर ब्राह्मण लोग रोने लगे। पर समय का विचार कर सबने धैर्य धारण किया, और पांडवों के कल्याण के लिये जप-यज्ञ करने लगे।

एक दिन ऊषाकाल में इष्टदेव को प्रणाम कर, ब्राह्मणों की चरण-रज मस्तक पर धारण कर द्रौपदी के साथ पाँचो पांडव विराट-नगर के लिये रवाना हुए।

अनेक प्रकार के वार्तालाप करते हुए, कई दिनों के बाद, दूर निकल जाने पर, पांडव अपने रहने के विचार निश्चित करने लगे। द्रौपदी के साथ पाँचो भाई एक विशाल वृक्ष की छाया में बैठ गए। आस-पास कोई मनुष्य न देख पड़ता था, वहाँ मनुष्य के जाने का कोई कारण भी न हो सकता था। युधिष्ठिर ने कहा—"भाइयो, मैं विराट के यहाँ ब्राह्मण के वेश में जाकर आश्रय माँगूंगा। मैंने जुआ, शतरज आदि खेल सीख ही लिए हैं, महाराज विराट को अवश्य क्रीड़ा का व्यसन होगा। भाई भीम! तुम वल्लभ के नाम से विराट-राज के यहाँ रसोइए का काम माँगना, वहाँ तुम्हे भरपेट भोजन तो मिल जाया करेगा। उर्वशी का दिया हुआ शाप ठीक समय पर अपना प्रभाव अर्जुन पर अवश्य छोड़ेगा। इसलिये अर्जुन बृहन्नला नाम धारण कर, स्त्री-भूषणों से अपने को सजाकर नृत्य-गीत की शिक्षा देने की प्रार्थना लेकर जायें। महाराज विराट के शिक्षायोग्य एक कुमारी है। नकुल ग्रंथिक नाम से घोड़ों की रखवाली का काम माँगें, और सहदेव तंत्रिपाल नाम धारण कर चरवाहा होकर रहें। द्रौपदी सैरंध्री नाम बतलाकर रानियों की चोटी सँवारने, बाल-कंघी करने का काम करें।" युधिष्ठिर की सलाह सबको पसंद आई।

चलते-चलते पांडव विराट के राज्य में आ गए। घोर निर्जन स्थान देखकर, सबने अस्त्र छिपाकर वेश बदलने का निश्चय किया। सामने एक विशाल शमी-वृक्ष देख पड़ा, युधिष्ठिर ने कहा—"इसी पेड़ में, घनी शाखाओं के भीतर, अस्त्र-शस्त्र बाँध दिए जायँ।"

अर्जुन का गांडीव धनुप, अक्षय तूणीर, भीम की गदा और सब लोगों के धनुप और तरकस, वर्म, चर्म और खड्ग आदि एक-एक लेकर नकुल उस विशाल वृक्ष की घनी डालों में बांधने लगे। यह कार्य समाप्त कर पांडवों ने अपना-अपना वेश बदला। फिर सब लोग अलग-अलग राहों से होकर विराट-नगर के लिये चले।

ईश्वर की इच्छा तथा धर्म के वरदान से, राजा विराट से साक्षात्कार होने पर, पाँचों पांडव अपने-अपने उद्देश में सफल हुए। ब्राह्मण-वेशी कंक का विराट ने बड़ा सम्मान किया, और अपना मित्र बनाकर पाँसा आदि खेलने के लिये रखा। वैसे ही वल्लभ को रसोई की अध्यक्षता, बृहन्नला को उत्तराकुमारी की शिक्षा, ग्रंथिक और तन्निपाल को अस्तबल और गोशाला की देख-रेख का काम मिला।

फटी धोती पहनकर दिव्य आभा-सी महारानी द्रौपदी लोगों को चकित करती, आश्चर्य में डालती हुई महारानी विराट के रनिवास के सामने आकर नीचे खड़ी हुईं। महारानी सुदेष्णा ने नीचे खड़ी हुई भिखारिन को ऊपर महल से झांककर देखा। देखकर उसके अपार रूप से मुग्ध हो गईं। भिखारिन से परिचय और आने का कारण जानने की उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। वह नीचे उतरकर सैरंध्री के पास गईं, और बड़े स्नेह से पूछा—"तुम कौन हो? यहां क्यों आई हो?" सैरंध्री ने कहा—"मैं विपत्ति की मारी हुई एक साधारण स्त्री हूँ। मेरा नाम सैरंध्री है। मैं बाल-कंघी करना और चोटी गूंथना जानती हूँ। आपके यहां इसी काम के लिये आई हूँ। क्या आप मेरे असमय में, मुझ पर कृपाकर, मुझे इस काम के लिये अपनी दासी बना लेना मंजूर करेंगी?" राजमहिषी सुदेष्णा ने कहा—"अच्छा, सैरंध्री, हमने तुम्हें यह काम दिया। आओ।" "लेकिन रानीजी", सैरंध्री ने कहा—"मैं जूठे बरतन न छुऊँगी, न जूठा भोजन करूँगी; मेरे गंधर्व-पति इससे नाराज होंगे।" रानी को सैरंध्री का यह व्रत भी मंजूर हुआ।

इस प्रकार पांडव बड़े सुख से अपने अज्ञात-वास के दिन पूरे करने लगे। कृष्णा की भीम से प्रायः मुलाकात होती थी। दासी का रसोई-घर जाना दोनों वक्त का काम है। भीम प्रिया से आँखों में मुस्कराकर इशारे से कुशल पूछते, द्रौपदी आँखों में ही हँसकर 'अच्छी तरह हूँ' यह देती। कभी घाघरा पहने, ओढ़नी ओढ़े, टिकुली लगाए हुए उत्तराकुमारी की

आचार्या बृहन्नला मिलती, तो सैरंध्री के तिरछे, तीर से भी तेज़ कटाक्ष विश्वविजयी प्रिय की आँखों से चुभकर जैसे पूछते—"कहो वीर, यह कैसा बाना धारण किया है ?" बृहन्नला मुस्कराकर हृदय से पानी-पानी हो जाती। कभी कंक महाशय से मुलाकात होती, तो सैरंध्री भी औरों की तरह हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करती, गंभीर होकर ब्राह्मण कक आशीर्वाद देते—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। तुम्हारे दिन निर्विघ्न हों।"

✓

☆ कीचक-वध

महाराज विराट का सेनापति महारानी सुदेष्णा का भाई कीचक था। इसी के बल के भरोसे महाराज विराट निष्कंटक राज्य कर रहे थे। कीचक के बल का समस्त भारत में आतंक था। बड़े-बड़े योद्धा उससे घबराते थे। राजा विराट भी उसका विरोध न कर सकते थे।

एक दिन वह अपनी बहन सुदेष्णा के पास बैठा था। इसी समय सैरंध्री वहाँ गई। सैरंध्री को देखकर कीचक मुग्ध हो गया। उसने बहन से पूछा—"यह किस देश की राजकुमारी है ?" भाई की बात सुनकर महारानी सुदेष्णा घबराईं। वह अपने भाई के बुरे चरित्र की कई घटनाएँ देख चुकी थी, और प्रतिकार का उपाय न देखकर चुपचाप सहकर रह गई थीं। धैर्य के साथ उन्होंने उत्तर दिया—"यह यहीं की एक दासी है।" कीचक ने कहा—"तुम जरा उस कमरे में जाओ, मैं इससे कुछ बातें करना चाहता हूँ।" सुदेष्णा का हृदय भय से काँपने लगा। कीचक ने फिर बहन की कोई परवा न की। उठकर, द्रौपदी के पास जाकर कहा—"शोभने, तुम्हारे अतुल रूप को देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। तुम इच्छा-मात्र से मुझे अपना कृतज्ञ दास बना सकती हो।"

सैरंध्री बहुत डरी, पर उपाय न था। बोली—"सेनापति, मैं एक नीच जाति की दासी हूँ। मेरे लिये ऐसे शब्द न कहिए। फिर मैं ब्याही हुई हूँ, और आपकी आश्रिता हूँ।"

कीचक कुछ सोचकर रुक गया, फिर एकांत में बहन के पास जाकर रोने लगा। सुदेष्णा को दया आ गई। पूछा—"भाई, तुम्हारे इतने विह्वल होने का क्या कारण है ?" कीचक ने कहा—"सैरंध्री के बिना मैं न बचूँगा।

उससे जिस तरह हो सके, मिला दो। यह तुम्हारे लिये बहुत आसान काम है।" सुदेष्णा पहले तो चिंता में पड़ गई, पर भाई की सेवा में एक तुच्छ दासी के जाने पर कोई दोष नहीं, ऐसा विचारकर बोली—"भाई! पर्व के दिन मैं उसे तुम्हारे पास भेज दूंगी, तब अपनी मनमानी कर लेना। तब तक धैर्य रक्खो।"

पर्व करीब था। कीचक ने धैर्य धारण किया। पर्व का दिन आ गया। राजभवन मे उत्सव होने लगे। रानी ने सैरंध्री को बुलाकर कहा—"देखो सैरंध्री, रानियो के पीने लायक अच्छी शराब, भाई कीचक के पास है, तुम जाकर मेरे लिये ले आओ।"

सैरंध्री डरकर काँपने लगी। कीचक का स्वभाव अच्छा नही, रानी से अनेक बार कहा, पर रानी बराबर यही कहती रही कि कीचक कुछ नही कर सकता, क्योंकि वह जानता है कि दासी रानी की है।

इससे आश्वस्त होकर सैरंध्री कीचक के यहाँ गई, और रानी अच्छी शराब माँग रही है, निवेदन किया। कामी कीचक ने द्रौपदी का आँचल पकडकर खींचा, और समझा दिया कि शराब लेने भेजने का एक बहाना है। विराट के यहाँ कोई ऐसी शक्ति नही, जो कीचक की इच्छा को दबा सके, और सैरंध्री अगर चाहे, तो कीचक की प्रिया होकर मत्स्यराज की भी रानी बन सकती है।

कीचक नशे मे था। उपाय न देखकर सैरंध्री ने कीचक को धकेल दिया, और आँचल छुड़ाकर जान लेकर भागी। पीछे-पीछे कीचक भी दौडा। सैरंध्री बचने का उपाय न देखकर विराट के दरबार मे—"महाराज रक्षा कीजिए, महाराज रक्षा कीजिए" पुकारती हुई घुस गई, पीछे-पीछे कीचक भी आ गया। सैरंध्री के लच्छेदार खुले बालों को पकड़कर उसने कई लातें मार दी। फिर किसी की कुछ परवा न कर चला गया। सभास्थल स्तब्ध हो गया। किसी की हिम्मत न हुई कि खुलकर कुछ कहे। महाराज विराट ने कहा—"मामला दोनो पक्ष का सुने बगैर कोई फ़ैसला कैसे किया जा सकता है?" कंक-रूपी युधिष्ठिर ने सैरंध्री को डाँटकर कहा—"सैरंध्री, तुम रनिवास मे जाओ। तुम्हारे गंधर्व-पति इसका निर्णय कर लेंगे।"

उसी दिन एकांत मे भीम को पकड़कर द्रौपदी रोने लगी। भीम से कहा—"युधिष्ठिर भीरु हैं, अपनी इज्जत की रक्षा नही कर सकते, अर्जुन

की वीरता समाप्त हो चुकी है—पूरे हिजड़े बन रहे हैं। एक जुआड़ी, दूसरा जनखा। अब तुम भी कह दो कीचक से तुम्हारी रक्षा न कर सकूँगा। मैं अपना उपाय सोच लूँगी। तुम लोग अज्ञात-वास पूरा करके अपना राज्य वापस लेने का प्रयत्न करो।" कहकर द्रौपदी भीम को पकड़कर रोने लगी। पत्नी को भीम ने प्रबोध दिया। द्रौपदी के अपमान के विचार-मात्र से भीम की मूर्ति भयकर हो गई। उस भीषण रूप को देखकर द्रौपदी का हृदय आनंद से छलकने लगा। भीम ने कहा—"अबके जब तुम्हें छेड़े, तब नाटच-शाला में आधी रात को आने का वादा करके मुझे बता जाना।" प्रसन्न होकर द्रौपदी चली गई।

कीचक को चैन न था। उसे किसी का भय भी न था। दूसरे ही दिन उसने द्रौपदी को घेरा। कहा—"सैरंध्री, अब बताओ, अब तो तुम्हारे राजा भी मेरा कुछ न बिगाड सके।" सैरंध्री ने आँखें नचाकर कहा—"तुम बड़े अरसिक हो। आखिर तो सिपाही आदमी ठहरे। सच तो यह है कि मैं खुद तुम्हारे लिये बेचैन हूँ। आज आधी रात को नाटचशाला में मिलो, फिर देखो, तुम्हें क्या मजा चखाती हूँ।"

कीचक कृतार्थ हो गया। घर पहुँचकर रात की प्रतीक्षा करने लगा। बार-बार बाहर निकलकर सूर्य को देखता था। बड़ी अधीरता से वह दिन बीता। सध्या होने पर खूब सजकर, सुगंधियों से कपड़े शराबोर करके आधी रात को नाटचशाला में आया। भीम कुछ पहले से आकर प्रतीक्षा कर रहे थे।

भीम स्त्री-वेश में थे। कमरे में दीपक न था। भीम के पुष्ट अंगों पर हाथ चलाकर कीचक ने कहा—"सैरंध्री, तुम भी पूरी पहलवान हो।" भीम ने नक्की स्वरों में उत्तर दिया—"हाँ प्यारे, मेरी-तुम्हारी अच्छी जोड़ी है।" कीचक शराब के नशे में था। भीम ने व्यर्थ के प्रेमालाप में समय न खोकर कीचक के बाल पकड़े। कीचक सँभल गया, और हाथ मारकर बाल छुड़ा लिए। भीम कमर में लिपट गए। कीचक समझ गया। दोनों में घोर द्वंद्व-युद्ध चलने लगा। अंत में भीम ने उठाकर पटक दिया, और उसके हाथ, पैर और सिर धड़ में घुसेड़ कर एक पिंड-सा बना दिया। फिर बाहर आकर ठंडे होने लगे।

सुबह को यह चर्चा फैल गई कि रात को सैरंध्री के गंधर्व-पतियों ने

कीचक को मार डाला। राजमहल में शोक की घटा छा गई। कीचक को जलाने की तैयारी होने लगी। उसके भाई-बंधुओं ने कहा—"इस सैरंध्री के कारण हमारे भाई की यह दशा हुई है, इसे भी बांधकर ले चलो, और भाई के साथ फूंक दो।" सबने द्रौपदी को पकड़कर बांध लिया।

भीम उस समय बाहर खड़े थे। उन्होंने द्रौपदी की पुकार सुनी—"हे मेरे गंधर्व-पतियो, मुझे कीचक के दुष्ट भाई बांधे लिए जा रहे हैं ; मुझे कीचक के साथ जलावेंगे, मेरी रक्षा करो।" भीम लँगोट पहनकर, मुंह और तमाम देह में कालिख पोतकर श्मशान की ओर दौड़े। पास पहुँचकर एक पेड़ उखाड़ लिया, और उसी से कीचक के भाइयों को वध करने लगे। एक-एक कर कीचक के प्रायः सभी भाइयों को उन्होंने मार डाला, कुछ भाग आए। भीम ने कृष्णा के बंधन खोल दिए। फिर दूर के एक तालाब में देह साफ़ कर अपने काम पर आ गए। विराट-नगर में सैरंध्री का आतंक छा गया। उसके गंधर्व-पतियों की घर-घर चर्चा होने लगी।

★ गोधन-हरण

दुर्योधन बड़ी तत्परता से पांडवों का पता लगवा रहा था। पर अज्ञात-वास के दिन पूरे होने को हुए, फिर भी पांडवों का पता न चला। इसी समय विराट-नगर की खबर वहाँ भी पहुँची कि विराट की सैरंध्री-नाम की दासी से छेड़छाड़ करने के कारण उसके गंधर्व-पतियों द्वारा कीचक मारा गया है; पश्चात् उसके भाई भी मार डाले गए। दुर्योधन को भय हो रहा था कि पांडव वनवास की अवधि पूरी करके आ जायेंगे, तो कौरव-कुल की कुशल न होगी।

त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा कई बार कीचक से हारा हुआ था। उसके मन में विराट से बदला लेने की बात उठी। उसने कर्ण से कहा—"पांडवों से लड़ने की तैयारी में महाराज दुर्योधन को अन्न-संग्रह करना ही होगा। इसलिये विराट का गोधन यदि ले आया जाय, तो दूध से रसद का पूरा सुबीता रहेगा। मैं तब तक विराट से अपना बदला चुकाता हूँ। आप लोग भी तैयार होकर आइए।" यह कहकर सुशर्मा विराट पर चढ़ाई करने

के विचार से चल दिया। यहाँ दुर्योधन भी यथेष्ट सेना तथा भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण आदि महावीरों को लेकर विराट पर चढ़ चला।

सुशर्मा पहले पहुँचा। कुछ गौएँ घेरकर तकरार की नीव डाल दी। विराट कीचक की याद कर रोने लगे। कंक ने धैर्य देकर कहा—"वल्लभ यहाँ कई कुश्तियाँ जीत चुका है, वह बहुत अच्छा मल्ल है, आप घबराएँ मत, आपकी हार न होगी।" इससे विराट को संतोष हुआ। सारी फ़ौज को तैयार होने की आज्ञा हो गई। कंक की सलाह से वल्लभ (भीम), ग्रंथिक (नकुल) और तन्त्रिपाल (सहदेव) भी तैयार हो गए। दोनो सेनाओं का सामना हुआ। सुशर्मा और विराट दोनो आमने-सामने थे। युद्ध छिड़ गया। सुशर्मा ने विराट के घोड़ो और सारथि को मारकर बात-की-बात में विराट को बाँध लिया। यह देखकर मत्स्य-देश की सेना भागने लगी। सुशर्मा विराट को अपने रथ पर बैठाकर ले चला। सेना को राजा के पराजय से भागते देखकर कंक ने वल्लभ को ललकारा। महावीर वल्लभ अपने दोनो तरफ़ ग्रंथिक और तन्त्रिपाल की सहायता से बढ़ते हुए सुशर्मा के पास पहुँचे, और उसी तरह उसके सारथि और घोड़ो को मार डाला। फिर सुशर्मा को बल-पूर्वक पकड़कर बाँध लिया, और महाराज विराट के बंधन खोल दिए। सुशर्मा को वल्लभ ने कंक के सामने लाकर उपस्थित किया। कंक ने उसे क्षमा करके छोड दिया। महाराज विराट कंक और वल्लभ से बहुत प्रसन्न हुए। उन्हे कीचक की मृत्यु का दुःख जाता रहा। वल्लभ की विराट-नगर में बडी प्रशंसा हुई।

विराट, कंक, वल्लभ आदि दूर रण-क्षेत्र से लौटे न थे कि ख़बर आई—महाराज दुर्योधन ने सारी गौएँ घेरवा ली है, और उनके साथ भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा आदि महारथ भी है। इस संवाद से विराटनगर मे आतंक छा गया। भीष्म-द्रोण आदि के साथ युद्ध करना मामूली बात नही। इसी समय उत्तरकुमार के सामने बृहन्नला को देखकर सैरंध्री बोली—"कुमार, बृहन्नला सारथि का काम बहुत अच्छा जानती है, यह एक बार अर्जुन की सारथि बनी थी। यह अगर तुम्हारे रथ पर बैठ भी जायँ, तो कौरव परास्त हो जायँगे।"

उत्तर ने कहा—"क्यों बृहन्नला, आपने अर्जुन का रथ हाँका था?"

बृहन्नला ने साफ इनकार कर दिया। कहा—"ऐ कुमार, भला मैं रथ

हाँकना क्या जानूँ ? नाचने-गाने के लिये कहो, तो और बात है।" यह कहकर वर्म उठाकर बृहन्नला उलटा करके पहनने लगी। उत्तरकुमार हँसने लगे। सैरंध्री ने कहा—"कुमार, उत्तराकुमारी अगर कहें, तो यह तुम्हारे साथ तैयार हो सकती है।"

उत्तरा भी सुन रही थी। बृहन्नला का हाथ पकड़कर जाने का अनुरोध किया। उत्तरा ने अच्छी तरह वर्म पहना दिया। बृहन्नला से उत्तरा ने कहा—"बृहन्नला, कौरवों के अच्छे-अच्छे कपड़े हमारे लिये ले आना। मैं गुड़िया बनाऊँगी।"

बृहन्नला ने हँसकर उत्तर दिया—"राजकुमार जब जीत जायँगे, तब हम जरूर तुम्हारे लिये कौरवों के कपड़े ले आवेंगे।" रथ तैयार था। उत्तरकुमार सजकर, अपना धनुष और तूण लेकर उस पर बैठे। बृहन्नला ने घोड़ों की जोत ली। नए जोश में कुमार को कुछ मालूम न था कि युद्ध ऐसा नहीं होता कि एक लाखों के विरुद्ध लड़ सके। इधर अर्जुन को कोई भय-बाधा थी नहीं। इसीलिये दोनों बिना सेना लिए हुए युद्ध-क्षेत्र की ओर चले गए।

उत्तर का रथ अब कौरव-सेना के पास पहुँचा। यहाँ से अभी काफी दूरी थी, पर कौरवों की समुद्र-सी लहराती हुई सेना देख पड़ती थी। उत्तर ने कौरवों की सेना को देखा, तो मारे डर के मुँह का थूक सूख गया। उसने कहा—"बृहन्नला, रथ लौटाल ले चलो। मैं युद्ध न करूँगा।" "क्यों कुमार ?" बृहन्नला ने कहा—"अब लौटने पर सब लोग हँसेंगे।" कहकर बृहन्नला मुस्किरा रही थी। उत्तर ने बार-बार रथ लौटा ले चलने को कहा, परंतु जब बृहन्नला ने न लौटाला, तब उतरकर भागा। दौड़कर बृहन्नला ने पकड़ लिया। उत्तर बहुत घबरा गया था। छोड़ देने को आरजू-मिन्नत करने लगा, तब बृहन्नला ने कहा—"अच्छा, मैं लड़ूँगी, तुम मेरे सारथि तो बनोगे ?" उत्तर ने मंजूर किया। तब अर्जुन शमी-वृक्ष की तरफ रथ ले गए, और उत्तर से कहा—"वहाँ पांडवों के हथियार बँधे हैं, जाओ, सबसे बड़ा जो धनुष और तरकस है, उन्हें ले आओ। वे अर्जुन के गांडीव और अक्षय तूणीर हैं।" उत्तर की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा—"बृहन्नला, वे महाभाग और वह साध्वी द्रौपदी इस समय कहाँ हैं ?" "मैं अर्जुन हूँ, जाओ, देर मत करो।" उत्तर ने विश्वास होने पर अर्जुन के पैर

पकड़कर प्रणाम किया, और वृक्ष से गांडीव और अक्षय तूणीर उतार लिए सजने समय सिर पर वस्त्र लपेटकर अर्जुन ने बहुत कुछ अपना रूप छिपा लिया। उत्तर ने वेगशाली अश्वों को कौरवों की विशाल वाहिनी की ओर हाँका।

वेगशाली एक ही रथ को बिना भय के बढ़ता देखकर कौरव तरह-तरह की कल्पनाएँ करने लगे। तेरह वर्ष की कठोर साधना, संयम और दुराचारियों को दंड देने की प्रतीक्षा, आज तम की रात के बाद उगे हुए सूर्य की तरह, महावीर अर्जुन के मुख-मंडल पर जगमगा रही थी। इस एक ही रथी की शान कौरवों के सैकड़ों रथियों को लजा रही थी।

बहुतों को यह शंका होती हुई जानकर कि यह अर्जुन है, दुर्योधन ने भीष्म से जाकर पूछा कि वनवास और अज्ञातवास की अवधि पूरी हो चुकी है या नहीं ? भीष्म ने कहा—"एक हिसाब से तो पूरी हो चुकी है, और पाँच महीने छः दिन और बढ़ गए हैं, पर दूसरे हिसाब से अभी कुछ दिन बाक़ी हैं।"

अर्जुन एक दृष्टि से दुर्योधन को खोज रहे थे। एक ओर गर्द उड़ती हुई देखकर उन्होंने निश्चय किया कि वह दुर्योधन ही भागा जा रहा होगा। उत्तर को उसी ओर रथ बढ़ाने को कहा। उत्तर के उस तरफ़ चलने पर कर्ण ने राह रोक ली। दोनों का युद्ध होने लगा। अर्जुन गुस्से में भरे हुए थे। देखते-देखते उन्होंने कर्ण के भाई विकर्ण को मार डाला। दोनों में भयंकर संग्राम होने लगा। पर अर्जुन ने बात-की-बात में कर्ण को तेज़ बाणों से जर्जर कर दिया। फिर कृपाचार्य, अश्वत्थामा, द्रोण आदिकों को भी युद्ध में परास्त किया। कौरवों की सेना समुद्र के जल की तरह गरज रही थी। सबका पराजय हुआ देखकर भीष्म ने रथ बढ़ाया। कुछ देर तक युद्ध होता रहा। महावीर अर्जुन ने भीष्म का धनुष काटकर छाती पर एक तीर मारा, जिससे पितामह कुछ देर के लिये मूर्च्छित हो गए। कौरव दल विकल होकर अधर्म युद्ध करने लगा। इससे महावीर पार्थ को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने सम्मोहन शर का संधान किया। तीर छूटने पर कौरव-दल मूर्च्छित हो गया। अर्जुन ने उत्तर से कहा—"उत्तर, जाओ, कौरवों के अच्छे-अच्छे वस्त्र ले आओ, पर भीष्म के पास से अलग होकर जाना। वह इसका खंडन जानते हैं।" उत्तर द्रोण और कृप के सफ़ेद, कर्ण के पीले, अश्वत्थामा और दुर्यो-

धन के नीले वस्त्र, ज़रीन मुकुट आदि ले आए। फिर गौवों को खेदकर अपने यहाँ ले चले।

मूर्च्छा जगने पर दुर्योधन ने अर्जुन को घेरने लिये कहा, पर भीष्म ने समझाया कि इतना बहुत हुआ, अब लौट चलना ठीक होगा। यदि अर्जुन चाहता, तो सबको मूर्च्छित अवस्था में मार सकता था।
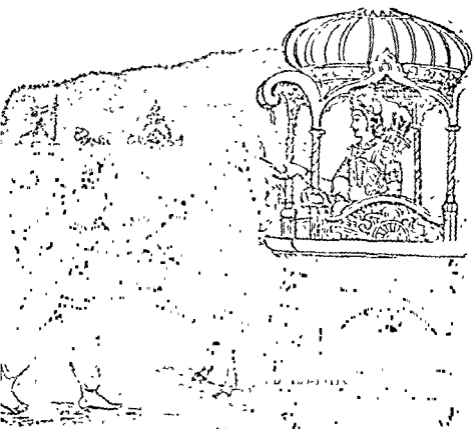
लौटते समय अर्जुन ने उत्तर से कहा कि उनका भेद वही वह तब तक न जाहिर करें, जब तक पांडव स्वयं आत्मपरिचय न दें। इस जीत का श्रेय वह स्वयं लें।

विराट त्रिगर्त को हराकर जब अपनी राजधानी लौटे, तब अंतःपुर में उन्हें संवाद मिला कि उत्तरकुमार बृहन्नला को लेकर अपनी गौएँ छुड़ाने गए हैं। विराट बहुत घबराए। उन्होंने दूत को देखने के लिये भेज दिया,

कि उत्तरकुमार का क्या संवाद है, वह लौटकर कहे। कुछ देर बाद दूत विजय-सवाद लेकर आया। उत्तरकुमार की विजय-वार्ता सुनकर विराट फूले न समाए। बहुत दिनों से उन्होंने पासा न खेला था। उस दिन खेलने के लिये मँगवाया। खेल में कक साथी थे। विराट प्रबल कौरव-दल को जीतनेवाले उत्तरकुमार की तारीफ़ करने लगे। कक ने कहा—"महाराज वृहन्नला के सारथित्व में उत्तरकुमार को जीतना ही था।" कई बार इसी तरह विराट ने उत्तर की तारीफ की और कक ने वृहन्नला को सराहा। तब क्रुद्ध होकर विराट ने कहा—"कक, तुम सँभलकर बातें नहीं कर रहे हो। उस एक नाचनेवाले की बार-बार तारीफ करते हो।" कक बोले—"राजन्, जहाँ महावीर भीष्म, द्रोण, कृप और कर्ण आदि एकत्र हों, वहाँ उत्तरकुमार की विजय पर आप ही को विश्वास हो सकता है, किसी समझदार को नहीं।" विराट को क्रोध आ गया। उन्होंने पासा फेककर कक को मार दिया, जिसमें नाक से खून बहने लगा। सैरन्ध्री खड़ी थी। सोने के कटोरे में जल भरकर वह रक्त को उसी में ले रही थी। इसी समय उत्तरकुमार द्वार पर आए, और पिता से मिलने की खबर भेजी। उत्तर के आग्रह से अर्जुन पाँचों पाडवों और द्रौपदी का परिचय दे चुके थे। युधिष्ठिर ने द्वारपाल के कान में कहा—"वृहन्नला को अभी आने से रोक दो।" उत्तर को देखकर विराट बहुत प्रसन्न हुए। कक के रक्त-स्राव का कारण समझकर उत्तर ने उन्हें प्रणाम कर पिता को ब्राह्मण से क्षमा माँगने के लिये कहा।

☆ पांडवों का स्वरूप-धारण

शुभ मुहूर्त देखकर यह निश्चय किया गया कि विराट की ही राजसभा में पांडव राजसिंहासन पर बैठकर संसार को अपना परिचय दें। निर्धारित समय प्रातःकाल द्रौपदी और पाँचों पांडवों ने स्नान और अग्निहोत्र किया। फिर सिंहासन पर महाराज युधिष्ठिर तथा द्रौपदी बैठे। नकुल और सहदेव चँवर ढुराने लगे। अर्जुन ने राजच्छत्र ग्रहण किया। भीम सेनापति के रूप में सामने गदा लेकर खड़े हुए।

दरबार के समय राजा विराट आए, और कंक आदि का यह तमाशा

देखकर बड़े चकित हुए। पहले तो सोचा—"शायद कंक ने सुशर्मा के युद्ध में मेरी सहायता की थी, इसलिये मुझे न मानकर अब खुद राजा होना चाहता है।" कंक को पासा मारने की बात भी उन्हें याद आई। बड़े विस्मय से कुछ देर तक देखते रहे। उनका जुआड़ी सखा कंक है! बगल में सैरंध्री दासी जो उनके लिये चंदन घिसती थी! सामने वल्लभ रसोइया! छत्र लिए हुए हिजड़ा बृहन्नला! चँवर डुलानेवाले ग्रंथिक और तंत्रिपाल, एक सईसों का जमादार, दूसरा चरवाहों का मुखिया! हृदय को कड़ा करके विराट ने कहा—"कंक! हमारे सेवक होकर इतनी बड़ी स्पर्धा तुमने की!" सुनकर अर्जुन हँसने लगे। कहा—"महाराज! आपका सिंहासन इनके बैठने योग्य नहीं। इन्हे तो इंद्र भी अपने साथ बैठाकर अपना सौभाग्य समझते हैं। यह कौरवों के गौरव महाराज युधिष्ठिर हैं।"

द्रौपदी तथा अपर भाइयों के परिचय ज्ञात हो जाने पर भी विराट ने पूछा। अर्जुन ने बतलाया। तब तक उत्तरकुमार भी आ गए। उन्होंने पिता से कहा—"इन महावीर अर्जुन के ही दिव्यास्त्रों की चोटें भीष्मादि नहीं सह सके, और कौरव पराजित हुए। पिता! हम लोग बड़े भाग्यशाली हैं, जो हमारे यहाँ आश्रय लेकर इन्होंने अपना अज्ञातवास पूरा किया। हमें बड़ा खेद है कि हमने भूल से भी ऐसे महापुरुषों तथा महारानी द्रौपदी से सेवा कराई, अब हमें आजीवन इनकी सेवा करके इसका बदला चुकाना चाहिए।"

विराट गद्गद हो गए। हाथ जोड़कर धर्मराज से क्षमा माँगी। विराट-नगर में आनंद का सागर उमड़ने लगा। राजा विराट ने अर्जुन से उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव किया, पर अर्जुन ने कहा—"मैंने अपनी पुत्री के रूप से उसे शिक्षा दी है। यह उचित नहीं। श्रीकृष्ण का भानजा, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु है, महाराज युधिष्ठिर की इच्छा हो, तो वह विवाह कर सकते हैं।" महाराज युधिष्ठिर ने आज्ञा दे दी। बड़े समारोह से, कृष्ण-बलराम आदि के साथ, द्वारका से बारात आई, और अभिमन्यु-उत्तरा का शुभ विवाह संपन्न हुआ।

उद्योगपर्व

पांडव अच्छी तरह प्रकाश में आ गए। अज्ञातवास का समय पूरा हो गया। एक अपूर्व शक्ति का प्रवाह झरने की तरह उनके हृदय में फूट निकला और नवीन जीवन की स्निग्धता उनकी नस-नस में प्रवाहित हो चली। वे संसार को एक नई ही दृष्टि से देखने लगे। उन पर छल और प्रपंच के जो मार्मांतिक अत्याचार हुए थे, जिन लाछनों को नत-मस्तक होकर धर्म के विचार से उन्होंने सहन किया था, वे सब उन्हें एक-एक करके याद आने लगे, और उनकी बदले की प्रवृत्ति रह-रहकर नागिन की तरह फन काढने लगी।

उत्तरा के विवाह के पश्चात् पांडवों के सखा और हितैषी श्रीकृष्ण ने, पाडवों के पक्ष की पुष्टि के विचार से, समागत राजन्यवर्ग को एकत्र करके सभा करने की युधिष्ठिर और भीमार्जुन को सलाह दी, समझा दिया कि जो युद्ध अदूरभविष्यत् में होना अनिवार्य है, उसकी तैयारियों का जल्द-से-जल्द श्रीगणेश होना चाहिए, कौरव पुनः पाडवों को राज्य से वहिष्कृत करने के लिये तत्पर होंगे; वे जैसे दुष्ट स्वभाव के हैं, उनसे किसी प्रकार के भी अनिष्ट की कल्पना की जा सकती है; इसलिये, एक बार धोका खाकर बार-बार धोका खाना समझदार का काम न होगा; इस बार उनके दुष्कर्मों का उन्हें फल मिलना ही चाहिए।

शुभचिंतक श्रीकृष्ण की आज्ञा को पांडवों ने शिरोधार्य कर लिया, और विराट के राजभवन में आमन्त्रित राजाओं की एक सभा का आह्वान किया। द्रुपद, विराट, बलराम, कृष्ण, सात्यकि आदि जितने शूरवीर अभिमन्यु के विवाह में आमंत्रित होकर गए थे, उस सभा में एकत्र हुए। पांडवों के लिये उनके हृदय में जगह थी। सब पांडवों का हित चाहते थे। धर्म के पक्षपात के साथ वे रिश्ते के सूत्र में भी पाडवों से संबद्ध थे।

सभा में पांडव श्रीकृष्ण के विश्वास में सिर झुकाए चुपचाप बैठ रहे। दूसरे राजा भी श्रीकृष्ण के बोलने की प्रतीक्षा मे विश्वास-पूर्वक उनकी दृष्टि की ओर देखते रहे। सभा का रुख मालूम कर संयत, शांत, मधुर स्वर से श्रीकृष्ण ने कहना शुरू किया—"भाइयो, मैं आप लोगों के समक्ष उन्ही बातों को निवेदन के रूप मे कहूँगा, जिन्हे कहने के लिये पांडव मुझसे अनुरोध कर चुके है। आप लोग जानते हैं, महाराज युधिष्ठिर से राज्य छीनने का कर्ण और शकुनि से मिलकर दुरात्मा दुर्योधन ने जुए का प्रपंच रचा था। वह जुआ भी अन्याय-पूर्ण था। पुनः दुर्योधन पांडवों से केवल राज्य लेकर संतुष्ट नही हुआ, वन-गमन और अज्ञातवास की शर्त भी पूरी कराई। छल-पूर्ण पासे से जीतकर, पाडवो को देश से निकालकर बिलकुल निष्कंटक राज्य करने का इरादा पक्का किया। इतना ही नही, दांव पर महारानी द्रौपदी को रखने के लिये भी महाराज युधिष्ठिर को उत्तेजित किया, और उन्हें जीतकर, उनके एकवस्त्र रजस्वला रहते समय, सभा मे केश-कर्षण-पूर्वक पकड़ मँगवाकर विवस्त्रा करने का भी पूर्णोद्यम कराया। पाडव इस इतने अत्याचार के होते हुए भी धर्म की ओर दृष्टि किए चुपचाप बैठे रहे। वे भिक्षुकों से भी इतर अवस्था में घर छोड़कर, अपना सर्वस्व दुर्योधन को अर्पण कर, वन गए। वहाँ भी उनके लिये निश्चित रहना दुश्वार हो गया। अन्य आपत्तियों की तो बात ही क्या, दुरात्मा दुर्योधन राज-पुरांगनाओं-सहित अपने ऐश्वर्य से पाडवों को श्रीकातर, हीनवीर्य करने के लिये वन गया। कीचक-वध से संशय मे आकर महाराज विराट के ऊपर भी चढाई की, उनकी धेनुएँ चुराई। बाल्यकाल से पाडवो के प्रति दुर्योधन के अनेकानेक दुर्व्यवहार के प्रमाण मिलते है। धर्मत यह राज्य पाडु से आया हुआ पांडवों का है, पुन महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन से वयोज्येष्ठ हैं, यह राज्य अधर्मतः लिया गया है। अपरंच दुर्योधन के शासन से राज्य के समस्त प्रजावर्ग दुखी है। ऐसे अधार्मिक, अत्याचारी राजा का शासन कदापि शास्त्रविहित नही। आप लोगों की जो राय हो—महाराज युधिष्ठिर अपने राज्य की प्राप्ति का प्रयत्न करें या चुपचाप बैठ जायें, इस सभा में निष्प-क्ष भाव से आप लोग आज्ञा करें।"

श्रीकृष्ण की वक्तृता से प्रभावित होकर महाराज द्रुपद ने कहा—"पाडव हमारे संबंधी हैं। इसलिये हमारे वचन में पक्षपात का अंश अधिक

हो सकता है। पर देश में धर्म और ज्ञान की दृष्टि से सम्मान्य कृष्ण जब धर्मराज्य की स्थापना के लिये इस प्रकार पांडवों का पक्ष ग्रहण कर रहे हैं, तब संपूर्ण शक्ति से उनकी सहायता करना ही हम अपना परम सुखद कर्तव्य समझते हैं। कौरव दुराचारी हैं, यह सर्वजनसम्मत है।

महाराज द्रुपद की बात समाप्त होते ही महामति बलराम तर्जना करते हुए बोले—"हमारी सम्मति में दुर्योधन निर्दोष हैं। राज्य वास्तव में उसके पिता महाराज धृतराष्ट्र का है। उनके अंधे होने के कारण पांडु को राज्य का शासन-भार मिला था। धृतराष्ट्र के पुत्र होने पर उस राज्य पर पांडवों का फिर कोई अधिकार नहीं रह जाता। फिर भी दुर्योधन ने राज्य की प्राप्ति के लिये किसी प्रकार का बलात्कार नहीं किया। महाराज युधिष्ठिर को उसने जुआ खेलने के लिये आमंत्रित किया, और बाकायदा दाँव पर राज्य जीता। युधिष्ठिर चाहते, तो नहीं भी खेल सकते थे, कोई बाधकता न थी। इस प्रकार एक के जीते हुए राज्य को फिर से दिलाने का प्रयत्न हमारे विचार से अन्याय है। हम इसका विरोध करते हैं। अगर दुर्योधन अत्याचारी है, तो इसका निर्णय उसकी प्रजा करेगी, हम और आप नहीं। प्रजा के द्वारा ही इसका उचित प्रतिफल उसे मिलना चाहिए। उसने अपने हिस्सेदारों के प्रति जैसा बर्ताव किया है, वह राजनीति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। फिर भी हमारी राय है कि दुर्योधन के पास राजनीति का जानकर कोई योग्य भेजकर मालूम किया जाय कि महाराज युधिष्ठिर के राज्य के संबंध में वह क्या कहता है—हृतसर्वस्व भाइयों को वह राज्य का आधा हिस्सा देना चाहता है, या केवल गुजारा, या कुछ नहीं।"

महामति बलदेव की सम्मति में महावीर सात्यकि को दुर्योधन के प्रति हुआ पक्षपात मालूम दिया। वीर गुस्से को न दबा सका। कहा—"जिस जुए के लिये धृतराष्ट्र तक की सम्मति हो, पासे कपट के बने हों, उसे न्यायसंगत कहना बलदेवजी-जैसे महात्मा को ही शोभा दे सकता है। पांडव जिस धैर्य की परीक्षा दे चुके हैं, वह उनके यथार्थ भाव को अच्छी तरह प्रकट कर देता है। महाराज युधिष्ठिर की जुआ खेलने की कदापि नीयत नहीं हो सकती, न बुद्धि-हीन होकर उन्होंने राज्य को, अपने सहित भाइयों को, दारा को और वनवास की शर्त को दाँव पर रक्खा है। द्रौपदी को आज तक उनका बचा रखना उनको बाहोश रहना साबित करता है। उन्हें

दुर्योधन वार-वार प्रेरित करता रहा। राजा अपने राजसी भाव को छोड़कर कभी कार्पण्य नहीं दिखा सकता। यही कारण है कि महाराज युधिष्ठिर दांव पर दांव रखते गए, जब तक वे हार के अंतिम निर्णय तक नहीं पहुँचे, यह धर्मपुत्र युधिष्ठिर ही कर सकते थे। मेरी समझ में, नीच दुर्योधन के पास दूत भेजना पहले से अपनी हार स्वीकार करना है। आचार्य अर्जुन की सहायता से मैं अकेला समस्त कौरवों को बांध सकता हूँ।"

सात्यकि को उत्तेजित देखकर महाराज द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए, पर सभा के विचार से बात बनाकर बोले—"यद्यपि वीर सात्यकि की बातें सत्य की दृष्टि से मर्म को स्पर्श करनेवाली हैं, फिर भी महामति बलराम की सम्मति का हमें सम्मान करना ही चाहिए, हमारी समझ में कौरव-सभा में दूत भेजने के साथ-साथ समस्त देश के राजाओं के पास रण-निमंत्रण भेजना चाहिए। उनके सहयोग से हमारी शक्ति बढ़ेगी और उनकी राय भी इस तरह हमें मालूम हो जायगी, और यद्यपि हमारे इस कार्य की कौरवों को बहुत जल्द गुप्तचरों द्वारा सूचना मिल जायगी, फिर भी हमारे परिपुष्ट दल का प्रभाव उन पर जरूर पड़ेगा, और इसका फल पांडवों के हक में अच्छा होगा।"

श्रीकृष्ण को राजा द्रुपद की यह सलाह बहुत पसंद आई, और रण-निमंत्रण के साथ कौरवों की सभा में दूत भेजने का ही निश्चय रहा।

अंत में सभी सभासदों की पूर्ण प्रसन्नता से सभा विसर्जित की गई।

★ युद्ध की तैयारियाँ

सभा-भंग के पश्चात् जोरों से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। अल्पसंख्यक होने पर भी पांडवों के पक्ष में अपार उत्साह उमड़ पड़ा। राजा द्रुपद और विराट ने अपनी-अपनी समस्त शक्ति पांडवों के अधिकार में कर दी। श्रीकृष्ण द्वारका को गए, और गृह-हीन पांडव द्रुपद और विराट की सेना के साथ कुरुक्षेत्र के पास शिविर-निवेश करके ठहरे। दुर्योधन को सारा भेद मालूम हो गया। वह भी युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। दोनों ओर से देश के समस्त राजाओं के पास युद्ध का निमंत्रण जाने लगा। अधिकांश राजा, जो यह देखते थे कि दुर्योधन राजा है—उसके हाथ

हस्तिनापुर की समस्त शक्ति है—पुन., भीष्म और द्रोण-जैसे महावीर योद्धा उसकी तरफ़ हैं, पांडव बनवास से आए हुए हीन-वीर्य हैं, वे कौरवों का पक्ष लेते थे। पर जो यह समझते थे कि पाडव धर्मात्मा हैं—उनमें अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति है—अर्जुन विश्व-विजयी वीर है—भीम महापराक्रमशाली है—पुन इनके साथ इस समय के सर्वश्रेष्ठ पुरुषरत्न श्रीकृष्ण का सहयोग है, वे पाडव-पक्ष में आते थे। ये सब राजा अपने-अपने देश से चलकर कुरुक्षेत्र के विशाल प्रांगण में आ-आकर ठहरने लगे।

इन दिनों यादवों की शक्ति देश की एक प्रबल शक्ति हो रही थी। इनके नायक श्रीकृष्ण थे। कृष्ण का देश में बड़ा सम्मान था। इसलिये इन्हें आमन्त्रित करने के लिये महाराज दुर्योधन स्वय चले। वहाँ आचार्य बलदेवजी की भी आज्ञा लेनी थी। दुर्योधन पूरे राजसी ठाट से थे। कृष्ण को आमंत्रित करना पांडवों का पहला कर्तव्य था; कृष्ण के बिना पाडव अपने को नि.शक्त समझते थे। अस्तु, महावीर अर्जुन कृष्ण को आमन्त्रित करने के लिये चले। सयोग-वश महाराज दुर्योधन और वीरवर अर्जुन एक ही समय द्वारकापुरी पहुँचे। वहाँ लोगों ने इनका स्वागत किया, अच्छी-अच्छी जगह ठहराया। अर्जुन की तो वहाँ ससुराल ही थी। बाहर के लोगों से मिल-जुलकर अर्जुन जब श्रीकृष्ण के मदिर में गए, तब श्रीकृष्ण योग-निद्रा में सोए हुए थे। अर्जुन ने देखा, उनके सिरहाने अकड़ के साथ राजा दुर्योधन बैठा हुआ है। अर्जुन कुछ न बोले, पयताने की तरफ़ नम्र भाव से बैठ गए। यथासमय कृष्ण की आँख खुलने पर उन्होंने पँयाते की तरफ देखा, अर्जुन बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन की कुशल और आने का कारण पूछा। अर्जुन भक्ति-पूर्वक आदरणीय मित्र से कहते गए। इसके बाद महाभारत-समर का उल्लेख कर कृष्ण को निमंत्रण दिया। निमत्रण स्वीकार कर श्रीकृष्ण फिरे। देखा, सिरहाने राजा दुर्योधन बैठे हुए थे। मुस्किराकर श्रीकृष्ण ने उसी प्रकार दुर्योधन से भी कुशल और आगमन-समाचार पूछा। दुर्योधन ने अपनी कुशल-समाचार कहते हुए कहा—"हम दोनों एक ही उद्देश से यहाँ आए थे, मैं बल्कि अर्जुन से पहले आया हुआ हूँ। इसलिये आपको अपने पक्ष में पाने का मेरा पहले अधिकार है।" कृष्ण हँसे। अर्जुन को स्नेह की दृष्टि से देखते हुए बोले—"कौरवराज, मैं महावीर अर्जुन से वचन-बद्ध हो चुका हूँ, इसलिये आपका पक्ष अब न ग्रहण कर सकूँगा, और

करता भी तो मुझसे आपकी उद्देश-सिद्धि न होती, क्योंकि मैं कौरव और पांडव दोनों को समदृष्टि से देखता हूँ, इसलिये भारत-युद्ध में मैं अस्त्र ग्रहण न करूँगा; वीरवर अर्जुन ने आमन्त्रित किया है, इसलिये उनके साथ रहूँगा, बस। आप पहले आए हैं, इसलिये मैं आपको उसी रूप से संवर्धित करूँगा, युद्ध करनेवाली मेरी नारायणी सेना है, मैं वह सेना आपकी बल-पुष्टि के लिये देता हूँ, इस तरह आपका उद्देश सफल होगा। दुर्योधन यही चाहता था। नारायणी सेना पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

माद्री के भाई, पांडवों के मामा, राजा शल्य दूत से महाभारत-समर की सूचना पाकर अपनी समस्त सेना लेकर पांडवों के पक्ष-समर्थन के लिये चले। दुर्योधन को यह खबर मिली, तो वह चतुर कार्यकर्ताओं को लेकर शल्य के मार्ग में पहुँचा और सेना के ठहरने के लिये जगह-जगह बड़ा ही अच्छा प्रबंध करवाया। कूप, सरोवर, फुलवाड़ी आदि जहाँ-जहाँ थे, वहीं-वहीं पड़ाव का मुकाम बनवाया, अच्छे-अच्छे खीमे लगवा दिए, रसद सब प्रकार की एकत्र कर दी, भोजन, पान और प्रमोद आदि की भी सुव्यवस्था कर दी, जिससे राजा शल्य को किसी प्रकार का मार्ग-श्रम न हो, बल्कि वह अपनी राजधानी से भी अधिक सुख का अनुभव करें। ऐसा ही हुआ। राजा शल्य सब प्रकार के आराम और शांति से मार्ग पार करते हुए कई पड़ाव ठहर चुके। सुप्रबंध देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गए। बार-बार युधिष्ठिर की और आराम के स्थानों की रचना करनेवाले शिल्पियों की प्रशंसा करते रहे। दुर्योधन साथ छिपा हुआ चल रहा था। उसे यह संवाद मिलता जाता था। एक दिन राजा शल्य ने कहा—"जिस शिल्पी ने ऐसी मनोरम रचना की है, हम उसे पुरस्कार देना चाहते हैं, महाराज युधिष्ठिर को इससे बुरा न मानना चाहिए, उस शिल्पी को हमारे सामने लाकर हाज़िर करो।" यह खबर भी दुर्योधन के पास गई। वह बहुत प्रसन्न हुआ, और समय जानकर मामा शल्य के सामने बड़े विनय-भाव से आकर खड़ा हुआ। दुर्योधन को देखकर शल्य आश्चर्य में पड़ गए, ससंभ्रम भानजे को पास बैठाते हुए आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने मर्यादा-पूर्ण कंठ से कहा—"मामा, आपने उस शिल्पी को पुरस्कृत करने के लिये याद किया है, जिसने आपके श्रमापनोदन के लिये ऐसी सामग्री की रचना की है?—वह इस रचना का विधायक मैं ही हूँ। मेरे लिये जैसी आज्ञा हो।" शल्य समस्त

गए। यथार्थ वीर की तरह प्रसन्न होकर बोले—"वत्स, माँगो, मैं तुम्हारी प्रार्थना पूरी करूँगा।" दुर्योधन ने कहा—"तो यह वरदान दीजिए कि आपके साथ आपकी समस्त सेना का सहयोग भारत-समर के लिये मुझे प्राप्त हो।" 'तथास्तु' कहकर शल्य ने दुर्योधन को समादृत किया। प्रसन्न होकर दुर्योधन चला आया। पश्चात् पांडवों से शल्य का साक्षात् हुआ। पांडवों ने अपनी स्वाभाविक विनम्रता से मामा का स्वागत किया और ठहराने का प्रयत्न करने लगे। शल्य ने युधिष्ठिर को प्रबोध देते हुए कहा—"वत्स युधिष्ठिर, हमारे साथ छल हो गया है। हम तुम्हारी ही सहायता को चले थे, परंतु मार्ग में दुर्योधन ने हमारे ठहरने का प्रबंध करा रक्खा था; हम समझते आते थे—यह सब तुम्हारा किया हुआ है। अंत में उस मनोहर रचना के दक्ष शिल्पी को पुरस्कार देने के लिये हमने बुलवाया, तो कौरव-पति दुर्योधन हमसे आकर मिले और यह पुरस्कार माँग लिया कि हम अपनी समस्त सेना के साथ कौरव-पक्ष की मदद करें।" बेचारे पांडव मन-ही-मन श्रीकृष्ण का स्मरण कर रह गए। कौरवों को मिली हुई सहायता इस समय भी उनकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। इस पर शल्य की सेना भी सम्मिलित होने जा रही थी। धर्मराज युधिष्ठिर इस पर कुछ कह न सके। शल्य के चलते समय इतना ही कहा—"मामा, कर्ण से अर्जुन का युद्ध होने पर बहुत संभव है, आपके सारथ्य की आवश्यकता हो। कारण, श्रीकृष्ण-जैसा कुशल सारथि उस ओर कोई नहीं, और आप देश-भर में इस कला के लिये प्रसिद्ध हैं; उस समय कर्ण का उत्साह तोड़े रहिए, आपसे इतनी ही प्रार्थना है। युधिष्ठिर का निवेदन स्वीकार कर राजा शल्य कौरवों के शिविर की ओर चले।

श्रीकृष्ण द्वारकापुरी से पांडवों के यहाँ आए, और बातचीत से मालूम किया कि राजा द्रुपद ने संधि के प्रस्ताव से अपना पुरोहित हस्तिनापुर में भेजा था, वह यह संवाद लेकर लौटा है कि बिना युद्ध के आधे राज्य की बात तो दूर है, सुई के अग्रभाग के इतनी जमीन भी दुर्योधन पांडवों को न देगा।

इस पर कृष्ण पांडवों से मंत्रणा करने लगे कि वास्तव में आगे क्या करना उचित होगा। पांडव, खासकर महाराज युधिष्ठिर, स्वभाव के विनम्र थे; युद्ध द्वारा वंश-नाश हो, यह उनका अभिप्राय न था। अर्जुन की अजित शिक्षा के कारण यद्यपि यह विश्वास था कि वह युद्ध में कौरवों को परास्त कर

सकते हैं, फिर भी भीष्म और द्रोण आदि के समक्ष अस्त्र ग्रहण करते उन्हें लज्जा होती थी । भीम भीतर से तो युद्ध चाहते थे, पर बाहर से महाराज युधिष्ठिर का अदब करते थे । नकुल और सहदेव की अपनी कोई राय न थी । वे अपने बड़े भाइयों की आज्ञा के अनुसार चलना चाहते थे । फलतः श्रीकृष्ण से महाराज युधिष्ठिर की जो बातचीत हुई, उसमें संधि की व्यंजना प्रधान रही, और आधे राज्य की जगह यह स्थिर हुआ कि दुर्योधन पांडवों को रहने-भर के लिये पांच गाँव दे दे । संधि का यह संदेश ले जाना श्रीकृष्ण ने स्वीकार किया, भीतर से यद्यपि जानते थे कि कौरवों की मनोवृत्ति के अनुसार युद्ध होना अनिवार्य है ।

पांडवों से मिलकर कृष्ण द्रौपदी से मिलने गए । कृष्णा ने कृष्ण का बड़ा आदर किया । हाथ पकड़ स्नेह से आसन पर बैठाकर जल-पान कराया, और दासी के बदले स्वयं खड़ी वायु-व्यंजन करती रही । कृष्ण को जल-पान करा, पान खिला, रुक्मिणी, सत्यभामा और प्रद्युम्न आदि की बातें पूछने लगी । कृष्ण एक-एक कर सबके कुशल-समाचार कहते गए । इसके बाद आवेग में भरकर कृष्णा बोली—"तुम्हें आमंत्रित करने के लिये तीसरे पांडव गए थे, महाभारत-युद्ध होनेवाला है—तुमने सुना होगा ।" कृष्ण ने कहा—"लेकिन, महाराज युधिष्ठिर की इच्छा संधि की है; भीमार्जुन उनसे सहमत हैं, कम-से-कम लेकर वे संधि कर लेंगे । हकवाली कोई बात नहीं, वे भाइयों से युद्ध नहीं चाहते । हमें संधि का प्रस्ताव लेकर जानेवाला दूत बनाया है ।" द्रौपदी का वह भाव बदल गया, कमल पर जैसे तुषार पड़ा । बोली—"केशव, क्या तुम्हारी भी यही इच्छा है ? मेरे अपमान की तुम्हें याद नहीं रही ?" इसके बाद अपने खुले हुए लंबे-लंबे बालों का एक गुच्छा पकड़कर कृष्ण को दिखाती हुई बोली—"इनकी वेणी अभी नहीं बँधी मधुपति !" कहते-कहते द्रौपदी के नील नयनों से आँसू बहने लगे । कृष्ण स्थिर होकर बोले—"कृष्णे, धैर्य धरो, दुर्योधन संधि का प्रस्ताव स्वीकृत न करेगा, युद्ध अनिवार्य है, एक तो स्वभाव से ही वह मंद है, पुनः राजमद, इस पर कर्ण और शकुनि-जैसे उसके मंत्रणादाता, वह कदापि भाइयों के लिये त्याग स्वीकार न करेगा, तुम्हारी मनोवांछा पूरी होगी ।" कृष्णा विश्वास की दृष्टि से प्रिय कृष्ण को देखती रही । कृष्ण बाहर आए, और सात्यकि को लेकर [illegible] चले ।

श्रीकृष्ण के आने की खबर से लोगों मे बड़ा उत्साह फैला। हस्तिनापुर की प्रजा हृदय से पाडवो के पक्ष मे थी। वह युद्ध नहीं चाहती थी। वह भी पांडवों के विरुद्ध, जो अपना सर्वस्व भी देकर उसकी रक्षा के लिये तत्पर रहते थे। प्रजा को यह आभास हुआ कि कृष्ण के आने से उनका भला ही होगा। परतु जब उसने यह सुना कि कृष्ण पांडवों की तरफ से सधि का प्रस्ताव लेकर आए हैं, तब उसकी खुशी की हद हो गई, और वह अपनी-अपनी टोली ने समवेत होकर श्रीकृष्ण के स्वागत के लिये चली। धृतराष्ट्र और दुर्योधन को जब यह खबर हुई, तब पहले वे आगमन का कारण नही समझ सके, सोचा, दुर्योधन मिलने गए थे, इसलिये प्रसन्न होकर कृष्ण भी आए हुए हैं। खातिरदारी मे उन्हें अपनी तरफ करने की लालसा लेकर महाराज धृतराष्ट्र भी दुर्योधन-दुःशासन आदि पुत्रो तथा परिषद-वर्ग के साथ कृष्ण का स्वागत करने चले। इस तरह महासमारोह-पूर्वक कृष्ण की अभ्यर्थना हुई। नगर-प्रवेश कर, अत्यंत आग्रह किए जाने पर भी वह कौरवों के यहां नही ठहरे, विदुर के यहां गए, और वहां महारानी कुंती के दर्शन किए। युद्ध के सबध में विदुर और कुती से अनेक प्रकार की बातें कीं। कृष्ण को जैसा विश्वास था कि संधि का प्रस्ताव दुर्योधन की तरफ़ से नामंजूर किया जायगा, फिर भी लोगों में पाडवों की सच्ची मनोवृत्ति का परिचय कराने के लिये वह आए हुए हैं, जिससे प्रजा का हृदय पांडवों के साथ रहे, विदुर और कुती से कहा। फिर एकांत में कुती को समझाया कि वह कर्ण को उसका परिचय बता दें, और प्रयत्न करें, जिससे पांडवों के पक्ष में आ जाय। मगर कर्ण ने दुर्योधन का साथ न छोड़ा, तो पांडवों के लिये मुश्किल होगी। महावीर कर्ण समस्त शक्ति के रहते परास्त नहीं किया जा सकता। इसलिये अभी उचित यह होगा कि दुर्योधन का पक्ष न छोड़ने पर, कुंती मातृऋण से कर्ण को वर लेकर मुक्त करे। पहला वर यह है कि अर्जुन के सिवा अपने किसी दूसरे भाई पर वह मरणास्त्र का प्रयोग न करे।

दूसरे दिन कौरवों की सभा में कृष्ण पधारे। इस समय तक कौरवों को यह बात मालूम हो चुकी थी कि कृष्ण पांडवों की तरफ़ से संधि की शर्तें

लेकर आए है। कौरव इतने लोभी हो गए थे कि भाइयों को बिस्वा-भर भूमि भी गुजारे के लिये नहीं देना चाहते थे। पर कृष्ण बड़े प्रभावशाली पुरुष थे। यद्यपि कृष्ण ने अस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की है, फिर भी बुद्धि के प्रयोग से वह बड़े-बड़े अस्त्रधारियों को मात देंगे, यह सोचकर दुर्योधन-प्रमुख कौरवों के पक्षवाले बहुत घबराए, और यह निश्चय किया कि महाभारत-समर तक कृष्ण को बांधकर क़ैद रक्खा जाय। इस विचार का निश्चय कर पूरी तैयारी से कौरवगण सभा में पधारे थे। इसी समय अविचल, मंद गति से कृष्ण सभा में गए। मुख पर अपूर्व प्रकाश था। देखकर मंद-बुद्धि कौरव अपने ही स्वभाव के हल्केपन से उठकर खड़े हो गए, और उत्तम आसन पर कृष्ण को बैठाया। सभा में महावीर भीष्म, धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप, कर्ण, शकुनि, दु:शासन आदि धार्मिक-अधार्मिक कौरवों के पक्ष के सभी योद्धा, परिषद्-वर्ग और प्रजाजन एकत्र थे।

कृष्ण ने कहना शुरू किया—"कौरव और पांडव दोनों उच्च कुल में पैदा हुए क्षत्रिय और हमारे मित्र हैं। एक ज़रा-सी बात के लिये आपस में लड़कर नष्ट हो जायँ, यह उनके किसी भी हितैषी को अभिप्रेत न होगा। इससे क्षत्रियों की समस्त शक्ति नष्ट हो जायगी, और देश में धर्म, शास्त्र, ऋषि और द्विजों की रक्षा का कार्य बंद हो जायगा, जिससे अत्याचार और अनार्यत्व की वृद्धि होगी। हमारी सनातन संस्कृति विलुप्त हो जायगी। यह युद्ध किसी प्रकार भी समीचीन नहीं। फिर पांडव पूर्ण रूप से निर्दोष हैं। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया, और वनवास तथा अज्ञातवास का घोर कष्ट सहन कर लौटे। महाराज युधिष्ठिर को धोखे में डालकर उनसे जुआ खेलाया गया। उनकी प्रकृति जुआ खेलने की नहीं। जुए में उनका हारना छल-पूर्ण है। जुआ कपट से भरा हुआ था। पहली बात तो यह कि महाराज युधिष्ठिर का दुर्योधन के आश्रित शकुनि के साथ जुआ खेलना हो ही नहीं सकता, न राजा के साथ मुकुट-विहीन दुर्योधन जुआ खेल सकते थे। अगर खेला भी गया, तो उनका राज्य जीतनेवाले शकुनि के अधिकार में रहना चाहिए था, ऐसा नहीं हुआ, उस अधिकार पर दुर्योधन मुकुट पहनकर, राजा बनकर बैठे। दुर्योधन की तरफ से शकुनि का भी खेलना न्याय-पूर्ण नहीं था, क्योंकि दुर्योधन राजा नहीं थे। इससे स्पष्ट है कि जुआ अन्याय-पूर्ण हुआ, और कभी जुआ न खेलनेवाले महाराज युधिष्ठिर ने केवल

भाई दुर्योधन को मर्यादित करने के लिये, न खेलने के कारण प्रदर्शन में होता हुआ अपमान बचाने के लिये ही जुआ खेला। उनकी महत्ता की इतनी ही हद नही। जो कुछ उनसे कहा गया, वह दांव पर रखते गए। इसके बाद वनवास, अज्ञातवास की शर्तें रक्खी गईं, उन्होंने दुर्योधन का मुँह देख-कर यह सब भी मंजूर करते, रखते और हारते गए। अपने साथ, भाइयों और द्रौपदी तक को दांव पर रखनेवाले धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने एक भाई को क्या समझाया, यह उस भाई की समझ मे चाहे न आए, पर भारत-जन इसे समझते है, और भी समझेंगे। किन्तु उस भाई का पद-पद पर क्या रूप रहा ?—अपने ही घर की महिला, महारानी द्रौपदी, को भरी सभा में केश कर्षण-पूर्वक पकड़वा मँगाकर विवस्त्रा करने तक की धृष्टता की। वन में वैसे भाइयो का वैभव दिखाकर चिढ़ाने गया। अन्त में कुल महिलाओं के साथ बांधा गया, और उन्ही पाडवो ने—उन्ही अपमानित भाइयो ने उसकी रक्षा की। एक ओर पाडव-वधू द्रौपदी के प्रति हुआ दुर्योधन-दुःशासनादि कौरवों का व्यवहार देखिए, दूसरी ओर गंधर्व चित्ररथ के द्वारा बँधी कौरव-कुलांगनाओ के प्रति युधिष्ठिर-भीमार्जुनादि पाडवो का व्यवहार देखिए। और भी अनेकानेक उत्पात पाडवों के प्रति दुर्योधन ने किए-कराए। विराट के गोधन चुराने का उद्देश्य स्पष्ट है कि पांडवो का अज्ञात-वास मालूम हो जाय, और वे फिर वन का मार्ग ग्रहण करें। इधर महा-राज युधिष्ठिर का ऐसा व्यवहार कि सुरासुरजयी महावीर अर्जुन-जैसे भाई के रहते हुए भी बार-बार युद्ध से विरत रहने का विवेचन कर रहे है, व्यर्थ के लिये प्रजा-नाश और धन-हानि नही चाहते, अपने पूरे अधिकार की जगह आधा लेकर ही शांति-पूर्वक रहना चाहते हैं।"

कृष्ण के इतना कहने के साथ सभा मे 'महाराज युधिष्ठिर की जय हो', की बार-बार प्रजाओं के कंठ से आवाजें उठने लगीं। दुर्योधन का कृष्ण की बातों से ही धैर्य छूट चुका था। अब वह एक बार जैसे पागल हो गया। "बांधो इसे, यह पाडवों का स्तावक चाटुकार है।" कहकर चिल्ला उठा। एक साथ पाश लिए हुए दुःशासन-प्रमुख कुछ कौरव आगे बढ़े। सभा मे खलबली मच गई। वैसे ही दो-एक यदुवर कृष्ण की रक्षा के लिये तलवार खींचकर सामने आ गए। महावीर भीष्म क्रोध से कांपते हुए खड़े हो गए, और निर्बुद्धि पामर कौरवों को डांटा। कृष्ण का मुख-मंडल उस समय अपूर्व

प्रभा विकीर्ण कर रहा था। सभा में जैसे दूसरे सूर्य का उदय हुआ हो, देखकर कौरव त्रस्त रह गए।

महाराज धृतराष्ट्र को यह जान पड़ा, जैसे दुर्योधन का नाश समुपस्थित हो गया हो। पुत्र-स्नेह से घबराए, बोले—"केशव, हम तो यही चाहते हैं कि ये दोनों भाई आपस में समझौता कर लें। लड़ाई-झगड़े से हानि के सिवा लाभ की क्या संभावना है? पांडव कोई दूसरे तो हैं नहीं, पर दुर्योधन को न-जाने क्या सूझा है?"

दुर्योधन गर्व से बोला—"आपके आँखें होतीं, तो देखते। यह सब चक्रान्त है, मुझे नीचा दिखाने के लिये। कृष्ण की अभी जितनी ये बातें हुईं, सब पांडवों की तारीफ में, मेरी निंदा से प्रजा को प्रभावित करने के लिये, उसे पांडवों के पक्ष में लाने के लिये हुईं। यह दूत का कार्य नहीं है। कृष्ण ने यह नहीं कहा कि राज्य का यथार्थ अधिकारी दुर्योधन है, क्योंकि ज्येष्ठ उसके पिता हैं, पांडु नहीं। पांडु इसलिये राजा हुए थे कि उनके बड़े भाई अंधे थे। पर बड़े भाई के लड़के तो अंधे नहीं; फिर राज्य उनका न होकर युधिष्ठिर का कैसे हो जायगा? पुनः युधिष्ठिर अपना राज्य हार चुके हैं; अब समझौते की कौन-सी बात रह जाती है? कृष्ण को दूसरे वैसा नहीं समझते, जैसा हम लोग। न्याय से जो राज्य नहीं मिल सकता, उसे अन्याय-पूर्वक लेने का ठान पांडवों ने ही ठाना है। युद्ध की तैयारियाँ उन्हीं की तरफ से पहले होनी शुरू हुई हैं। हम लोग आत्मरक्षा करनेवाले हैं। यह सब कृत्य पांडवों से कौन करा रहा है?—कृष्ण। यहाँ कृष्ण की जबान से लोगों को मालूम हो चुका होगा कि ऐंठ के साथ पांडवों के अधिकार के लिये कृष्ण लड़ने आए हैं। मैं राज्य भी दूँ, और सिर भी झुकाऊँ!—यह कदापि नहीं हो सकता।"

'साधु, साधु, महाराज दुर्योधन!' कर्ण ने दुर्योधन को प्रोत्साहित किया। शकुनि आँखों से मुस्किराकर सभा को देखते रहे, भानजे की विजय का गर्व लिए हुए। दुःशासन ने बड़ी तत्परता से दुर्योधन को पान दिया।

कृष्ण कुछ देर तक चुप रहे, फिर मंद स्वर से बोले—"महाराज युधिष्ठिर ने यह भी कहा है कि यदि हमारा आधा हिस्सा दुर्योधन नहीं देना चाहते, तो जीवन-यापन के लिये हम पाँच भाइयों को केवल पाँच ग्राम दें, तो भी हम युद्ध से विरत होंगे।"

यह भी एक हेकड़ी है, दुर्योधन ने कहा—"युद्ध में जैसे खुद-बखुद उन्हीं की विजय हो रही हो। पुनः प्रार्थी युधिष्ठिर हैं, न कि कृष्ण। हमारी द्यूत-क्रीडा की तो बड़ी-बड़ी आलोचना कृष्ण ने कर डाली, पर इस माँग के मामले में न बतलाया कि प्रार्थी युधिष्ठिर क्यों नहीं आए, कृष्ण को क्यों भेजा ?"

"धन्यवाद, महाराज दुर्योधन ! खूब कही" कहकर कर्ण अट्टहास हँसने लगे।

कृष्ण से न रहा गया, बोले—"दुर्योधन, तू इतना मददृप्त है कि तेरी समझ में सीधी तौर से बातें नहीं आतीं। बड़े भाई को प्रार्थी बनाकर सामने खड़ा करते तुझे लज्जा न आई।—महामूर्ख ! क्षमास्वरूप, साक्षात् धर्म, महाराज युधिष्ठिर तेरे पैर भी पड़ सकते हैं, पर जब कोई निःस्वार्थ भाव होगा। जब उनके स्वार्थ की बात उठती है, तब अपने उसी गुण के कारण वह मेरे-जैसे सेवक प्राप्त करते हैं।"

'धन्य कृष्ण, धन्य माधव।' कहकर महामति भीष्म भावमग्न हो गए।

कृष्ण कहते गए—"तेरा नाश समुपस्थित है। तू नहीं समझ सकता, तपस्या और शिक्षा की शक्ति से पांडव क्या हैं, महावीर अर्जुन क्या हो गए हैं, कीचक-जरासंध, विजयी महामल्ल भीम कितने प्रबल और भयंकर हैं। तेरी सेना पांडवों की शरांग्नि में भस्म हो जायगी। तू पराजित होकर पश्चात्ताप करता हुआ प्राण देगा।" कहकर कृष्ण विद्युद्वेग से सभा से बाहर निकल गए।

☆ कर्ण और कुंती

कृष्ण के कहने के बाद से कर्ण के विषय में सोचकर कुंती बहुत व्याकुल हुईं। उनके कुमारीपन में पैदा होने पर भी कर्ण उनका वैसा ही पुत्र है, जैसे युधिष्ठिर और भीमार्जुन। उसी मंत्र-शक्ति से कर्ण की उत्पत्ति है, जिससे इन लड़कों की; केवल देवता भिन्न हैं। भगवान् सूर्य के औरस से पैदा हुआ कर्ण यदि दुर्योधन के पक्ष में रहा, तो यह निस्संदेह पांडवों के लिये चिंता की बात होगी। पुनः यह एक ही माँ के बेटों का परस्पर

विरोधी पक्ष में रहकर युद्ध करना होगा। कुंती बहुत घबराईं। फिर कर्ण को परिचय देकर अपने पुत्रों के पक्ष में करने का विचार लेकर मिलने चली। पहले एकांत में मिलने का पता लगवाया, मालूम हुआ कि कर्ण रोज यमुना-स्नान और सूर्य-प्रणाम करते हैं। उनसे बातचीत करने का वह उत्तम समय है।

यथास्थान कुंती कर्ण से मिलीं। कर्ण ने सूर्य-नमस्कार कर देखा, एक दूसरी दिव्य छटा पांडवों की माता कुंती की आँखों से निकल रही है। ऐसा

प्रकाश किसी देवी-स्वरूपा नारी की आँखों से उन्होंने न देखा था। ऐसे प्रकाश की उन्हें जीवन में पहचान नहीं हुई। कुछ देर तक कर्ण उन आँखों की ओर देखते रहे। उनकी आत्मा में एक अननुभूत आनंद का प्रवाह बहता रहा। तृप्त होकर बोले—"पांडव-माता कुंती देवी को ऐसे समय देखकर मैं कृतार्थ हुआ। यहाँ आने का आपने क्यों कष्ट उठाया, आज्ञा करें?"

कुंती की आँखों में आंसू आ गए। बोलीं—"वत्स कर्ण ! ऐसा समय आया है, इसलिये मैं तुम्हारे पास आई हूँ।"

कर्ण हँसे। बोले—"भारत-समर की बात सुनी होगी। पुत्रों की प्राण-भिक्षा के लिये आई हुई है आप, मैं समझा।"

"नहीं वत्स," कुंती बोलीं—"मैं पांडवों की प्राण-भिक्षा के लिये नहीं आई। पांडवों के वीरत्व का परिचय तुम प्राप्त कर चुके हो। मैं भाई को भाइयों से युद्ध करने से रोकने के लिये आई हूँ।"

बात कर्ण की समझ में नहीं आई। बोले—"इसके लिये आपको महाराज दुर्योधन के यहाँ जाना चाहिए। यह मैं कैसे रोक सकता हूँ ?"

"तुम नहीं समझे, वत्स !" कुंती बोलीं—"यह समर तुम्हीं रोक सकते हो। तुम नहीं जानते, तुम सूत-पुत्र नहीं, कुंती-पुत्र हो।"

कर्ण ताज्जुब की निगाह से कुंती को देखते हुए बोले—"मैं कुंती-पुत्र हूँ, तो परित्यक्त कैसे हुआ ?"

"वत्स," कुंती बोलीं—उनके मुख पर वह पहला कुमारीत्व चमक उठा—"जब मैं कुमारी थी, पिता भोजराज महाराज के यहाँ ऋषि दुर्वासा आए हुए थे। मैंने उनकी बड़ी सेवा की। ऋषि ने प्रसन्न होकर मुझे एक सिद्ध मंत्र दिया। कहा, इसे पढ़कर तुम जिस देवता का स्मरण करोगी, वह तुम्हारे पास आएगा, और तुम्हें वर-स्वरूप एक पुत्र देगा। तब मैं कुमारी तरुणी थी, स्वभाव चपल था। एक दिन आजमाने के लिये मैंने मंत्र पढ़कर सूर्यदेव का स्मरण किया। सूर्य मेरे पास आकर खड़े हुए। मैं उस तरुण पुरुष-रूप को देखकर लज्जित हुई। सूर्यदेव ने मुझे आश्वासन दिया, कहा, ऋषि का मंत्र झूठा नहीं, तुम्हारे एक पुत्र होगा, पर तुम्हारा कुमारीत्व इससे नष्ट न होगा। कहकर सूर्यदेव चले गए। समय पर तुम भूमिष्ठ हुए। लज्जा तथा संकोच से तुम्हें पिटारी में लेकर मैं नदी में छोड़ आई। इस सत्य की तुम अपने पिता से परीक्षा लो; मैं वर देती हूँ, वह तुम्हें दर्शन देकर सत्य प्रकट करेंगे।"

कर्ण ने आँखें बंद कीं, और हाथ जोड़कर सूर्य को नमस्कार किया। कुछ देर बाद कुंती को देखते हुए बोले—"हाँ माता, आप सत्य कहती हैं। मुझे आज अपना यथार्थ परिचय मालूम हुआ।" कर्ण ने फिर भूमिष्ठ होकर माता को प्रणाम किया।

आशीर्वाद देकर कुंती बोली—"वत्स कर्ण ! तुम भाइयों से युद्ध न करो। तुम सबसे बड़े हो। मैं युद्ध के पश्चात् राज्य मिलने पर तुम्हारा परिचय दूंगी। तब धर्म-पुत्र युधिष्ठिर तुम्हें ही अपनी जगह पर स्थापित करेंगे।"

"माता !" कर्ण ने कहा—"कर्ण दूसरी प्रकृति का मनुष्य है। वह भविष्य की तरफ नहीं देखता। अपना कर्तव्य अतीत को देखकर वर्तमान से मिलाता है। दुर्योधन ने उसे उस समय राजा बनाया था, जब सूत-पुत्र कहकर भरी सभा में उसका अपमान किया गया था। बराबर उसे मित्र मानकर अपनी बगल में बैठने की जगह देता रहा। अब वैसे मित्र पर विपत्ति पड़ने पर क्या उस सूत-पुत्र का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह कुंती-पुत्र कहकर अपना परिचय देता हुआ उससे अलग हो जाय, और पांडवों का साथ दे ?"

कुंती चुपचाप सुनती रही। कर्ण ने कहा—"माता ! आपका, यहां भी पांडु-पुत्रों पर प्यार अधिक है। आपकी समस्त बातें स्वार्थ से भरी हुई हैं। आप जाइए, आपकी आज्ञा-पालन में मैं असमर्थ हूं।"

"कर्ण", कुंती ने कहा—"मैंने तुम्हें जन्म दिया है। शास्त्रानुसार माता के प्रति तुम्हारा एक ऋण है। क्या तुम यह ऋण चुकाना चाहते हो ?"

"चाहता हूं, यदि दूसरा प्रबलतर धर्म बाधक न हुआ।"

तो प्रतिज्ञा करो कि अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी पांडव के साथ पूर्ण शक्ति से न लड़ोगे, मृत्यु-अस्त्र का प्रयोग न करोगे, बोल सकते हो।"

कर्ण हंसे। कहा—"यहां किधर आपका स्नेह अधिक है ? मैं मातृ-ऋण चुकाने के लिये आपसे प्रतिज्ञा करता हूं कि अर्जुन के सिवा किसी दूसरे पांडव को प्रतिभट समझकर न लड़ूंगा।"

कुंती प्रसन्न तथा उदास होकर बिदा हुईं। महावीर कर्ण ने माता को प्रणाम किया।

संधि न होने के बाद

कृष्ण संधि से निराश होकर पाडवों के शिविर में लौट आए। दुर्योधन का उत्तर सुनकर भीमसेन और अर्जुन आदि पाडव-पक्ष के योद्धा जोश में आ

गए। समर का निश्चय हो गया। सेनापतियों से युद्ध-संवाद समस्त सेना में प्रचारित हो गया। वीरों की बाँहें फड़क उठीं। पांडवों के पक्ष की कुल सात अक्षौहिणी सेना थी, जिसके सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, विराट, श्वेत, शिखंडी, चेकितान आदि सेनापति थे। सब लोग युद्ध के लिये पूरे उत्साह से तैयारी करने लगे।

दुर्योधन के दल में भी शिथिलता न थी। संख्या में ये लोग पांडवों से अधिक थे। इनकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। सरदार भी पांडवों के पक्ष से अधिक थे। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृतवर्मा भूरिश्रवा, बाह्लीक, शकुनि और भगदत्त आदि अनेक महारथी थे।

फिर भी अर्जुन की प्रगल्भता और कृष्ण की बुद्धि की याद कर दुर्योधन बहुत व्याकुल हुआ। रात्रि के समय अपने मित्रों से युद्ध के संबंध में बात-चीत करने लगा कि समस्त सेना का अधिनायक किसे बनाया जाय। महावीर भीष्म की तरफ अधिक लोकमत हुआ। कर्ण ने कहा—"मित्र, जब तक पितामह युद्ध-क्षेत्र में रहेंगे, मैं अस्त्र धारण न करूँगा। क्योंकि इनके अधीन रहना मैं अपना अपमान समझता हूँ।"

दुर्योधन ने कर्ण की प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। समझाया भी कि वृद्ध पितामह का अपमान अन्य समस्त वीरों को सह्य न होगा, पितामह भारत-सम्मान्य सर्वश्रेष्ठ वीर हैं, यद्यपि दुर्योधन कर्ण को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। कर्ण सगर्व स्थिर हुए। दुर्योधन महावीर भीष्म के यहाँ प्रधान सेनापतित्व का मुकुट लिवाकर चला। भीष्म ने बड़े स्नेह से दुर्योधन तथा समागत अन्य कौरव और सेनापतियों को बैठाया। दुर्योधन पितामह से विनय-पूर्वक अपना अभिप्राय कह चले। कथन समाप्त होने पर पितामह ने कहा—"वत्स, हम सेनापतित्व के लिये तैयार हैं, परंतु हमारी दृष्टि में तुम और पांडव दोनों हमारे वंशधर और प्रिय पौत्र हो, माता सत्यवती से हम प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि इस वंश को कोई क्षति मेरे द्वारा न पहुँचेगी; अतः पांडवों की जीवन-हानि हम न कर सकेंगे। यों प्रतिदिन तुम्हारी प्रीति के लिये सहस्र योद्धाओं का वध करेंगे।

इसी समय भगवान् व्यास धृतराष्ट्र से मिलने हस्तिनापुर आए। युद्ध की तैयारियाँ देखकर बहुत क्षुब्ध हुए। परंतु प्रबल भावी को समझकर चुप हो रहे। धृतराष्ट्र ने व्यासजी की चरण-धूलि ले, आसन पर बैठाकर,

कहा—"भगवन्, मैं अंध हूँ, यह जातीय महासंहार देखने से बच रहा; फिर भी वीरों की वीरता सुनने की बड़ी इच्छा है; मृत्यु के समय अपने वंश की वीरता की ही याद करके मरूँगा। आप कोई ऐसा वर कृपा करके दें, जिससे होते हुए युद्ध का वर्णन मैं यहीं बैठा हुआ सुनूं।" भगवान् व्यास ने कहा—'वत्स, मै तुम्हे ऐसा ही वर देता हूँ। सजय को मेरे योगबल से दिव्य दृष्टि होगी। वह यहाँ बैठे हुए समस्त युद्ध देखेगे, और तुमसे वर्णन करेंगे।" यह कहकर परमात्मा का स्मरण करते हुए महाकवि, महर्षि व्यास वहाँ से चले।

प्रात काल कौरव और पाडवो की सेनाएँ सेनापतियो के रचित व्यूह के अनुसार खडी हो गईं—जैसे समुद्र पर मालाकार उठी हुई अगणित तरगें हो। कौरवो की तरफ सामने महावीर भीष्म प्रधान सेनापति, पाडवो की तरफ महावीर अर्जुन, दोनो ओर सेनाओ मे अपार शांति विराजती हुई, सेनाएँ निश्चेष्टचित सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा करती हुई। भगवान् कृष्ण चपल अश्वो की रश्मि पकडे, महाभाव में निःस्पंद महावीर पवन-पुत्र ;दिघोष पर बैठे हुए, पताका फहराती हुई।

भीष्मपर्व

★ भीष्म का युद्ध

महावीर अर्जुन, व्यूह में खड़ी पाडव-सेना के अग्रभाग में, नदिघोष-रथ पर बैठे हुए विशाल कौरव-वाहिनी को देखते रहे। हृदय में किंचिन्मात्र भय न हुआ। फिर भी युद्धवाला उत्साह न रहा। देखा, महारथ

भीष्म-पितामह, कौरव-वाहिनी के प्रधान नायक, अग्रभाग में स्थित हैं। उनके विशाल स्वर्ण-रथ के पार्श्व में रथी दुःशासन है। कुछ दूर पर मुक्ताओं की झालरदार मणि और लालों से जड़े सुंदर रथ पर कौरव-राज दुर्योधन

हैं--पास आचार्य द्रोण और अश्वत्थामा। एक-एक करके अर्जुन ने सभी कौरवों और आमन्त्रित संबंधियों को देखा। साथ-साथ यह विचार पैदा हुआ कि ये सब अपने ही भाई और कुटुंब हैं। युद्ध इन्हीं के साथ है। युद्ध का परिणाम मृत्यु है। अपने जनों की मृत्यु! जिस राज्य के लिये यह युद्ध हो रहा है, वह भाइयों की मृत्यु से प्राप्त होगा। ऐसे राज्य को लेकर क्या होगा? यह राज्य तो वास्तव में तब तक श्मशान हो जायगा। महावीर पार्थ इस परिणाम पर काँप उठे। स्वजनों की मृत्यु से स्त्रियाँ विधवा होंगी, व्यभिचार बढ़ेगा। वर्णसंकर पैदा होंगे। पितरों के तर्पण--श्राद्धादि लुप्त होंगे। दोनों लोक भ्रष्ट होंगे। अधर्म फैलेगा। फिर, युद्ध अधर्म का परिणाम होगा। ऐसा कदापि उचित नहीं। यह विचार करते ही महावीर पार्थ का उत्साह जाता रहा। स्नेह से दुर्बलता, दुर्बलता से हृत्कप, हृत्कप से भय, स्वेद, नैराश्य, निर्वीर्यता आदि जारी हो गए। गांडीव हाथ से छूटकर गिरने को हुआ। ऐसे समय कृष्ण ने उनकी ओर देखा। उन्हें मोह की स्थिति में देखकर कृष्ण को आश्चर्य हुआ। ऐन मौके पर ऐसे शिथिल क्यों पड़े, पूछने पर अर्जुन ने युद्ध से होनेवाले परिणाम की तस्वीर खींचते हुए कहा, ऐसा युद्ध करना अधर्म है, इसी चिंता से मैं दुर्बल पड़ गया हूँ। भगवान् कृष्ण ने उन्हें उनका धर्म समझाया और गीतोपदेश किया। कर्मयोग की महत्ता के साथ धर्म की सूक्ष्म बातों का ज्ञान हो जाने पर भी अर्जुन का मोह दूर न हुआ, तब श्रीकृष्ण ने कहा--"अर्जुन, तुम धाता नहीं हो, निमित्त हो, तुम्हारा किया कुछ न होगा। होनी पहले हो चुकी है, तुम्हें केवल अपने क्षात्रधर्म के अनुसार चलना, और इस युद्ध से यशस्वी होना है। अधर्म के कारण कौरवों का नाश हो चुका है। युद्ध उसी का निमित्त है। तुम्हें विश्वास न हो, तो देखो।" भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को विश्व-रूप दिखाया। वह विराट् रूप देखकर अर्जुन काँपने लगे। देखा--"जैसे जलती हुई एक विशाल लौ की ओर, चारों ओर से कीड़े आते और समाते हुए भस्म होते रहते हैं, उसी तरह समस्त कौरव हो रहे हैं, कृष्ण के मुख में उसी तरह समा रहे हैं, जैसे सैकड़ों--हजारों--लाखों नद-नदियों का प्रवाह।" अर्जुन को होश हुआ, और भगवान् कृष्ण की उन्होंने स्तुति की। श्रीकृष्ण का यह कहना कि आत्मा अमर है, इसके लिये शोक करना उचित नहीं, अर्जुन अच्छी तरह समझे; और भगवान् में कर्म-फल का विसर्जन कर, आसन्न युद्ध को धर्म

समझकर गांडीव धारण किया। मित्र की स्फूर्ति देखकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए।

युद्ध का प्रारंभ देखकर धर्म-पुत्र युधिष्ठिर से न रहा गया। वह आवेश में आकर, रथ से उतर कौरव-वाहिनी की ओर पैदल चले, जिधर भीष्म-पितामह का महारथ शोभित था। महाराज युधिष्ठिर की यह मनोगति देखकर पांडवगण चंचल हो उठे। अपने-अपने रथ से उतरकर धर्मराज का पश्चाद्वर्तन करने लगे। भीम को, शत्रुओं के सम्मुख इस प्रकार नत होते, बड़ी लज्जा लगी, और वह हृदय से बहुत आहत हुए। अर्जुन को भी धर्मराज का यह आचरण अच्छा न लगा। उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को पुकारकर कहा भी—"महाराज, इस प्रकार, आसन्न युद्ध के समय, खाली हाथ और पैदल आप शत्रुओं के बीच जा रहे हैं!" भीमसेन ने कहा—"महाराज, आप हमें लज्जित कर रहे हैं।" नकुल और सहदेव ने कहा—"महाराज, आप हमें छोड़ते हुए कहाँ जा रहे हैं?" धीर धर्म-पुत्र ने किसी को कोई उत्तर न दिया। सीधे भीष्म के रथ की ओर चलते गए। श्रीकृष्ण ने पांडवों से कहा—"आप लोग कुछ देर प्रतीक्षा कीजिए, धर्मराज युद्ध में भी धर्म की बड़ाई देने जा रहे हैं, गुरुजनों को प्रणाम करने के उद्देश्य से।"

युधिष्ठिर को आते हुए देखकर कौरवों में भी तरह-तरह की कपोल-कल्पनाएँ चलने लगीं। किसी ने कहा—"युधिष्ठिर पहले से डरपोक है। हमारी सेना देखकर घबराया है।" किसी ने कहा—"हाँ, इसीलिये भीष्म के सामने जा रहा है, जान बख्शवाने की मोहलत दीजिए, तो हम लोग फिर वन चले जायँ।" किसी ने कहा—"बड़ा चालाक है। पितामह को मिलाने जा रहा है। जानता है, पितामह की बराबरी का शूर कोई है नहीं, लोहे के चने होंगी लड़ाई थोड़ी देर में—कहीं अर्जुन ही काम न आ जाय, इसीलिये कहने जा रहा है कि कृपादृष्टि रक्खें।"

महाराज युधिष्ठिर पितामह भीष्म के रथ के सामने आए। तैयार चतुरंगिनी सेना के बीच में पैठकर निरस्त्र धर्मराज ने पितामह भीष्म के पैर पकड़ लिए। नाती की मनोवृत्ति से प्रसन्न होकर महामति भीष्म ने आशीर्वाद दिया—"वत्स! तुम्हारी जय हो। माता योजनगंधा के पास हम पहले से प्रतिश्रुत हैं कि राजा का पक्ष लेंगे। इसलिये इधर ही से हमें युद्ध करना होगा। परंतु तुम निश्चिंत रहो, धर्म की शक्ति अजेय है, और अर्जुन शक्ति-संचय में हमसे भी आगे बढ़ गया है। हमारी इच्छा मृत्यु है, हम

समय पर ही प्राण त्याग करेंगे, तुम्हें इसके बाद आने का समय प्राप्त होगा, आना, तब हम तुम्हें धर्मोपदेश करेंगे। चिंता न करो, तुम्हारे सहायक कृष्ण है, विजय तुम्हारी ही होगी।" धर्मराज वहाँ से आचार्य द्रोण के पास गए, और वहाँ से कृपाचार्य के पास। ब्राह्मणों ने भी युधिष्ठिर को विजय का आशीर्वाद दिया। गुरुजनों को प्रणाम कर युधिष्ठिर कौरव-वाहिनी के बाहर आए। इनकी धर्मनीति देखकर, धृतराष्ट्र के औरस और वेश्या के गर्भ से पैदा हुआ युयुत्सु कौरवों की सेना से निकलकर पांडवों में आ मिला। उसे हृदय से लगाते हुए युधिष्ठिर ने कहा—"भाई, तुम दादाजी के धार्मिक पुत्र हो। समय पर तुम्हीं उनके काम आओगे।"

युद्ध की भेरी बजी। दोनों ओर के सेनापतियों ने शंख बजाकर अपनी-अपनी सेना को सजग किया। हर मौके के सेनापति, रथी, गजारोही, सवार और पैदल शूर-सामंत सामने देखने लगे। महावीर पार्थ पांचजन्य फूंककर अपनी सेना को कौरव-वाहिनी के आक्रमण से होशियार करके एक दृष्टि से महावीर भीष्म की गति-विधि देखने लगे। दुःशासन के साथ, भीष्म के सामने बढ़ते ही, महाबल भीष्म ने सिंहनाद किया, और दुःशासन को रोका। अर्जुन बाजू से भीष्म पर आक्रमण करने लगे। भीष्म किनारे से ही अर्जुन के तीर काटते हुए दुःशासन की सहायता करते रहे। भीम बहुत दिनों से युद्ध, समय की प्रतीक्षा में थे। एकाएक सिंह विक्रम से शत्रु पर टूटे। उस प्रलय के तूफान का वेग दुःशासन के लिये सँभालना दुष्कर होता, अगर महारथ भीष्म सहायता न करते होते। भीष्म की क्षिप्रता देखने लायक थी। एक ओर महावीर अर्जुन के अव्यर्थ प्रखर तीरों को काटते थे, दूसरी ओर मुहु-र्मुहु दुःशासन पर होते हुए भीम के प्रहारों को रोककर उसे बचाते थे। यह जैसे दुर्धर्ष भीमार्जुन के साथ अकेले भीष्म का समर था। महासमुद्र की उठती तरंगों की तरह दुर्जय पांडव-सेना सुदृढ़ कौरव-सैन्य-तट को बार-बार तोड़ने का उद्यम कर रही थी, साथ भीम प्रभंजन का काम करते हुए, सेना को सिंहनादों से प्रोत्साहित कर-कर, भीष्म बढ़ते हुए। देखते-देखते दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरी से भिड़ गईं। हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़ा, पैदल से पैदल। घमासान समर होने लगा। धनुषों का टंकार, हाथियों की चिग्घाड़, घोड़ों की टाप और हिनहिनाहट, रथों का घड़ानाद, वीरों का सिंहनाद और रथियों की शंख-ध्वनि चारों ओर छा गई; साथ ही

ऐसी गर्द उठी कि सामने लडने के सिवा सेना को अपने-पराए का ज्ञान न रहा। दोनों ओर काफ़ी सेना काम आ गई। भीष्म से अर्जुन, दुर्योधन से भीम, मद्रराज से युधिष्ठिर। भगदत्त से विराट और कृतकर्मा से सात्यकि लड रहे थे। युद्ध का तीसरा पहर आने को हुआ। पांडव प्रबल ही पड़ते गए। देखकर भीष्म ने सारथि को रथ बढ़ाने के लिये कहा, दु शासन और रथी सहायकों को अर्जुन को रोकने के लिये कहकर।

भीष्म का रथ चक्कर काटने लगा। अर्जुन मतलब समझ गए। भीष्म का पीछा करना चाहते थे, पर कई रथी उन्हे रोके हुए थे। भीष्म ने देखा, पांडवों के व्यूह के एक भाग की सेना बढकर दूसरे भाग की सहायता कर रही है, इसलिये यह भाग कमज़ोर है। सिर्फ़ अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु इस भाग की रक्षा कर रहा है, थोडी-सी सेना लिए हुए। भीष्म ने उसी भाग पर आक्रमण किया। सुभद्रा कुमार अभिमन्यु पिता के समान वीर था। उसने महारथ भीष्म की गति रोकी। दोनों में बाण-वर्षा होने लगी। अभिमन्यु भीष्म से भी अधिक क्षिप्रहस्त था। उसने देखते-देखते भीष्म का धनुष काट दिया, और कई तीर मारे। दूसरा धनुष लेकर भीष्म ने अभिमन्यु के सारथि को घायल कर दिया। उत्तेजित अभिमन्यु ने तत्क्षण भीष्म के विशाल रथ के ध्वज-दंड काट दिए, जिनमे बहुमूल्य रत्नाभूषण लगे हुए थे। सेनापति की पताकाओं के गिरते रथ दूर से न पहचाना जाने लगा, इससे कौरव-दल में हाहाकार मच गया। कई रथी बढकर भीष्म को खोजते हुए पहुँचे, और एक साथ अभिमन्यु पर प्रहार करने लगे। इस समय तक अभिमन्यु के प्रहारों से वृद्ध पितामह अत्यंत उत्तेजित हो गए थे, बालक की क्षिप्रता असह्य हो रही थी। अभिमन्यु को कई रथियों से घिरा देखकर पाडव-सेना ने पुकार की; पास के रथी सहायता के लिये बढ़े। अभिमन्यु कौरवों के सभी रथियों से लड़ रहा था, यथावश्यक दोनो हाथों शर-संधान करता हुआ। भीष्म आश्चर्य-चकित थे, इतनी तेजी उन्होंने अर्जुन मे भी न देखी थी। पहलेपहल अभिमन्यु को लड़ते देखा था।

अब तक दस रथी अभिमन्यु की सहायता के लिये आ गए, भीम, उत्तर-कुमार आदि। विराट-पुत्र उत्तर को उधर से बढकर शल्य ने रोका। दोनो में युद्ध होने लगा। उत्तर हाथी पर था। शल्य का तीर लगते ही हाथी बिगड़ गया, और शल्य के घोड़ों को मार डाला। शल्य को इस पर क्रोध आ गया,

और बैठे-ही-बैठे उन्होंने एक ऐसी शक्ति मारी कि वह उत्तर के वर्म को पार करके हृदय में समा गई, वहीं, उसी वक्त, उत्तरकुमार काम आ गए। फिर शल्य ने उत्तर के हाथी को भी मार डाला, और कृतवर्मा के रथ पर जाकर बैठे। इस घटना से पांडव-सेना स्तंभित और शोकाकुल होकर अन्यमनस्क हुई कि भीष्म ने बहुत-सी सेना का संहार कर डाला। बड़े वेग से कौरवों की सेना ने विपक्ष पर आक्रमण किया। पांडव-सेना व्यूह छोड़कर हटने और कटने लगी। सन्ध्या हो रही थी। समय जानकर अर्जुन ने युद्ध बंद करने का शंख बजाया। उधर भीष्म ने भी शंख-ध्वनि से युद्ध-समाप्ति की सूचना दी। लड़ाई बंद हो गई। दोनों पक्ष की सेनाएँ शिविर को लौटीं। प्रिय संबंधी की मृत्यु से पांडव विषण्ण हो रहे थे।

कौरवों में बड़ी खुशी थी। दुर्योधन फूला न समा रहा था। युद्ध में विजय पाने की उसकी आशा बद्धमूल हो चली। वह अपने भाइयों के साथ सुरापान करके आनंद मनाने लगा, और बार-बार पितामह भीष्म के युद्ध-कौशल की प्रशंसा करने कि किस तरह वह शत्रु-सेना-विनाश का मौका देखते फिर रहे थे। किस तरह एक बाजू से उन्होंने अभिमन्यु पर आक्रमण किया। किस-किस तरह फिर क्या-क्या हुआ। कुछ लोग शल्य की प्रशंसा के पुल बाँधने लगे कि मामा पूरे मामा हैं—हाथी से मजाक किया, जब उसने इनके घोड़े मार दिए, तब इन्होंने उसके मालिक को मार गिराया, और फिर उसको भी उसी रास्ते भेज दिया, मजा यह कि यह सब बिना घोड़ों के रथ पर बैठे-बैठे किया, काम समाप्त कर इतमीनान से उठकर दूसरे रथ पर गए। पांडव संतप्त थे। सेना में भय। युधिष्ठिर हताश। भीम और अर्जुन स्थिर। विराट अत्यंत शोकाकुल। युधिष्ठिर ने कृष्ण से विनय-पूर्वक कहा—"यादवपति! आज के युद्ध को देखकर मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है कि पितामह अजेय हैं। उनके सामने हमारे पक्ष का कोई महारथी नहीं टिक सकता। आज पिछले पहर उनका अपूर्व युद्ध-कौशल देखकर यह अनुमान सच मालूम देता है कि युद्ध में हमारी ही हार होगी। और, हमारे सगे-संबंधी इस प्रकार युद्ध में हत होते रहे, तो राज-पाट लेकर हम क्या करेंगे? ऐसे राज्य से अपने प्रियजनों के प्राण और सुख-स्वाच्छन्द्य अधिक मूल्य के हैं। ऐसे राज्य से वन श्रेयस्कर है। अब इस युद्ध की आवश्यकता नहीं।" धर्मराज के आँसू निकल आए। कृष्ण गंभीर

होकर बोले—"महाराज, क्षत्रिय के लिये युद्ध में निधन शोचनीय घटना नहीं हो सकती। ऐसा शोक कापुरुषता का द्योतक है। उत्तर को वीर गति से स्वर्ग प्राप्त हुआ है। इस युद्ध का अर्थ केवल युद्ध नहीं, धर्म-राज्य की स्थापना है। पांडवों और पांडव-पक्षवालों के लिये ऐसे युद्ध में प्राण खोना चिंताजनक बात नहीं हो सकती। रही जय की बात। यह निर्विवाद है कि पांडवों का धर्मपक्ष है, इसलिये हार की आशंका धर्म से नहीं। गणना से, भीमार्जुन के समकक्ष योद्धा कौरवों में नहीं, इसके अनेक प्रमाण अब तक प्राप्त हो चुके हैं। सेनापति धृष्टद्युम्न और सात्यकि कौरवों के किसी भी महारथ से सरकदा हैं। पुन: एक दिन में ऐसे युद्ध के भविष्य का निर्णय नहीं हो सकता। आप पीछे हटेंगे, तो यह आपका धर्म से डिगना होगा, यह कदापि आपका कर्तव्य नहीं कहा जा सकता। आप धैर्य से देखते चलिए। यदि यह भाव रखिएगा, तो आपकी सेना का दिल और बैठ जायगा, और इसका परिणाम अधिक सेना-नाश के सिवा और कुछ न होगा। कृष्ण के कथन का धृष्टद्युम्न ने समर्थन किया। महाराज विराट को भी सांत्वना मिली, और बदले के लिये वह बद्ध परिकर हुए।

रात्रि प्रभात हुई। दूसरे दिन के युद्ध के लिये व्यूह-रचना होने लगी। भीम और अर्जुन हतोत्साह सेना को आश्वासन और स्नेह-शौर्य से उभाड़ने लगे। सूर्य के उगने से पहले दोनो तरफ की सेनाएँ अपने-अपने व्यूह में, सेनापति की आज्ञा के अनुसार, सन्निविष्ट हो गईं, और, युद्ध के लिये आदेश की बाट जोहने लगीं। आज अर्जुन की ओर ही दृष्टि थी। भीम से उनका निश्चय हो गया था कि वह पितामह की गति को रोकेंगे, और भीम शत्रु-पक्ष में पैठकर सेना-संहार करेंगे, सात्यकि भीम के सहायक होंगे। इसके अनुसार सामने अर्जुन का विशाल नंदिघोष-रथ था, जिसकी ध्वजाएँ प्रभात की वायु से मंद-मंद लहराती हुई, अपनी सेना को बढ़ने के इंगित से उत्साहित कर रही थीं। दाहने भीम, कुछ पीछे सात्यकि, बाएँ धृष्टद्युम्न, पीछे सुभद्रा-नंदन अभिमन्यु। इन रथियों के पीछे श्वेतच्छत्र रथ पर महाराज युधिष्ठिर। दोनो ओर चतुरंगिनी सेना का व्यूह-निवेश रच गया। हाथी, घोड़े, रथी और पदातिकों की शृंखला-से-शृंखला मिल गई। सूर्योदय हुआ। भीष्म और धृष्टद्युम्न ने शंख-ध्वनि से युद्ध की सूचना दी।

अर्जुन के रथ की ओर रथ बढ़ाने के लिये भीष्म ने सारथि से कहा।

दोनो पक्ष के अच्छे-अच्छे योद्धा भीष्म और अर्जुन के कौशल देखने के लिये, अपने-अपने दल की सहायता के विचार से, एकत्र हो गए। भीष्म और अर्जुन में घनघोर युद्ध छिड़ गया।

इसी समय भीम कौरवों की सेना मे पैठे, और एक ओर से सहार करने लगे। उनकी गदा के प्रहार से बड़े-बड़े हाथियो के मस्तक कुभ की तरह फूटने लगे। एक-एक वार मे कितने ही पैदल काम आने लगे। पूरा एक पक्ष कमजोर पड़ गया। रथ, घोड़े, हाथी और पैदल अपने दूसरे पक्ष की ओर भागने लगे। इस समय भीष्म की उस तरफ़ निगाह गई। भीम को सेना-नाश करते हुए देखकर उन्होने उधर रथ बढाने की आज्ञा दी। कौरवो के दूसरे रथियों ने बढ़कर अर्जुन को रोका।

भीष्म ने पहुँचते ही भीम के पार्श्व-रक्षको के घोड़ो को मार डाला। देखकर सात्यकि ने ऐसा तीर मारा कि भीष्म का सारथि गिर गया। सारथि के मरने से घोड़े भड़ककर रथ लेकर भग चले। भीम सारथि के रथ पर आकर बैठे। भीष्म के अदृश्य होने पर कौरवों में हाहाकार मच गया। सध्या का समय था। अर्जुन और द्रोण ने शंख बजाकर युद्ध बंद किया।

तीसरे दिन फिर युद्ध का प्रारभ हुआ, पर पांडवों के सामने कौरवो की न चली। इस दिन भी कौरवों की सेना को बड़ी क्षति पहुँची।

यद्यपि भीष्म कम सेना-ससार नही करते थे, फिर भी, अधैर्य के कारण दुर्योधन को मालूम देता था कि पांडव प्रबल पड़ रहे हैं, और ऐसा क्रम रहा, तो कौरवों की हार होगी। ग्लानि से भरकर रात्रि के समय वह भीष्म के शिविर में गया, और उदास होकर कहने लगा—"पितामह, पाडव युद्ध मे जैसा पराक्रम दिखा रहे हैं, उससे हमारी सेना को अधिक क्षति पहुँच रही है। आप पांडवों पर स्नेह करते हैं, इसलिये जी लगाकर नहीं लड़ते। आप दिल से पांडवो की विजय चाहते हैं।"

महावीर भीष्म क्षुब्ध हो उठे। बोले—"दुर्योधन, तुम से पहले ही हमने कह दिया था कि पांडव अजेय हैं। तुम एक दिन के क्रुद्ध सेना-नाश से इतना घबराए, पर पाडव विपत्ति-पर-विपत्ति का सामना करते आए, ज़रा भी विचलित न हुए; उन्होंने अपार धैर्य प्राप्त किया है। साथ ही शिक्षा भी ग्रहण की है। फिर भी तुम इतने चिंतित न हो; मैं तुम्हारे लिये यथा-साध्य प्रयत्न करूँगा।"

प्रातःकाल फिर सेना निवेश होने लगा। महावीर भीष्म ने एक नए व्यूह की रचना की, और असम साहस से विपक्ष से लड़ने लगे। उनका सामना करना दुस्साध्य हो गया। प्रखर तीर प्रबल वेग से निक्षिप्त होकर सर्पों की तरह पांडवों को दंशन करने लगे। देखते-देखते पांडवों की वाहिनी भगने लगी। बड़े-बड़े रथी भीष्म के सामने न टिकने लगे। पांडव-दल में हाहाकार मच गया। महावीर अर्जुन भी इसका कुछ प्रतिकार न कर सके। देखकर श्रीकृष्ण से न रहा गया। बढ़ावा देते हुए बोले—"पार्थ, तुम क्या देखते हो? तुम्हारे सामने तुम्हारी सेना की यह दशा हो रही है, और तुम तस्वीर की तरह बैठे हुए भीष्म की यह दक्षता देख रहे हो? अगर ऐसा ही इसका जवाब तुमने नहीं दिया, तो सेना का अनर्थकारी संहार होगा। जिस तरह हो, भीष्म को रोको।" श्रीकृष्ण की उत्तेजना-पूर्ण बातों से अर्जुन जैसे होश में आए। अब तक भीष्म का जैसे अपार समर-कौशल देखते रहे थे, गांडीव से कठोर टंकार कर तीक्ष्ण शर योजित किए। पितामह की हस्तलाघवता के आगे पार्थ जैसे अपनी क्षिप्रता भूल गए थे। देखते-देखते विशाल गांडीव से लक्ष्यसिद्ध महास्त्र अर्जुन के तीक्ष्णतर तीर छूट-छूटकर भीष्म को चंचल करने लगे। पांडवों में नया जोश लहराने लगा। अन्यान्य रथी अर्जुन की पार्श्व-रक्षा के लिये बढ़ आए। कौरव हतबुद्धि होकर पार्थ का शरक्षेप देखने लगे। भीष्म के सहस्र प्रयत्न करने पर भी अर्जुन ने संध्या होते-होते कौरवों की विशाल सेना का नाश कर डाला। अंत में भगवान् भुवनभास्कर के अस्त होने पर दोनों तरफ के सेनापतियों ने शंखनाद करके उस दिन का समर समाप्त किया।

संजय को व्यासजी की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। वह घर बैठे महाभारत-युद्ध का महाराज धृतराष्ट्र से वर्णन करते थे। उत्तरोत्तर कौरवों की हार हो रही थी। सुनते-सुनते महाराज धृतराष्ट्र एक दिन क्षुब्ध हो उठे। कहा—"संजय, तुम यह क्या कह रहे हो? पांडव क्या लोहे के हैं और कौरव मोम के, जो युद्ध के जग-से ताप से पिघल-पिघलकर बहे जा रहे हैं? कौरवों की सेना में भीष्म-द्रोण-कृप-अश्वत्थामा-जैसे विश्वविजयी वीर हैं, कौरवों की सैन्य संख्या भी पांडवों से ज्यादा है, फिर भी कौरव प्रतिदिन हारते जा रहे हैं, कहते हो; जरूर तुम पांडवों का पक्षपात करते हो।"

"नहीं महाराज," संयत स्वर से संजय ने उत्तर दिया—"पांडव तपस्वी होने के कारण बलवान् पड़ते हैं, उनकी तरफ धर्म की शक्ति है।"

अस्तु, महाभारत-युद्ध में क्रमशः सात दिन पूरे हो गए। आज आठवें दिन का युद्ध है। दोनों दलों के सेनापति अपनी-अपनी सेना को सन्निविष्ट करने लगे। दोनों तरफ़ से तुमुल-कोलाहल और सिंहनाद पर सिंहनाद उठने लगे। इसी समय अर्जुन की दूसरी पत्नी उलूपी से पैदा हुआ महारथ पुत्र इरावान पिता के पक्ष में सम्मिलित होने के लिये आ पहुँचा, और एक पार्श्व से कौरवों पर आक्रमण करने लगा। कौरवों के लिये इरावान का आक्रमण सँभालना मुश्किल हो गया। सेना व्यूह छोड़-छोड़कर भगने लगी। चारों ओर हाहाकार उठने लगा। सहायता के लिये पास के रथी दौड़े। शकुनि की सेना निकट थी। इरावान को रोकने के लिये बढ़ी। पर उलूपी-पुत्र की कठोर मारों से उसके भी पैर उखड़ गए। पीछे गांधार थे। आगे बढ़े, और इरावान को घेरकर भीषण युद्ध करने लगे। इरावान का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। शत्रु-पक्ष को ज़ोर मारते देखकर इरावान क्रुद्ध हुआ, और दूने उत्साह से सैन्य संचालन करता हुआ युद्ध करने लगा। गांधार भी इस बार का आक्रमण न सँभाल सके। कितने कट-कटकर खेत रहे; बाकी मैदान छोड़कर भग खड़े हुए। शकुनि कौरवों की सहायता से किसी तरह बचकर भगे। समस्त कौरव-दल में त्रास फैल गया। इसी समय दुर्योधन ने भीम से मारे गए बक के पुत्र राक्षस *आर्ष्यशृंग को इरावान से लड़ने* के लिये भेजा। राक्षस ने सोचा, सम्मुख-समर ठीक नहीं, क्योंकि इरावान बलवान् है, इससे माया-समर करना चाहिए। यह सोचकर वह आकाश-मार्ग से युद्ध करने लगा। यह माया इरावान को भी आती थी। वह भी आकाश-मार्ग पर पहुँचा, और उसी कौशल से राक्षस से लड़ने लगा। यह संवाद अब तक पाण्डवों के पास पहुँचा, वे लोग इरावन को सहायता भेजने की बात सोचने लगे। इस समय राक्षस ने सम्मोहन विद्या से इरावान को मोहित करके उसके प्राण ले लिए।

इसी समय भाई की सहायता के लिये भीमसेन का पुत्र घटोत्कच भेजा गया। इरावान का प्राणांत हो गया है, देखकर उसे अपार क्रोध आया, और कौरवों की सेना का संहार करने लगा। बड़े-बड़े वीर राक्षसों की सेना ने प्रलय की बाढ़ की तरह चारों ओर से कौरवों को घेर लिया। महाराज

दुर्योधन बीच में पड़ गए। घटोत्कच की राक्षस-सेना का बड़ी वीरता से उन्होंने मुकाबला किया, लेकिन राक्षसों की मार के सामने उनके पैर न टिके! उधर क्रोध मे आकर घटोत्कच ने उन पर शक्ति-प्रहार किया, वग-नरेश महाराज दुर्योधन के पास ही थे। उन्होने उस शक्ति से दुर्योधन को बचा लिया, वार अपने ऊपर लिया, इससे उनके प्राण गए। राजा को राक्षसो से घिरा देखकर भीष्म और द्रोण ने सहायता की, तब दुर्योधन के प्राण बचे।

इरावान की मृत्यु से अर्जुन क्षुब्ध हो उठे, और बड़ी तत्परता से कौरवों का मुकाबला करने लगे। उनके प्रहृत, प्रखर तीरो से हजारो की संख्या मे कौरव-सेना धराशायी हुई। कौरवो के होश उड गए। दुर्योधन के अभी-अभी प्राण बचे थे, वह एक सुरक्षित स्थान से महावीर अर्जुन को भीषण बाण-वर्षा त्रस्त दृष्टि से देख रहे थे। अर्जुन का वह भयकर मुख और आरत नेत्र देखकर दुर्योधन विजय को आशा छोडकर कौरवो के जीवन के लिये सशय करने लगे। इस समय भीष्म अर्जुन के सामने आए, लेकिन क्रुद्ध पार्थ के सामने आज उनकी भी न चली, देखते-देखते अर्जुन ने कौरवों की फिर भी काफी सेना मार दी। इस समय सूर्यास्त हो रहा था। सूर्य डूबने के साथ भीष्म ने शंख बजाकर युद्ध बद होने की सूचना दी। कौरवों के प्राण बचे। दोनो पक्ष शिविर की ओर लौटे।

दुर्योधन आज का दृश्य देखकर बेचैन हो रहा था। शिविर पहुँचते ही वह कर्ण के पास गया, और दुःखित होकर युद्ध के परिणाम पर कहने लगा—पांडव प्रबल पड़ रहे हैं, कौरवों की अधिक सेना मारी जा रही है, यह सुनकर कर्ण ने आश्वासन दिया कि भीष्म का निपात होते ही उनके दिव्य शरों के प्रहार से पांडवों का प्राणांत अवश्य होगा। इस प्रकार मित्र को ढाढस दे, रात्रि अधिक हुई कहकर विदा किया।

लेकिन दुर्योधन को विश्राम न भाया। वहाँ से कुछ ही दूर पितामह भीष्म का शिविर था। खिन्न-चित्त दुर्योधन पितामह के पास पहुँचा, और स्वार्थ-वश विनम्रता-पूर्वक प्रणाम कर बोला—"पितामह, आप संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं। आपका विक्रम देवताओं को भी आतंक-ग्रस्त कर देता है। परन्तु मैं देखता हूँ, आप जी लगाकर इस कुरुक्षेत्र के युद्ध में नहीं लड़ रहे। आपकी पांडवों पर प्रीति है। इससे उनका संहार नहीं होता; बल्कि

फल प्रतिदिन उल्टा हो रहा है। अर्जुन हजारों और लाखों की संख्या में कौरव-सेना का नाश कर डालता है, परंतु आप इसका प्रतिकार नहीं करते। अगर पांडवों का भीतर-ही-भीतर पक्ष-समर्थन ही आपका उद्देश है, तो आप आज्ञा दीजिए, सेनापतित्व कर्ण को दिया जाय। अपनी सेना का इस प्रकार सहार देखकर मैं बहुत ही विचलित हो गया हूँ।"

पितामह भीष्म स्वार्थी दुर्योधन की बातें सुनकर मन मे समझ गए कि दुर्योधन में धैर्य नहीं है, इसलिये वह क्षुब्ध हो उठा है। शान्त स्वर से बोले—"वत्स, तुम जैसे मित्रों मे पड़े हो, तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है। योद्धा तब तक धैर्य के साथ युद्ध करता है, जब तक युद्ध का फल सामने नहीं आता। इस युद्ध में पाडव-सेना का कम सहार नहीं हुआ। परतु तुम्हारी

तरह पांडव अधीर नज़र नही आते। वे प्रतिदिन जिस धैर्य से युद्ध करते हैं, तुम देखते ही हो, पाडवों ने जो सहन-शक्ति अर्जित की है, उसका संसार मे जोड़ नही। वे उदार भी है। तुम्हे इसका भी परिचय वे वनवास के समय दे चुके है। रही वात कर्ण के सेनापतित्व की, सो उनकी वीरता विराट-नगर में तुम प्रत्यक्ष कर चुके हो। जाओ, विश्राम करो। कल के समर मे हम पांडवों की भयंकर स्थिति कर देंगे।"

दूसरे दिन उपःकाल दोनो की सेनाएँ वर्म, चर्म, असि, गदादि अस्त्र-शस्त्र धारण कर समर-क्षेत्र में खडी हुई। भीष्म ने सर्वतोय-व्यूह और अर्जुन ने अर्द्धचंद्र-व्यूह बनाकर अपनी-अपनी सेना को शृखलित किया। पश्चात् सेनापतियों के इगित से युद्ध का प्रारभ हुआ। महारथ अर्जुन का दुर्जय वेगी शत्रु-पक्ष न सहन कर सका। उनके अव्यर्थ तीरो ने कौरवो की सेना के पैर उखाड़ दिए। देखते-देखते एक तीर दुर्योधन के भी लगा, और वह वही मूर्च्छित हो गया। आज के युद्ध का भी विपरीत फल देखकर महावीर भीष्म अस्थिर हो गए, उनके अधर फड़कने लगे, और शरासन सँभालकर तीक्ष्णतर तीरों से उन्होंने अर्जुन पर आक्रमण करना शुरु कर दिया। वह प्रबल आक्रमण दक्ष धन्वी पार्थ सँभाल नही सके। भीष्म ने देखते-देखते रण-क्षेत्र का समस्त आकाश, अर्जुन के दोनो पार्श्व और नंदिघोष रथ का संपूर्ण पूर्व भाग शरों से समाच्छन्न कर दिया। इसके पश्चात्, तीरों की प्रखर-से-प्रखर चोटें अर्जुन को आकर विद्ध करने लगीं। उन्हें संवरण करना अर्जुन के लिये दुष्कर हो गया। तीरों मे नदिघोष इस तरह आच्छन्न हो गया कि पांडव तथा पांडव-सेना की दृष्टि मे ही न आया। पांडव-दल में हाहाकार मच गया। इधर भीष्म अपूर्व क्षिप्रता से शर-योजना और निक्षेप कर रहे थे। तीरों की चोटों मे अर्जुन घायल हो गए। कृष्ण के अंग भी जर्जर हो गए। अश्वों की गति अवरुद्ध हो गई। अर्जुन से प्रतिकार न करते बना। इसी समय भीष्म ने हज़ारो की संख्या मे पांडव-सेना का संहार कर दिया। कौरवों मे वड़ा उत्साह उमड़ा। पाडव किंकर्तव्य-विमूढ हो गए, उन्हें जैसे प्रलय दिखने लगा। कृष्ण मन में दुःखित हुए। जब अर्जुन से कुछ करते न बना, और पुनः-पुनः भीष्म पांडव-वाहिनी का नाश करने लगे, कृष्ण भी तीरों की चोट से जर्जर हो गए, तब उनसे न रहा गया। अपनी अस्त्र-ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा भूलकर आवेश मे

आकर रथ से कूद पड़े, और भीष्म के संहार के लिये सामने बढ़े। एक टूटे रथ का पहिया देख उसे उठाकर भीष्म को मारने के लिये दौड़े। कृष्ण का यह भाव देखकर, लज्जित हो, रथ से उतरकर अर्जुन भी दौड़े, और "क्या करते है आप ?"—"आप मेरा अपमान करा रहे हैं" कहते हुए कृष्ण के पैरों मे लिपट गए। भीष्म वह दिव्य मूर्ति देखकर भाव मे गद्गद होकर स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण का क्रोध शांत हुआ। वह पुनः अपने रथ पर वापस आए। सध्या-समय फिर युद्ध स्थगित किया गया।

प्रातःकाल युद्ध का नवाँ दिन था। भीष्म ने सर्वतोभद्र और युधिष्ठिर ने महाव्यूह की रचना की। सूर्य की किरण फूटने के साथ दोनो ओर के सेनापतियों ने शंख-ध्वनि द्वारा युद्ध करने की सूचना अपने-अपने पक्षवालों को दी। फिर क्या, वीरों के दर्प-पूर्ण सिंहनादों, घोड़ों की टापों और रथों की घरघराहट से पृथ्वी दहलने लगी, गजारोही, अश्वारोही, रथी और पदातिक अपने-अपने प्रतिद्वद्वी से मोर्चा लेकर डट गए। तुमुल-कोलाहल से युद्ध-क्षेत्र पूर्ण हो गया। बाएँ पक्ष में अभिमन्यु था। वीर बालक असम साहस से शत्रु-पक्ष मे पैठकर कौरव-सेना को धराशायी करने लगा। देखकर एक साथ द्रोण, कृप, अश्वत्थामा और जयद्रथ वीर बालक के सामने आकर डटे, परन्तु अभिमन्यु के एक-ही-एक वार से कोई विरथ होकर भागा, कोई चोट खाकर, कोई मूर्च्छित होकर सारथि द्वारा ले जाया गया। अभिमन्यु की अद्भुत वीरता देखकर भीष्म क्रुद्ध हुए, और सारथि से रथ बढ़ाकर अभिमन्यु के सामने करने के लिये कहा। अर्जुन बड़ी तत्परता से बढ़ रहे थे, साथ-साथ पितामह की गति-विधि का भी निरीक्षण कर रहे थे। भीष्म को अभिमन्यु की ओर बढ़ने देखकर उन्होंने भी कृष्ण से भीष्म की गति रोकने के लिये रथ बढ़ाने को कहा। फलतः अभिमन्यु तक भीष्म की पहुँच न हो सकी, वह बीच मे ही रोक लिए गए।

लेकिन महावीर भीष्म अवरुद्ध होने पर पूर्ण शक्ति से अपनी बाधा पार करने का उपक्रम करने लगे। आज अर्जुन भी पूर्ण रूप से चेतन थे। दोनों में महासमर होने लगा। अविराम वर्षा की तरह दोनो ओर से प्रखर शर-धारा प्रवाहित हो चली। दोनों पक्ष के बड़े-बड़े रथी भीष्म और अर्जुन का आश्चर्य-जनक समर-कौशल एकटक होकर देखने लगे। युद्ध समय के बाद महावीर भीष्म का वेग अर्जुन न रोक सके। उनके हाथ पिछले दिन की

तरह शिथिल हो चले। पलक मारते भीष्म अर्जुन के बाणों का जवाब देकर पांडवों की सेना का संहार करने लगे। यह क्षिप्रता देखकर अर्जुन चिंता करते हुए सोचने लगे, महावीर भीष्म से विजय पाना असंभव है। भीष्म ने उस दिन भी सहस्र-सहस्र पांडव-सेना का नाश किया। सन्ध्या-समय कौरवों के जयोल्लास से समर समाप्त हुआ। पांडव विषण्ण होकर लौटे।

रात के समय समस्त पांडव एकत्र होकर कृष्ण से मंत्रणा करने लगे। युधिष्ठिर ने कहा—"कृष्ण, अब संग्राम में विजय न होगी। पितामह भीष्म जिस उग्रता से संग्राम कर रहे हैं, इससे पांडवों की सेना का बहुत जल्द नाश जान पड़ता है।" भीम ने कहा—"अर्जुन ने बड़े-बड़े देवताओं से जो दिव्य अस्त्र प्राप्त किए हैं, उनका उपयोग न-जाने क्यों नहीं करते, नहीं तो भीष्म की भीषणता अब तक ठंडी हो गई होती।" अर्जुन ने कहा—"केशव, अब आप ही उपाय बतलाइए कि महारथ भीष्म से किस प्रकार संग्राम करके विजय प्राप्त की जाय?" कृष्ण कुछ देर तक सोचते रहकर बोले—"महाराज, भीष्म केवल महारथ ही नहीं, महामति भी हैं। मेरी राय में हम सब लोग उनके शिविर में चलें, और उन्हीं से उन पर होनेवाली विजय का उपाय पूछें।" श्रीकृष्ण की यह सलाह लोगों को बहुत पसंद आई, और सब उसी वक्त उठकर चलने को तैयार हुए।

भीष्म आराम कर रहे थे। श्रीकृष्ण और पांडव पहुँचे। श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्नता-पूर्वक भीष्म उठकर खड़े हो गए। युधिष्ठिर आदि पांडवों ने चरण-स्पर्श कर पितामह को प्रणाम किया। इसके बाद युधिष्ठिर ने नम्रता-पूर्वक कहा—"पितामह, हम पर सदा दुर्दैव के बादल छाए रहे। इस समय भी वे कटते नहीं नजर आते। कुरुक्षेत्र-युद्ध का परिणाम हमारे लिये कदापि अच्छा न होगा, कारण, आपको परास्त करना पांडवों की ही क्या, विश्व की शक्ति के बाहर है। आपके सेनापतित्व में कौरव अजेय हैं। कौरवों की विजय हुई, तो देश में धर्म और सत्य की प्रतिष्ठा जाती रहेगी। कौरव अधार्मिक हैं। हम इसलिये आपके पास आए हैं कि आप हमारे लिये क्या आज्ञा देते हैं, मालूम करें; आपके सेनापतित्व में लड़कर नाश प्राप्त करने की जगह हमारे लिये पुनः वनवास को जाना उत्तम मार्ग है।" युधिष्ठिर नम्र शब्दों में यह निवेदन कर भीष्म की आज्ञा की अपेक्षा में एकटक उन्हें देखते

रहे। धर्मराज युधिष्ठिर की ऐसी सरलोक्ति सुनकर भीष्म गद्गद हो गए। उनके आनंद के आँसू निकल आए। प्रसन्न होकर बोले—"युधिष्ठिर, तुम सत्य कहते हो। मेरे जीवित रहते सत्य की प्रतिष्ठा न हो सकेगी। मैं इच्छा-मृत्यु का वर पा चुका हूँ। कौरव-पक्ष तब तक अजेय है, जब तक मैं हूँ। परन्तु, वत्स, संसार का रहस्य देखो कि मुझे वह पक्ष ग्रहण करना पड़ा है, जो असत्य है। मेरी आँखों के सामने सत्य असमर्यादित हो, यह मेरे लिये लज्जा की बात होगी। इसीलिये मेरा मन संसार से हट चला है। पुन मैं जानता हूँ, इधर की दो रोज की लड़ाई में पांडव-पक्ष बहुत ही क्षति-ग्रस्त हुआ है, परन्तु मुझे यह सोचकर और लज्जा होती है कि शस्त्र-विद्या में अर्जुन मुझसे अधिक समर्थ होने पर भी विपत्ति के समय उसने देवताओं के दिए हुए दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं किया, बल्कि धैर्य-पूर्वक मेरी दी चोटों को सहन किया है। ऐसे संसार से, संसार के ऐसे विधान से मुझे ग्लानि हो गई है। मैं इस संसार से अब विदा होना चाहता हूँ। मेरे स्थान पर अर्जुन मेरे वंश का मुख उज्ज्वल करेगा। सुनो, मैं अपनी मृत्यु का भेद तुम्हें बतलाता हूँ। तुम्हारी सेना में द्रुपद का बेटा शिखंडी पहले का स्त्री है। मेरे वध के लिये उसने शिवजी की तपस्या की थी, उसे वर मिला है। द्रुपद के घर वह पैदा हुआ था, कन्या-रूप में, लेकिन एक दानव के वर से वह फिर पुरुष-रूप में बदल गया, परंतु पूर्ण रूप से अभी तक उसका स्त्रीत्व दूर नहीं हुआ, वह नपुंसक है। उसे देखकर मैं अस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा। यदि उसे सामने करके अर्जुन मुझ पर शरक्षेप करेगा, तो अधीर होकर नि:शस्त्र मैं प्राण छोड़ने को विवश हूँगा, पांडवों ने पितामह के पैरों पड़कर प्रणाम किया, और चलने की आज्ञा माँगी। प्रसन्न होकर भीष्म ने अपने वीर पौत्रों को आशीर्वाद दिया।

दसवें दिन का महायुद्ध शुरू हुआ। दोनों ओर की सेनाएँ पहले की तरह मैदान में आकर खड़ी हुईं। सेनापति व्यूह की रचनाएँ करने लगे। आज कौरवों के अग्रभाग में भीष्म और पाडवों के भीम थे। नकुल, सह-देव और सात्यकि उनके रक्षक। अभी तक महावीर अर्जुन का रथ अदृश्य था। भीम के आक्रमण से कौरवों में पहले कुछ हलचल हुई, लेकिन भीष्म के सामने आ जाने से जाती रही। दु:ख आनंद में बदल गया। भीष्म की सरधार बाण-वर्षा भीम नहीं रोक सके। देखते-देखते उन्होंने हजारों हाथी

घोड़े और पैदल जवानों को गिरा दिया। आज भीष्म की उग्र मूर्ति के सामने कोई क्षण-भर नहीं ठहर सकता था। बड़े-बड़े रथी और महारथी का मैदान मारा गया। भीम कुद्ध देर अड़े, लेकिन बाद को उखड़ गए, उनके सहायक भी कट-छँट गए। पांडव-दल में त्रास पैदा हो गया। सहायता की चारों ओर से पुकार उठने लगी। बिना महायक सेनापति के दल विचलित होकर भगने लगा। महाराज युधिष्ठिर घबराए। ऐसे समय शिखंडी पितामह के सामने आकर डटा। शिखंडी को देखकर उन्होंने अस्त्र परित्याग कर दिया। शिखंडी उन पर तीर चलाने लगा। पर महावीर भीष्म को चोट लगने की तो बात क्या, शिखंडी के उन तीरों से उनका वर्म भी न बिंधा। वे मुँह फेरे हँसते रहे। इसी रथ पर पीछे अर्जुन बैठे थे। कृष्ण ने कहा—"पार्थ, तुम तीर मारो। शिखंडी के तीर भीष्म का वर्म-भेद नहीं कर पा रहे।"

"कृष्ण," अर्जुन ने कहा—"यह बहुत बड़ा अन्याय है। क्षत्रिय के लिये कायरता है। मैं शिखंडी के पीछे रहकर निरस्त्र भीष्म पर कैसे बाण-वर्षा करूँ?"

"सशस्त्र भीष्म को कोई शक्ति पराजित नहीं कर सकती, पार्थ," कृष्ण ने कहा—"भीष्म स्वयं ऐसा करने के लिये कह चुके हैं। तुम उनकी आज्ञा पालन करो। सब समय एक धर्म, एक ही प्रकार काम नहीं देता। यह समझौता भीष्म से नहीं, कौरवों से है। भीष्म ने जब कौरवों का पक्ष लिया, तब समझना चाहिए कि उन्होंने अन्याय को प्रश्रय दिया। क्योंकि द्रौपदी पर राजसभा में जो अन्याय हुआ है, वह भीष्म भली भाँति जानते हैं। विराट के यहाँ भीष्म भी गए थे गऊ चुराने। लेकिन इस अधर्म को भीष्म ने अधर्म नहीं, धर्म माना है; क्योंकि वह राजा की आज्ञा समझकर मानते आए हैं, वह अपनी विमाता सत्यवती से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि राजसिंहासन की रक्षा करेंगे। उनके वंश में कोई राजा हो, उसकी रक्षा ही भीष्म का धर्म है। इसलिये तुम भी अपना धर्म पालन करो—भीष्म को मारो।"

सुनकर क्रुद्ध अर्जुन ने गांडीव में तीक्ष्ण शर की योजना करके, मारने लगे। तीर वर्म भेदकर पितामह के जीर्ण शरीर में चुभ गया। वह समझ गए, यह शिखंडी का नहीं, उन्हीं के महारथ नाती का तीर है। इस प्रकार तीर पर तीर बिद्ध होते हुए भीष्म को जर्जर करने लगे। अभी तक दोनो

ओर युद्ध हो रहा था, इसलिये भीष्म की दशा की तरफ किसी पक्ष का ध्यान न था। जब भीष्म का शरीर तिल-तिल विद्ध हो गया, तब वह बैठे न रह सके। रथ से लुढ़ककर पृथ्वी पर आ गए, और चुभे तीरों के कारण उन्ही पर रह गए, मिट्टी में उनकी पीठ न लगी।

भीष्म के गिरते ही दोनों दलों में हाहाकार मच गया, लड़ाई बंद हो गई। दोनों पक्ष के बड़े-बड़े सेनापति भीष्म को देखने के लिये रथ, हाथी, घोडा छोड़कर पैदल दौड़ पड़े। चारो ओर से कौरव-पांडव और राजा-महाराजा घेरकर खड़े हो गए। दुर्योधन को जान पड़ा, अब कौरवों का अंत आ गया। युधिष्ठिर भी शोक से उद्विग्न खड़े थे।

भीष्म ने कहा— "सिर लटक रहा है, इसके लिये उपाय होना चाहिए।"

महाराज दुर्योधन तकिया लेने के लिये दौड़े, और एक क़ीमती तकिया मँगाकर भीष्म के पास आए।

भीष्म ने अर्जुन की तरफ देखा, अर्जुन ने तीन तीर संधान कर सिर के नीचे ऐसे मारे कि वे आधार बन गए।

फिर भीष्म ने कहा—"प्यास लगी है।"

दुर्योधन ने स्वर्ण-पात्र में शीतल जल मँगाकर हाज़िर किया। भीष्म

ने फिर अर्जुन की तरफ़ देखा। अर्जुन ने तीर सधान कर पृथ्वी पर मारा। शीतल, निर्मल जल-धारा फूटकर भीष्म के मुँह में गिरने लगी।

पानी पीकर भीष्म ने दोनो पक्षवालों को जाने की आज्ञा दी, और कहा, सूर्य के उत्तरायण में आने पर वह प्राण छोड़ेंगे।

द्रोणपर्व

☆ द्रोण का सेनापतित्व

पितामह भीष्म की शर-शय्या के बाद महावीर कर्ण प्राचीन वैर भूलकर भीष्म से मिलने गए। उस समय दूसरा कोई वहां न था। कर्ण ने हाथ जोड़कर पितामह को प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर भीष्म ने कर्ण को समझाया—"यह अवश्यभावी युद्ध तुमसे रुक भी सकता है, और आगे बढ़ भी सकता है। दुर्योधन को यह विश्वास है कि तुम्हारी सहायता से वह पांडवों पर विजय प्राप्त करेगा, लेकिन तुम जानते हो, अर्जुन को परास्त करना दोनों पक्ष में किसी के लिये सहज नहीं। यह ठीक है कि तुम बाण-विद्या में अर्जुन से कम नहीं; लेकिन अधिक हो, ऐसा प्रमाण तो तुम अभी तक नहीं दे सके, न चित्ररथ गंधर्व से युद्ध होते समय, न विराट के यहां। फिर अकारण यह युद्ध क्यों मोल ले रहे हो? तुम अगर इनकार करो या समझाओ, तो दुर्योधन रास्ते पर आ सकता है, क्योंकि उसे सबसे अधिक तुम्हारे बल पर विश्वास है। फिर पांडव तुम्हारे भाई हैं। तुम अधिरथ के नहीं, कुंती के पुत्र हो। कुंती कुमारी थी, तब तुम पैदा हुए थे। लज्जा के कारण उसने तुम्हारा त्याग किया था। तुम अपने भाइयों का संहार करो, यह अच्छा नहीं! भरसक, तुम्हें चाहिए कि युद्ध रोको, और दोनों दलों में शांति स्थापित करो।" कर्ण ने कहा—"पितामह, अब विवाद बहुत दूर बढ़ गया है। मैं केवल सूत अधिरथ का पुत्र हूं, जिसने मुझे पोसा-पाला है। समाज में मैं पतित समझा जाता था, मगर दुर्योधन ने मुझे राजा बनाकर ऊंचा उठाया है, मुझे सब प्रकार से मान दिया-दिलाया है। ऐसे मित्र के असमय में मैं युद्ध के विरुद्ध संधि की बातचीत करूं, इससे बड़ी दूसरी कायरता मुझे नहीं नजर आती। आप चिर-विश्राम ग्रहण कर चुके हैं। अब आपका उपदेश मेरे लिये हितकर नहीं हो सकता। पांडव आपके भी नाती थे। आपने

उनके विरुद्ध अस्त्र क्यों उठाया ? कौरवों को आप भी समझा सकते थे। क्षत्रिय परिणाम की चिंता नहीं करता।" कहकर कर्ण चले आए।

कौरवों के शिविर में वड़े-वड़े रथियों की सभा हुई। कर्ण भी सम्मिलित हुए। पितामह के पतन का यद्यपि दुर्योधन को शोक था, फिर भी उसका विचार था कि पितामह पांडवों का पक्ष लेते थे, और पूरी शक्ति से उनके विरुद्ध नहीं लड़ते थे ; अब महावीर कर्ण मैदान में उतरेंगे, इससे अवश्यमेव पांडवों का नाश होगा। इस निश्चय से दुर्योधन को जितना दु:ख था, उससे अधिक आनंद था। कौरव-पक्ष के वड़े-वड़े रथी एक-एक करके एकत्र हो गए। तब विचार होने लगा कि पितामह भीष्म के वाद सपूर्ण कौरव-पक्ष का कौन सेनापति बनाया जाय। कृपाचार्य ने कहा—"महाराज, आचार्य द्रोण से योग्य दूसरा रथी हमारे पक्ष मे नहीं। महामति भीष्म ने दस दिन तक घोर युद्ध किया है, और पाडवों की वहुत वड़ी सेना का सहार; आचार्य द्रोण और भी अद्भुत शक्ति का परिचय देंगे। उनकी बाण-विद्या की थाह नहीं। उनका कौशल अपराजेय है। उनके व्यूह सभी रथी नहीं भेद सकते। वह अद्वितीय हैं।" कर्ण आदि अन्य वीरों ने भी आचार्य द्रोण के सेनापतित्व पर सम्मति दी। अस्तु, द्रोण का सेनापतित्व स्वीकृत हो गया। महाराज दुर्योधन ने ब्राह्मण बुलाकर विधिवत् आचार्य का अभिषेक किया, और उनका सेनापतित्व समस्त सेना में घोषित करा दिया।

सेनापतित्व का गौरव सिर पर लेकर आचार्य द्रोण कुछ काल तक स्तब्ध भाव से खड़े रहे, फिर प्रतिज्ञा की—"मैं महामति भीष्म की तरह समस्त कौरव-सेना की रक्षा करूँगा, और पांडवों के संहार-कार्य में कोई कसर उठा न रक्खूँगा। मेरी समस्त वाण-विद्या और रण-कौशल कौरवों की हित-साधना में लगेगा। केवल धृष्टद्युम्न से मुझे चिंता है ; क्योंकि उसकी उत्पत्ति मेरी मृत्यु के लिये हुई है।"

आचार्य की प्रतिज्ञा समाप्त होने पर दुर्योधन ने कहा—"आचार्य, आपका समर-कौशल विश्वविश्रुत है। हम और पांडव आपके शिष्य हैं। आप से पार पानेवाला उभय पक्षों में कोई नहीं। आप एक सहज कार्य कर दें, तो हमारा काम बिना परिश्रम के हो जाय, और यह युद्ध भी रुक जाय, जन-नाश भी न हो। आप युधिष्ठिर को पकड़ दें। हम जुआ खेलाकर उन्हें फिर वन भेज देंगे; यह युद्ध रुक जायगा। आप आचार्य हैं; आपको ऐसे

अनेक व्यूह—अनेक उपाय मालूम है, जिसका भेद पांडवों को न मालूम होगा।"

दुर्योधन की स्तुति से द्रोण बहुत खुश हुए। कहा—"महाराज, मैं अपनी पूरी शक्ति युधिष्ठिर को गिरफ्तार करने में लगा दूंगा। महामति भीष्म की तरह मैं आपकी विजय के लिये हर सूरत अख्तियार करूंगा। आप मेरी तरफ से निश्चित रहिए। लेकिन एक बात है। जब तक अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा करेगा, तब तक उनका पकड़ में आना दुश्वार है। अब भी अर्जुन मेरा शिष्य है, फिर भी युद्ध के सभी प्रकार उसे मालूम हैं, फिर वह महादेव को प्रसन्न कर पाशुपत महास्त्र भी प्राप्त कर चुका है। राजन्, अगर अर्जुन को युद्ध-क्षेत्र से हटाने का उपाय सफल हो, तो संभव है कि धर्मराज युधिष्ठिर पकड़ में आ जायें।"

आचार्य द्रोण की बात सुनकर त्रिगर्त के राजा सुशर्मा और संसप्तकों ने कहा—"अर्जुन को हटा ले जाने की चिंता आप छोड़ दीजिए। कल हम युद्ध के लिये अर्जुन को ललकारेंगे, और बढ़ाते हुए दूर ले जायेंगे। उस समय धर्मराज को पकड़ने का उपाय आप कीजिए।"

युधिष्ठिर को पकडने के निश्चय से कौरवों में आनंद की लहरें उठने लगी। दुर्योधन और दुःशासन को मारे दुःख के रात को अच्छी नींद न आई। उन्हे सबसे बड़ी प्रसन्नता यह थी कि कल से महावीर कर्ण भी मैदान में उतरेंगे, और भीष्म की कमी मालूम न होगी, कारण, भीष्म पांडवों का पक्ष लेते थे।

पांडव-शिविर मे भी मन्त्रणा-सभा बैठी। कृष्ण ने कहा—"धर्म-युद्ध महामति भीष्म के साथ हो गया। अब कौरव एक भी उपाय उठा न रखेंगे। कल से कर्ण भी उतरनेवाले हैं। उनमें नया जोश है। फलतः युद्ध के क्रिया-कलाप कल से अवश्यमेव बदले नजर आएंगे। हमें पहले से सतर्क हो जाना चाहिए।"

धर्मराज सरल दृष्टि से श्रीकृष्ण को देखने लगे। अर्जुन ने कहा—
"*मित्र, आपका कहना सत्य मालूम देता है। मेरा भी अनुमान है, अब युद्ध* मे छल प्रधान होगा। कर्ण और शकुनि सीधी चाल न चलेंगे।"

"हां", श्रीकृष्ण सोचते हुए बोले—"दुर्योधन अधीर व्यक्ति है। सेनापतित्व के समय द्रोण से उसने अवश्य ही कुछ बड़ी प्रतिज्ञा कराई होगी।

द्रोण सीधे ब्राह्मण हैं। प्रशंसा से फूलकर उन्होंने पांडवों के अन्याय-विरोध के लिये कोई प्रतिज्ञा की होगी। हमारे विचार से धर्मराज की रक्षा का कल से उत्तम प्रबंध होना चाहिए।"

भीम को जैसे होश हुआ। वह दर्प के साथ सभा के सदस्यों को देखने लगे। कृष्ण ने कहा—"भीम और अर्जुन दोनों धर्मराज की रक्षा के लिये उनके दोनों तरफ़ रहेंगे। यदि किसी कारण एक का अभाव हो, तो उस स्थान पर धृष्टद्युम्न और सात्यकि मोर्चा जमाएँ। किसी तरह भी धर्मराज पकड़े न जायँ।" पांडव-पक्ष ने अपनी रक्षा का इस प्रकार प्रबंध किया।

ग्यारहवें दिन दोनों ओर की सेनाएँ नए उल्लास से मैदान में एकत्र होने लगी। द्रोण ने सेना का निवेश करके सामने पांडवों की ओर रथ बढ़ाने को कहा। सोने के विशाल रथ पर शोभित आचार्य द्रोण को सेनापति के रूप में देखकर एक बार पांडवों में आतंक छा गया। द्रोण के दोनों ओर दुर्योधन और दुःशासन, पीछे जयद्रथ, कलिंग-नरेश, कृपाचार्य और कृतवर्मा। दूर एक बगल अश्वत्थामा, दूसरी बगल महावीर कर्ण। कौरव-सेना नए उच्छ्वास से उमड़ती हुई समुद्र की तरह बार-बार जय-ध्वनि से गर्जना करने लगी। कर्ण की सूर्य-चिह्नवाली फहराती हुई ध्वजा को देखकर पांडवों के बड़े-बड़े वीर भी संत्रस्त हो गए। केवल अर्जुन धैर्य के साथ कौरवों के व्यूह का निरीक्षण कर रहे थे। इसी समय कपिध्वज नंदिघोष रथ को देखकर सुशर्मा और संसप्तक एक ओर से बढ़े। अर्जुन के कुछ दूर पर सात्यकि का रथ था। अर्जुन ने इशारे से सात्यकि को बुलाया। उनके आने पर कहा—"आचार्य द्रोण की व्यूह-रचना देखकर मालूम दे रहा है, राजा को पकड़ने की तैयारी की गई है। तुम व्यूह-भेद में दक्ष हो। होशियार रहना; हमारी सेना का सेनापतित्व धृष्टद्युम्न कर रहे हैं, देखकर आचार्य द्रोण कुछ चौंके-से नजर आ रहे हैं। यह काम हमारी तरफ से अच्छा हुआ है। वह महाराज युधिष्ठिर के अग्रभाग में बड़े अच्छे रहे। भीम दाहना पार्श्व रख रहे हैं। लेकिन रथ पर रहकर वह अच्छा युद्ध नहीं कर सकते। रथ छोड़ देने पर धर्मराज का दाहना पार्श्व कमजोर हो जायगा। फिर उधर कर्ण हैं। कर्ण बाण-युद्ध करेंगे, तो भीम रोक नहीं पाएँगे, रथ छोड़कर गदा-युद्ध के लिये विवश होंगे। फलतः धर्मराज का दाहना पार्श्व टूट जायगा। बाएँ में मैं हूँ। पर मैं शायद यहाँ

रह न पाऊँगा। वह देखो, सुशर्मा का रथ इधर बढ़ता आ रहा है; साथ संसप्तक हैं, ये मुझे उलझाएँगे। अगर युद्ध करते-करते विवश होकर मुझे बढ़ना पड़ा, तो धर्मराज का वाम पार्श्व भी टूटा समझो। यह सब उन्हें पकड़ने के लिये किया गया मालूम दे रहा है। नहीं तो सुशर्मा के उतनी दूर से बढ़कर इधर आने का कोई कारण नहीं जान पड़ता। केवल तुम हो, सावधानी से धर्मराज की रक्षा करना। परिस्थिति बिगड़ी देखना, तो धर्मराज को भागने के लिये विवश करना। निश्चय समझो, कर्ण और द्रोण के बीच में पड़ जायँगे, तो कोई भी उनकी रक्षा न कर सकेगा। वह देखो, सुशर्मा भाग गया, तुम अपनी जगह जाओ।"

सुशर्मा संसप्तकों के साथ बड़ी तेजी से बढ़कर अर्जुन के सामने आया, और ललकारकर बोला—"अब तक कायरों से लड़ते रहे हो, अभी शूर का मुकाबला नहीं किया। अगर है कुछ हौसला, तो बढ़ आओ, खुले मैदान में हमारे-तुम्हारे दस-पाँच हाथ हों, लोग सच्चे नतीजे पर आएँ।"

अर्जुन ने वहीं से दो तीर आचार्य द्रोण को नमस्कार करने के लिये चलाए, जो आचार्य के पैरों के पास जाकर गिरे। आचार्य ने प्रिय शिष्य को आशीर्वाद दिया। कृष्ण ने सुशर्मा के सामने रथ बढ़ाया।

दोनों ओर के सेनापतियों के शंख बजाते ही युद्ध छिड़ गया। रथ से रथ, हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़े और पैदल से पैदल भिड़ गए। युद्ध नए जोश से आरंभ हुआ। दोनों ओर बड़ी स्फूर्ति थी। क्षण-क्षण रण-क्षेत्र में हाथियों के बादल उमड़ रहे थे। बाणों की वर्षा से दिग्ज्ञान भूला था। घमासान युद्ध हो रहा था। द्रोण सामने से और कर्ण बगल से आक्रमण कर रहे थे। इन महारथियों की चोटें पांडव-पक्ष के रथी नहीं सँभाल पा रहे थे। फलतः पांडव-सेना पराजयी हो रही थी। सुशर्मा अर्जुन के साथ लड़ता हुआ हटता-हटता दूर ले गया। कर्ण को सेना-नाश के लिये एक बाजू में छोड़कर शल्य आकर भीम से भिड़े। नतीजा जो होना था, हुआ। भीम ने रथ छोड़ दिया, और गदा लेकर मैदान में कूद पड़े। शल्य भी गदा-युद्ध-विशारद थे। दोनों में बल-परीक्षा होने लगी। इसी समय कर्ण रथ बढ़ाते हुए महाराज युधिष्ठिर की बगल में आ गए। सात्यकि सतर्क थे। उन्होंने कर्ण को रोका। सामने धृष्टद्युम्न द्रोण की मारों से न ठहर सके। उनका सारथि मारा गया, और रथ के घोड़े घायल हो गए। इसलिये दूसरा रथ

बदलने के लिये वह अपने सहायक के रथ पर चढे, और युद्ध-क्षेत्र से प्रस्थान किया। महाराज युधिष्ठिर अपने भाई नकुल-सहदेव और सात्यकि के संरक्षण में रह गए। कर्ण बुरी तरह वाण वरसा रहे थे। सात्यकि को वार झेलते कठिनता हो रही थी। शकुनि ने रथ वढ़ाकर सहदेव को रोका। अकेले धर्मराज नकुल की सहायता मे रह गए। द्रोण पूरे विक्रम से लड़ रहे थे। युधिष्ठिर को ऐसी दशा मे देखकर रथ वढाया। युधिष्ठिर एक योद्धा की तरह लड़ने लगे। नकुल सहायता कर रहे थे। सात्यकि अव तक सँभलकर कर्ण को पीछे हटाने लगे। सात्यकि की इस समय की वीरता देखने लायक थी। भीम की जगह दाहना पक्ष लिए हुए सात्यकि कर्ण को जर्जर किए दे रहे थे। वाणों के मारे चारो ओर अँधेरा छाया हुआ था। सहदेव शकुनि से लड़ रहे थे। द्रोण के साथ दुर्योधन-दु शासन दोनो थे। और भी रथी थे, अकेले नकुल धर्मराज को पूरी मदद न पहुँचा पा रहे थे। फिर चारो ओर अधकार छाया था। युधिष्ठिर तत्परता से आचार्य का मुकावला कर रहे थे। इसी समय पाडव-दल मे खवर फैली कि धर्म-राज पकड़ लिए गए। अर्जुन काफी दूर निकल गए थे। उनके पास भी यह खवर पहुँची। उन्होने कृष्ण से रथ लौटालने के लिये कहा। विद्यु-द्वेग से कृष्ण ने नदिघोप-रथ लौटाला। शत्रुओं का सामना करते, हटाते, सैकड़ों लाशों और खून की नदियाँ पार करते हुए अर्जुन धर्मराज के युद्ध-क्षेत्र में पहुँचे। देखा, वे अक्षत है, केवल घिर रहे है। नकुल प्राणों की वाजी लगाकर कौरवों का मुकावला कर रहे है, और सात्यकि कर्ण को एक कदम आगे नही वढने दे रहे। भीम शल्य मे उलझे हुए अपने मौके से वेखवर है, और सहदेव शकुनि से जैसे हमेशा का फैसला कर लेने के लिये तुले हुए लड़ रहे हों। अर्जुन की तेज चोटों से कौरव-दल विचलित हो गया। रथी घवरा गए, और वढ़ी हुई कौरव-सेना अधिक सख्या में मारी गई। संध्या हो आई थी। आचार्य द्रोण ने अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर को वाँधने की आशा छोड़ युद्ध वंद करने का शंख वजाया। दोनो ओर की लड़ाई स्थगित हो गई।

दोनो पक्ष के शिविरों मे अनेक प्रकार की मंत्रणाएँ होती रही—कौरव-पक्ष मे युधिष्ठिर को पकड़ने की, पाडव-पक्ष में वचाने की। दुर्यो-धन को निराश देखकर त्रिगर्तराज आवेश में आ गए, और कहा—"कल

मैं अर्जुन को युद्ध-क्षेत्र से बहुत दूर ले जाऊँगा, अर्जुन के लौटने का रास्ता भी सेना और रथियों से रोक दिया जाय, तो आचार्य द्रोण और महावीर कर्ण, निस्सन्देह, युधिष्ठिर को पकड़ लेंगे।" आचार्य द्रोण ने सम्मति प्रकट की। अस्तु, दूसरे दिन फिर सेनाएँ एकत्र होने लगीं, और व्यूह में निविष्ट होकर अपने-अपने सेनापति की आज्ञा की बाट जोहने लगीं। अर्जुन अब जान गए थे कि कौरव युधिष्ठिर को पकड़ने के इरादे में हैं। इसलिये आज पाञ्चाल-वीर सत्यजित् को उनकी रक्षा के लिये ख़ास तौर से रखा था। सत्यजित् प्राणों की बाज़ी लगाकर युधिष्ठिर की रक्षा करेगा, वचन दे चुका था। और, सहायक भी दिए गए थे, साथ ही यह उपदेश भी कि किसी प्रकार का ख़तरा देख पड़े, तो धर्मराज युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भग जायें।

सेनाओं का सामना होते ही त्रिगर्तों ने अर्जुन को ललकारा, और उनका रथ बढ़ते ही दक्षिण की ओर भगे। काफ़ी दूर निकलकर व्यूह बनाकर खड़े हो गए, और डटकर अर्जुन से लोहा लेने लगे। मृत्यु का यह उल्लास अर्जुन कुछ देर तक ज्ञान की दृष्टि से देखते रहे, फिर विशाल गाण्डीव में शर-योजना की। बड़ी वीरता से लड़ते हुए त्रिगर्त लोग वीरगति पाने लगे। वे बड़े वेग से अर्जुन पर आक्रमण करते थे। कई बार कठिन-से-कठिन प्रहार किया। उन्हें निश्चय था कि वे युद्ध में विजयी होंगे, पर फल उलटा होता रहा। एक-एक करके वे अर्जुन के हाथ मारे जाने लगे। जो बचे, वे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए।

कृष्ण ने रथ लौटाया, तो रास्ता रोका हुआ देख पड़ा। अर्जुन और कृष्ण, दोनों समझ गए कि धर्मराज पर संकट है। अर्जुन को रोक रखने के लिये यह उपाय किया गया है। इससे उतावली हुई। अर्जुन बड़ी तेज़ी से तीर चलाते हुए रास्ता साफ़ करने लगे। पर वहाँ सेना-की-सेना खड़ी थी, रथी भी थे। प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त हाथी पर सवार रास्ता रोके हुए थे। उनकी तमाम सेना साथ थी। यहाँ अकेले अर्जुन। भगदत्त दम्भी भी था। उसने हाथी बढ़ाकर कहा—"अर्जुन त्रिगर्तों पर विजय पाकर तू समझा होगा, मैंने संसार के वीरों को जीत लिया; आज तुझे वीरता का पता मालूम हो जायगा, ले सँभल।" कहकर चोटें करनी शुरू कर दीं। महावीर अर्जुन भगदत्त की सेना से चारों ओर से घिर गए। लेकिन वह विचलित नहीं हुए। धैर्य के साथ आत्मरक्षा करते हुए भगदत्त पर वार करने

लगे। अर्जुन के युद्ध-कौशल से सारी सेना अवाक् थी। इस ढंग से अर्जुन तीर चला रहे थे कि समस्त सेना की गति रुद्ध हो रही थी। सबके पास बराबर तीर पहुँच रहे थे, सबका बराबर मुक़ाबला चल रहा था। इसी समय भगदत्त दोचित्ता हुआ कि अर्जुन ने उसके हाथी का हौदा काट दिया, उसने अंकुश फेंककर मारा, पर कृष्ण ने रोक लिया। अर्जुन ने क्षुब्ध होकर कृष्ण को अस्त्र-ग्रहण करने से मना किया, फिर अर्द्धचंद्र वाण द्वारा भगदत्त को, साथ ही उनके हाथी को मार गिराया। फिर आगे बढ़े।

अर्जुन के जाने के बाद से कौरवों-पांडवों में बड़ी गहरी मुठभेड़ हुई। आचार्य द्रोण पूरी शक्ति से युधिष्ठिर को पकड़ने के लिये लड़ रहे थे। बड़े-बड़े सभी महारथी उनके सहायक। लेकिन दाल नहीं गली। नकुल, सहदेव, भीम, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु और सत्यजित् आदि वीरों ने कौरवों के हौसले पस्त कर दिए। तब आचार्य द्रोण एक-एक रथी को एक-एक के मुकाबले करके युधिष्ठिर को बाँध लेने का प्रयत्न करने लगे। पांडव-पक्ष के सारे रथी उलझ गए। ऐसे समय आचार्य ने युधिष्ठिर को पकड़ने का उद्यम किया। सत्यजित् युधिष्ठिर का रक्षक था। उसने बड़ी फुरती से द्रोण के घोड़े मार दिए, और रथ की ध्वजा काट दी। द्रोण से न रहा गया। उन्होंने अर्द्धचंद्र वाण से सत्यजित् का सिरश्छेद कर दिया। सत्यजित् के गिरते ही धर्मराज मैदान छोड़कर लौट गए। इसी समय महा-समर करती हुई पांडव-वाहिनी ने अर्जुन के नंदिघोष का कपिध्वज-चिह्न देखा। उसकी जान में जान आई। युधिष्ठिर को न देखकर अर्जुन काल की मूर्ति बन गए, और क्षण-मात्र में कौरवों की विराट् सेना का नाश कर दिया। कौरवों में हाहाकार उठने लगा। सन्ध्या हो आई थी। भग्नमनो-रथ होकर द्रोण ने युद्ध बंद करने का शंख बजाया।

☆ अभिमन्यु की लड़ाई

महाराज दुर्योधन आज अत्यंत हतोत्साह थे। कारण, द्रोणाचार्य प्रतिज्ञा करके भी युधिष्ठिर को पकड़ नहीं सके। कौरव-सेना भी बड़ी संख्या में हत हो चुकी थी। हर रोज़ की तरह रात को शिविर में मंत्रणा-सभा बैठी। मृत वीरों के लिये शोक-प्रस्ताव पास हुए। फिर अगले दिन की

लड़ाई की चर्चा होने लगी। दुर्योधन खिन्न होकर बोला—"आचार्य, कौरवों की बहुत बड़ी सेना का संहार हो चुका है, लेकिन पांडवों का बाल भी बाँका न हुआ। अर्जुन के हाथ त्रिगर्तों का संहार हो रहा है। भीम उत्तरोत्तर पराक्रमशाली पड़ रहे हैं। सात्यकि रोज सहस्रों योद्धाओं का संहार करता है। आप यह सब देखते हुए भी कुछ कर नहीं पा रहे। आपने युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की थी, वह अधूरी रह गई। आप पांडवों पर स्नेह करते हैं। नहीं तो युधिष्ठिर का पकड़ लेना आपके लिये कोई बड़ी बात नहीं।"

दुर्योधन की बात से द्रोणाचार्य क्षुब्ध हो उठे। कहा—"महाराज, मैं अपनी तरफ से कोई कसर रख नहीं छोड़ता। परंतु क्या करूँ, अर्जुन अजेय है। वह हमारी चाल समझ जाता है, और अपने पक्ष की ऐसी पेशबंदी करता है कि कोई बस नहीं चलता। अगर आज अर्जुन फिर दूर ले जाया जाय, तो हम युधिष्ठिर को पकड़ने का उपाय कर सकते हैं, और संभव है, युधिष्ठिर पकड़ में आ जायें। हम आज चक्रव्यूह की रचना करेंगे। इसकी लड़ाई अर्जुन के सिवा पांडव-पक्ष में दूसरा नहीं जानता। अर्जुन अगर न होगा, तो युधिष्ठिर इस व्यूह का भेद न कर सकेंगे, दो-एक द्वार के भीतर आकर कैद हो जायेंगे।"

दुर्योधन आचार्य की बात से बहुत प्रसन्न हुआ। बचे हुए त्रिगर्त और संसप्तकों से उसने प्रार्थना की कि वे अर्जुन को दूर ले जायें। अर्जुन के चले जाने पर यहां चक्रव्यूह की रचना हो, और लड़ने के लिये युधिष्ठिर को पत्र लिखकर ललकारा जाय।

ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन त्रिगर्तों ने पहले की तरह अर्जुन को चुनौती दी। अर्जुन उनके पीछे लगे, और भागते हुए त्रिगर्तों के साथ अदृश्य हो गए, तब हरकारे ने धर्मराज युधिष्ठिर को चक्रव्यूह की लड़ाई लड़ने की चिट्ठी दी।

पत्र पढ़कर युधिष्ठिर चकित हो गए, उन्होंने इस व्यूह का नाम भी न सुना था। कृष्ण और अर्जुन नहीं थे। पांडव-पक्ष के वीरों को बुलाकर एक-एक से उन्होंने चक्रव्यूह की लड़ाई के संबंध में पूछा। सबने इनकार किया। भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि पांडव-पक्ष के बड़े-बड़े सभी महारथियों ने इनकार किया कि वे इस व्यूह की लड़ाई नहीं

जानते। धर्मराज ने सुभद्राकुमार बालक अभिमन्यु से पूछा—"बेटा, तुम अर्जुन के पुत्र हो, क्या तुम चक्रव्यूह की लडाई जानते हो ? क्या इस युद्ध-संकट के समय तुम हमारी रक्षा कर सकोगे ?"

अभिमन्यु ने बड़े दादा को झुककर प्रणाम किया, और कहा—"दादाजी, मैं माता के गर्भ में था। माताजी को प्रसव-पीड़ा हो रही थी। उस समय पिताजी माताजी को बहलाने के लिये चक्रव्यूह की लडाई समझा रहे थे। मैं गर्भ से सुन रहा था। छ द्वार तक की लड़ाई मैंने सुनी। सातवें द्वार की अच्छी तरह न सुन पाया, तब माताजी को फिर से पीडा शुरू हुई थी, और मैं भूमिष्ठ होने लगा था। आपकी आज्ञा हो, तो मैं तैयार हूँ। आप युद्ध का आमंत्रण स्वीकार कर लीजिए।"

भीम ने कहा—"बेटा, तुम रास्ता दिखाते चलोगे, तो पीछे हम तुम्हारी मदद के लिये रहेंगे, पांडव-सेना भी साथ रहेगी।"

युधिष्ठिर ने चक्रव्यूह-भेद का निमत्रण स्वीकार कर लिया। पांडवों में आनंद का सागर उमड़ने लगा। बड़े समारोह से बालक अभिमन्यु के सिर सेनापतित्व का मुकुट रक्खा गया। देवी सुभद्रा सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। इतनी कम उम्र में इतनी बड़ी वाहिनी का सेनापतित्व उनके पुत्र को छोड़-कर आज तक किसी को नहीं प्राप्त हुआ। आज पिता के न रहने पर पुत्र पिता के स्थान को पूरा कर रहा है। पुत्र को युद्ध-सज्जा से सजाने के लिये उन्होंने अपने शिविर में बुला भेजा, और पार्थ-पुत्र—श्रीकृष्ण के भाजे—को विविध अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित कर, मुख चूमकर, आशीर्वाद देकर विदा किया। अभिमन्यु माता के यहाँ से चलकर पत्नी उत्तरा के शिविर मे मिलने गए। उत्तरा ने भी पति की युद्ध-यात्रा का समाचार सुना था। अभिमन्यु को देखकर बड़े प्रेम से उसने गले लगाया, और फिर पैरों पड़कर आवेग-पूर्ण स्वर से कहा—"नाथ, आज रात को मैंने बड़ा भयानक स्वप्न देखा है, तुम आज युद्ध के लिये न जाओ। तुम्हारे पिता जब तक न लौटें, तब तक तुम मेरा कक्ष न छोड़ो। मुझ पर दया करो।"

"स्त्री स्वभाव से दुर्बल होती है," अभिमन्यु ने कहा—"प्रिये, तुम मेरे पिता को जानती हो, पिताजी मेरी यह कायरता कभी बरदाश्त न कर सकेंगे। जब वह सुनेंगे कि बीड़ा उठाकर मैं स्त्री के कक्ष में छिपा रहा, तब वह वीरों को मुँह नहीं दिखा सकेंगे। दादाजी की कितनी ग्लानि होगी ? उन्होंने

यह अकेला द्वार पार करता जा रहा है, इसे सातो द्वार भेदकर लौट जाते देर न होगी। इसे जीता न जाने देना चाहिए। दुर्योधन और दुःशासन अभिमन्यु की वीरता देखकर बहुत ही विकल हुए। वे कर्ण के पास गए, और सलाह कर कहा कि जिस तरह भी हो, इसे मारना चाहिए। यह अगर बेदाग इसी तरह जीतकर लौट गया, तो पाण्डवों की दूनी छाती हो जायगी, और कौरव-सेना हिम्मत हार जायगी। अगर इसका निधन हो गया, तो अर्जुन और कृष्ण का आधा बल रह जायगा। कर्ण ने सलाह दी कि इस वीर बालक को एक रथी न मार सकेगा। इसलिये सप्तरथी इसे घेरकर मारें। चक्रव्यूह के भीतर अन्याय और न्याय की जाँच करनेवाला कोई नही। फिर दुश्मन को जिस तरह हो, नीचा दिखाना चाहिए।

दुर्योधन के दिल में कर्ण की सलाह जम गई। उन्होंने आज्ञा दी कि सेनापति द्रोण पहले को छोड़कर, बाकी सभी द्वारों के रथियों को लेकर अभिमन्यु को घेरें और उसे जीता न जाने दें—अब तक अभिमन्यु छठा द्वार भी पार कर चुका होगा। विवश और क्षुण्ण होकर द्रोण ने आज्ञा दे दी। तदनुसार सभी द्वारों के रथी और लक्ष्मण चक्रव्यूह के सातवें द्वार पर आकर एकत्र हुए। चारो ओर उन लोगों ने अभिमन्यु को घेरा। सातवें द्वार का प्रवेश भी बालक न जानता था। परिस्थिति विषम देखकर सारथि ने कहा—"कुमार, यह अन्याय-युद्ध हो रहा है। द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा-जैसे संसार-प्रसिद्ध धनुर्धर भी तुम्हारे मुकाबले आज अन्याय करने को तुले हुए हैं। एक से लड़ने को सात-सात रथी एकत्र हैं। यह युद्ध तुम्हें नही लड़ना चाहिए। कल तुम अपने पिता के साथ आओ, तब ये पामर उचित शिक्षा पाएँगे; आज मुझे आज्ञा हो, मैं जिस मार्ग से आया हूँ, वह मार्ग पहचानता हूँ, वायु-वेग से मैं रथ उड़ा ले चलूँगा, सातवाँ द्वार रहने दो।"

"मैं इन नीचों को पीठ न दिखाऊँगा। अभिमन्यु ने कहा—"मैं लौटकर माताजी से क्या कहूँगा? सारथि, मेरा रथ कदापि पीछे न हटाना। मैं श्रीकृष्ण का भानजा और विश्वविजयी अर्जुन का पुत्र हूँ, क्षत्रिय होकर सम्मुख समर में प्राण दूँगा, इससे बड़े भाग्य की बात मेरे लिये दूसरी नही। यह निश्चय है कि युद्ध की वर्णना के लिये कोई नहीं। यह निश्चय है कि हम और तुम न रहेंगे। पर सूर्य देव हैं, आकाश है, वायु है, काल है, और यहाँ पामर कौरव हैं। सारथि, सत्य इन सूत्रों से ध्वनित होगा,

उसे कोई रोक नही सकता। महावीर अर्जुन के आचार्य तो हैं। तुम क्षुब्ध न हो, पहले ही की तरह लगाम सँभाले रहो। रथ को चक्र की तरह घुमाओ। ये सप्तरथी भी पार्थ-पुत्र का समर देख लें।"

"क्या देखते हो? मारो इसे।" कर्ण ने आवाज लगाई। द्रोण हत-प्रभ-जैसे रथ पर बैठे हुए थे। रथियों ने एक साथ शर-संधान कर अभिमन्यु पर छोडना शुरू कर दिया। अभिमन्यु का सारथि आज्ञानुसार रथ को चक्र की तरह घुमाने लगा, और अकेले अभिमन्यु सातो रथियों के वार झेलने और प्रहार करने लगे, कर्ण के सामने रथ जाते ही अभिमन्यु ने ऐसी तेजी से तीर मारे कि कर्ण रोक न सके, उनका शरीर जर्जर हो गया। द्रोण ने कहा—"बालक का कवच अभेद्य है। इसलिये मस्तक पर प्रहार करना होगा, और उसके अस्त्र छीन लेना होगा। रथ से भी उतरकर युद्ध करना होगा।" इसी समय अश्वत्थामा ने ऐसा तीर मारा कि अभिमन्यु का सारथि गिर गया। फिर घोड़े मार दिए। वीर बालक रथ से कूद पडा। कर्ण और द्रोण ने एक साथ मिलकर उसके धनुष को काट दिया। अभिमन्यु ने खड्ग लिया। दोनो ने खड्ग को भी काट दिया। तब रथ का पहिया लेकर अभिमन्यु लडने लगा, और उसी से कई वीरों को घायल किया। पीछे से अश्वत्थामा ने तीर मारकर उस पहिए को भी काट दिया। अब अभिमन्यु के पास कोई अस्त्र न था। इसी समय दु:शासन के पुत्र लक्ष्मणकुमार ने अभिमन्यु के सिर पर गदा फेंककर मारी। चोट गहरी लगी, पर मूर्च्छित होने से पहले वही गदा अभिमन्यु ने भी लौटाल कर लक्ष्मण के सिर पर प्रहार किया। अचूक वार था। अभिमन्यु और लक्ष्मण एक साथ मूर्च्छित हुए, और एक ही साथ प्राण निकले। युद्ध समाप्त हो गया। कौरव हर्ष और शोक लिए हुए शिविर को लौटे।

युद्ध-समाप्ति की शंख-ध्वनि होते ही पांडवों में खबर फैल गई कि अभिमन्यु मारे गए। लेकिन साथ-साथ अभिमन्यु के युद्ध की तारीफ, अन्याय-पूर्वक सप्तरथियों द्वारा घिरकर मारा जाना भी लोक-मुख से पहुँचा। कौरवो की सेना भी वीर बालक के लिये हाय-हाय कर रही थी। धर्मराज युधिष्ठिर और भीम आदि पांडवों के चेहरे उतर गए। समस्त सेना पर शोक के बादल घिर गए। बड़े-बड़े रथी अभिमन्यु की वीरता का संवाद पाकर शोक-सागर में निमग्न हो गए। धर्मराज विलाप करते हुए

कहने लगे—"भाई अर्जुन के लौटने पर हम उन्हें क्या कहकर समझावेंगे ? देवी सुभद्रा और बहू उत्तरा को क्या जवाब देंगे ?" भीम रो रहे थे कि जयद्रथ से उनका कोई वश नही चला, वह द्वार भेदकर भीतर नही जा सके, उनकी वीरता को धिक्कार है, लहूतालाल इतनी फ़ौज के रहते कोई मदद न पा सका, दुश्मनों से घेरकर असहाय की तरह मार लिया गया। संतप्त सेना और सेनापति अपने-अपने शिविर को लौटे। देवी सुभद्रा और उत्तरा को यह दुःसमाचार मिला। दोनो विलाप करती हुई पागल की तरह युद्ध-क्षेत्र की ओर दौड़ी, वहाँ लाश पर लाशें पडी हुई थी। कहीं-कहीं खून की नदी बह रही थी। स्यार घूम रहे थे। सुनसान युद्ध-क्षेत्र बड़ा भयानक दिखाई दे रहा था। देवी सुभद्रा मशाल लिए हुए अपने प्यारे पुत्र की लाश खोज रही थी। अभिमन्यु के मारे सैकड़ों-हज़ारों कौरव-वीर रास्ते मे मिले। बडी मुश्किल से चक्रव्यूह के सातवें द्वार का ठिकाना मिला। वहाँ का दृश्य बड़ा ही भयकर था। अभिमन्यु का रथ, घोड़े और सारथि जीर्ण और मृत दशा मे दिखाई पड़े। चारो ओर कौरव-सेना की लाशें। सात रथियों के मडल के बीच वीर बालक की लाश दिखाई दी। पास ही एक राजपुत्र और मरा पड़ा था। देवी सुभद्रा सुन चुकी थी कि अभिमन्यु को लक्ष्मणकुमार ने मारा है, और उसी गदा से अभिमन्यु ने लक्ष्मण को। मुँह देखकर पहचान गई, यह लक्ष्मणकुमार है। उत्तरा पति की लाश देखते ही पैरों के पास गिरकर मूर्च्छित हो गई। देवी सुभद्रा वीर पुत्र का सिर गोद मे लेकर विलाप करने लगी। उत्तरा ने सती होने की इच्छा प्रकट की। पर देवी सुभद्रा ने यह कहकर रोक दिया कि तुम्हारे गर्भ है, सती होना उचित नही, अब हमारा-तुम्हारा उतना वही सहारा होगा।

त्रिगर्तों और संशप्तकों को मारकर, कुछ रात बीतने पर, अर्जुन भी शिविर को लौटे। रास्ते में तरह-तरह के अपशकुन हो रहे थे। उन्हें चिंता थी कि कहीं धर्मराज पकड़ न लिए गए हों। आने पर मालूम हुआ कि चक्रव्यूह की लड़ाई मे अभिमन्यु ने वीर-गति प्राप्त की। पुत्र की वीर-गाथा से महावीर पार्थ क्षुब्ध हो उठे। श्रीकृष्ण ने समझाया कि ऐसे सुयोग्य पुत्र की वीर-गति पर पिता को शोक नहीं करना चाहिए, बल्कि इसका प्रति-कार करना चाहिए। अभिमन्यु को सात रथियों ने घेरकर अन्याय-पूर्वक

मारा है, इसका उन्हें उत्तर देना चाहिए। उन्होंने कहा—"दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ वास्तव में अभिमन्यु की ऐसी मृत्यु का कारण है। क्योंकि वन में पांडवों से लांछित होकर उसने रुद्र की आराधना की थी, और वर माँगा था कि वह पांडव-विजयी हो। भगवान् रुद्र ने कहा था कि अर्जुन को छोड़कर बाकी चार पांडव तुमसे न जीतेंगे। इसी विचार से चक्रव्यूह के द्वार पर वह रक्खा गया था। भीम इसीलिये उसे परास्त कर भीतर नहीं पैठ सके। अभिमन्यु को कुछ भी सहायता मिली होती, तो उसकी जान न जाती।" जयद्रथ के कारण अभिमन्यु की जान गई, यह मालूम कर सबके सामने वीर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की—"कल सूर्यास्त से पहले अगर मैं जयद्रथ को न मार सका, तो अग्नि को अपना शरीर समर्पित कर दूँगा।"

★ जयद्रथ-वध

अर्जुन की प्रतिज्ञा की खबर आग की तरह दोनों दलों में फैली। दोनों दलों में स्तब्धता छा गई। जयद्रथ दुर्योधन का बहनोई था। खबर शिविरों के सिपाहियों तक ही नहीं, रनिवास तक पहुँची। बड़ी घबराहट हुई। जयद्रथ बहुत डरा। अर्जुन की वीरता वह जानता था। फिर उसे शिवजी से वर पाने के समय मालूम हो चुका था कि अर्जुन अपराजित है। उसने सिंध-देश भग जाना चाहा। मारे भय के उसका शरीर काँप रहा था। दुर्योधन ने उसे धैर्य दिया। कहा, उनकी रक्षा के लिये वे पूरी शक्ति लड़ाएँगे। फिर यह भी संभव है कि अर्जुन का ही इस प्रतिज्ञा से खात्मा हो जाय। सूर्यास्त तक उनकी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर वे आग में जलकर भस्म हो जायेंगे। जयद्रथ को चाहिए कि दुश्मन को अपनी आँखों जलकर भस्म होता हुआ देख लें। यह कहकर दुर्योधन जयद्रथ को द्रोण के शिविर में ले चले। अर्जुन की प्रतिज्ञा द्रोण सुन चुके थे। कौरवराज के साथ उनके बहनोई जयद्रथ को देखकर आने का कारण समझ गए। सादर से दोनों को बैठाला। दुर्योधन ने पार्थ की प्रतिज्ञा की बात कही। द्रोण ने धैर्य देते हुए कहा कि भरसक पांडवों से लोहा लेंगे, और जयद्रथ के प्राणों की रक्षा करेंगे। कल ऐसा व्यूह बनाएँगे कि जयद्रथ को उसमें खोज निकालना अर्जुन के लिये दुष्कर होगा, और जैसी कि अर्जुन ने एक और प्रतिज्ञा की है कि दुश्मन को अन्याय से

जीतकर या छोड़कर वे दूसरे युद्ध के लिये नहीं मुड़ेंगे, वह प्रतिज्ञा अगर अर्जुन ने नहीं तोड़ी, तो तमाम दिन अकेले द्रोण अर्जुन से लड़ेंगे, वही व्यूह के द्वार पर रहेंगे। सुनकर दुर्योधन और जयद्रथ को आश्वासन हुआ। वे आचार्य को प्रणाम कर वहाँ से उठकर कर्ण के पास गए। कर्ण ने भी मित्र को धैर्य दिया।

पांडवों के शिविरों में भी कोलाहल और शंका थी। महाराज युधिष्ठिर बहुत घबराए थे। भीम भी चिंतित थे। सेना और सरदार सब दहले हुए थे। श्रीकृष्ण ने सुभद्रा और उत्तरा को समझाकर पांडवों और सेनानायकों को आश्वासन दिया। दूसरे दिन की लड़ाई का नक्शा तैयार हुआ। उस दिन रात को पांडवों में किसी की आँख नहीं लगी।

चौदहवें दिन की लड़ाई शुरू हुई। आचार्य द्रोण ने शकट व्यूह नाम के व्यूह में सेना का निवेश किया, और जयद्रथ को बीच में रखा। व्यूह के एक-एक द्वार पर कौरव-पक्ष के एक-एक महारथी थे। प्रवेश-द्वार पर स्वयं द्रोण। दुर्योधन के भाई दुर्मर्षण और दुःशासन द्रोण के पार्श्व-रक्षक थे।

सुविन्यस्त पांडव-वाहिनी आगे बढ़ी। सामने नंदिघोष रथ। अर्जुन बैठे हुए। सारथि कृष्ण। पांडव-सेनापतियों के हृदय में अपूर्व आवेग। दोनों ओर से शंख बजने लगे। युद्ध का स्वागत हुआ।

अर्जुन कुछ देर तक कौरवों के व्यूह को देखते रहे। समझकर दायाँ बाजू आक्रमण करने के इरादे से कृष्ण से रथ बढ़ाने के लिये कहा। दुर्मर्षण सामने आया। लेकिन क्रुद्ध अर्जुन के प्रहार सह न सका। देखते-देखते भग गया। तब दुःशासन आए। धनुष उठाते ही अर्जुन ने काट डाला, और एक साथ ही कई तीर मारे। दुःशासन का वर्म छेदकर दो-तीन तीर छाती में लगे। सारथि सेना छोड़कर उन्हें ले भागा।

अब अर्जुन का रथ व्यूह के द्वार पर आया। आचार्य द्रोण द्वार-रक्षक थे। अर्जुन को आया देख धनुष उठाकर वे द्वार की रक्षा में लगे। ललकारकर अर्जुन पर तीर छोड़े, और कहा—"अर्जुन, तुम्हारी यही बहादुरी मैं आज देखना चाहता हूं कि तुम व्यूह का द्वार भेदकर जाओगे। तुम प्रतिज्ञा कर चुके हो कि लड़ते हुए हटकर भागोगे नहीं।" आचार्य ने अमित पौरुष से अर्जुन को रोका। दोनों में घनघोर युद्ध छिड़ गया। एक दूसरे के तीर काटते हुए वार कर रहे थे। अर्जुन आज बड़े ही उद्धत थे, लेकिन द्रोण अर्जुन को

हर सूरत व्यर्थ कर देते थे। लड़ते-लड़ते काफी देर हो गई, तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"पार्थ, दिन का दूसरा पहर पूरा हुआ चाहता है, अभी तक तुम व्यूह-भेद नही कर सके। आचार्य से कटकर जाने में हार या हेठी नही होती। प्रतिज्ञा भी नही टूटती। मैं अब रथ कटाता हूँ। तुम बगल की मारें सँभालना।

कृष्ण ने रथ कटाया। द्रोण ने ललकारकर, कहा—"अर्जुन, क्या हो रहा है? भग रहे हो?"

अर्जुन ने कहा—आपसे भगने में मुझे लज्जा नही लगती। फिर आज का मेरा उद्देश्य दूसरा है।"

श्रीकृष्ण नदिघोप रथ बगल से निकालकर व्यूह के भीतर ले गए। देखते-देखते रथ अदृश्य हो गया। राह के एक के बाद दूसरे द्वार तोड़ते, प्रवेश करते हुए अर्जुन बहुत दूर निकल गए। वहाँ से शख की आवाज भी न सुनाई देने लगी। तीसरा पहर ढलने को हुआ, एकाएक युधिष्ठिर को चिंता हुई। मलिन होकर उन्होंने सात्यकि से कहा—"सात्यकि, तुम वीरों में बढकर हो। फिर अर्जुन तुम्हारे उस्ताद है। नदिघोप को भीतर गए एक पहर हो गया। अब न रथ की ध्वजाएँ देख पडती है, न शंख की आवाज़ सुन पड़ती है। बड़ी चिंता हो रही है। आज पार्थ की भीषण प्रतिज्ञा का दिन है। लेकिन हम लोग इतनी सेना के साथ उनकी मदद नही कर सकते। संकट पड़ने पर सहारे को कोई नही। तुम बढकर देखो न।"

सात्यकि ने कहा—"महाराज, मुझ पर आपकी रक्षा का भार है। नही तो मेरा जी भीतर पैठने को ही हो रहा है।"

युधिष्ठिर ने कहा—"मेरी चिंता न करो। भीम, नकुल, सहदेव आदि मेरी रक्षा के लिये बहुत है।"

प्रणाम कर सात्यकि विदा हुए, और उसी मार्ग से चले, जिससे अर्जुन गए थे। द्रोण ने रास्ता रोका, परंतु सात्यकि कटकर चले गए।

कुछ देर में सात्यकि भी अदृश्य हो गए। अर्जुन की मदद के लिये युधिष्ठिर की चिंता बढ़ती ही गई। भीम को देखकर उन्होंने कहा—"भीम! आज बड़े संकट का समय है। भाई, अर्जुन की सहायता के लिये जाओ। मैं संकट-समय देखूँगा, तो भग जाऊँगा। द्रोण मुझे पकड़ न पाएँगे, मदद के लिये भी बहुत हैं।

धर्मराज को प्रणाम कर भीम भी बढ़े। भीम को देखकर आचार्य द्रोण ने ललकारकर कहा—"भीम, बाहर-ही-बाहर जाओ, क्षत्रियत्व की नाक इधर रखकर उधर ही से अर्जुन और सात्यकि गए हैं।"

भीम को अपमान मालूम दिया। उन्होंने गदा फेंककर आचार्य पर प्रहार किया। आचार्य कूद गए, पर गदा के प्रहार से सारथि काम आ गया, और रथ के टुकड़े-टुकड़े हो गए। भीम फाटक दबाए हुए, सीधे रास्ते से निकले। दुर्योधन के भाइयों ने घेरा, पर भीम की बेड़ी मार न सह सके। लड़ते-लड़ते कई भाई खेत रहे। दुर्योधन को गहरा दुःख हुआ। वे आचार्य द्रोण से आक्षेप-पूर्ण बातें करने लगे। भीम का रथ कर्ण के सामने, दूसरे द्वार पर पहुँचा।

भीम को देखकर कर्ण ने ऐसी बाण-वर्षा की कि भीम को रथ छोड़ देना पड़ा। तीरों की लड़ाई में वे मुकाबले न थे। ढाल और तलवार लेकर बढ़े कि कर्ण ने एक तीर से उनकी तलवार काट दी, और पकड़ने के लिये रथ से उतर पड़े। भीम ने संकट देखा। अर्जुन ने जाते समय इस स्थल पर कई हाथी मारे थे। भीम उनकी लाश में जाकर छिपे। कर्ण देखते हुए आ रहे थे। चाहते तो भीम को मार सकते थे, परंतु उन्होंने कुंती से प्रतिज्ञा की थी कि अर्जुन के सिवा और उनके किसी पुत्र की वह जान न लेंगे। इसलिये मारने का विचार छोड़कर छिपे हुए भीम को धनुष से कोंचा। भीम ने धनुष पकड़ लिया, और तोड़ डाला। फिर बाहर निकल आए, और ताल ठोंककर ललकारा—"आओ, हमारी-तुम्हारी एक पकड़ हो जाय।" कर्ण बाहु-युद्ध में कमजोर थे। वे अपने रथ की ओर बढ़े।

सात्यकि भोज और काम्बोजों से लड़ते हुए अर्जुन की तरफ बढ़ रहे थे। पीछे से भीमसेन की हाँक सुन पड़ी। अर्जुन ने आँख फेरकर देखा, सात्यकि पास है, भीम दूर; दोनों नंदिघोष की ध्वजा देख रहे हैं। फिर कृष्ण से कहा—"यादव-श्रेष्ठ, देखिए, धर्मराज की रक्षा का भार छोड़कर, लड़ते हुए तूण खाली कर सात्यकि मेरी मदद के लिये आ रहे हैं और भीम भी।"

इसी समय भूरिश्रवा ने सात्यकि पर धावा किया। सारथि को मार डाला, और रथ को चूर-चूर कर दिया। कूदकर सात्यकि ने जान बचाई। पर खड्ग लिए हुए भूरिश्रवा भी कूद पड़ा, और दौड़कर सात्यकि की चोटी पकड़ ली। खड्ग चलाना ही चाहता था कि कृष्ण की निगाह पड़ गई।

उन्होंने उसी वक्त अर्जुन से कहा—"जल्द वार करो, अर्जुन, भूरिश्रवा सात्यकि की जान ले रहा है।"

जैसे बिजली कौंध जाए। तुरंत घूमकर अर्जुन ने तीर मारे, खड्ग-समेत भूरिश्रवा के दोनों हाथ कट गए।

खिन्न होकर अर्जुन को धिक्कारते हुए भूरिश्रवा ने कहा—"पार्थ, तुम क्षत्रियों के आदर्श वीर हो, पर यह कौन-सा न्याय है कि जब मैं सात्यकि से जूझ रहा हूँ, तुम मेरे हाथ काट दो ? धिक्कार है !"

"भूरिश्रवा" अर्जुन ने कहा—"सात्यकि भी अकेला तुम लोगों से जूझ रहा था, जूझता हुआ यहाँ तक आया था। वह पांडवों का शुभचिंतक है ! मैंने उसकी रक्षा की। रही बात अन्याय की, यह शिक्षा अभिमन्यु से लड़ते हुए तुम्हीं लोगों ने दी है, मित्र !"

भूरिश्रवा अन्याय के विरुद्ध देह छोड़ने के लिये ध्यानासीन हो गए। उनके बैठकर आँख मूँदते ही सात्यकि ने तलवार निकालकर उनका सिर काट लिया। कौरव सात्यकि को धिक्कार देने लगे। अर्जुन भी सात्यकि के इस कृत्य से खिन्न हुए।

दिन थोड़ा रह गया। अभी तक जयद्रथ का संधान नहीं मिला। सामने अपार कौरव-सेना कोलाहल कर रही है। अर्जुन ने कृष्ण से रथ बढ़ाने के लिये कहा। धर्मराज युधिष्ठिर को सात्यकि और भीम के जाने पर भी संतोष नहीं हुआ। उन्होंने युधामन्यु और उत्तमौजा को भेजा। जब अर्जुन वहाँ से बढ़ने को हुए, तब पीछे से ये दोनों वीर भी कौरवों की सेना को चीरते हुए वहाँ आ पहुँचे। सात्यकि और भीम विरथ थे। ये आए हुए दोनों वीरों के रथ पर बैठे। दोनों रथ नंदिघोष के बाजू बचाते हुए साथ-साथ बढ़े।

अर्जुन को गति रोकने के लिये कौरवों के कई महारथी एकत्र हो गए थे। दुर्योधन, कर्ण आदि वीरों ने अर्जुन को घेरा। दुर्योधन ने कहा, कर्ण, आज ही तुम्हारी वीरता की पहचान है। लेकिन क्रुद्ध अर्जुन ने ऐसा तीर मारा कि वह कर्ण के मर्मस्थल में लगा। वे विकल हो गए। सारथि उन्हें लेकर लौट गया। ज्यों-ज्यों संध्या होती आती थी, अर्जुन का वेग बढ़ता जाता था। वे ज्वार की तरह कौरवों के सेना-समुद्र को मथ रहे थे। लेकिन जयद्रथ का कहीं पता न चल रहा था।

सूर्य डूबने को हुए। देखते-देखते डूब भी गए। सूर्य के छिपते ही कौरवों में कोलाहल उठा कि सूर्य डूब गए। अर्जुन ने गांडीव रख दिया। कौरव-पक्ष के बड़े-बड़े महारथी एकत्र हुए। मारे आनंद के दुर्योधन का हृदय उछलने लगा। अर्जुन के भस्म होने के लिये उसने चिता रचा दी। सब रथी एकत्र हो रहे थे। भीम के आंसू आ गए। अब अर्जुन के चिता पर चढ़ने की बारी है। चिता में आग लगा दी गई। उधर जयद्रथ को दुर्योधन ने कहला भेजा कि दुश्मन को मरते हुए अपनी आंखों देख लो। वह वहां आकर सबके साथ खड़ा हुआ। अर्जुन बिना अस्त्र के चिता पर चढ़ रहे हैं, देखकर कृष्ण ने कहा—"पार्थ, क्षत्रिय का धर्म है कि अस्त्र लेकर चिता पर चढ़े।" अर्जुन ने तरकस बांधकर धनुष ले लिया। चिता पर चढ़ने को हुए कि कृष्ण ने कहा—"पार्थ, मारो दुश्मन को, सामने खड़ा है, सूर्य अस्त नहीं हुआ, बादल में छिपा है।"

कृष्ण के कहने के साथ अर्जुन का तीर छूटा, और जयद्रथ का सिर उड़ाकर आकाश में कहीं चला गया। पलक मारते यह काम हुआ। जयद्रथ के मरते ही सबने देखा, सूर्य बादल से निकला, और डूबने लगा। कौरवों में हाहाकार मच गया।

भीम मारे उत्साह के बार-बार सिंहनाद करने लगे। उनका सिंहनाद बाहर के पांडवों ने और उनकी सेना ने सुना। धर्मराज युधिष्ठिर समझ गए कि जयद्रथ मारा गया। पांडवों में आनंद का सागर लहराने लगा।

★ घटोत्कच-वध

रात को पांडवों की मंत्रणा-सभा बैठी। अगली लड़ाई पर विचार होने लगा। कृष्ण ने कहा—"दुर्योधन आज की लड़ाई से बहुत खिन्न हुआ है। वह आचार्य द्रोण और कर्ण को उभाड़ेगा। कल की लड़ाई में कर्ण अर्जुन पर इंद्र से पाई शक्ति का प्रहार कर सकता है। अगर किया, तो अर्जुन की जान न बचेगी। वह अमोघ शक्ति है।"

महाराज युधिष्ठिर कृष्ण की बात अच्छी तरह नहीं समझे, ऐसी दृष्टि से देखने लगे। कृष्ण ने कहा—"अर्जुन के कल्याण के लिये इंद्र कर्ण से उनका अभेद कवच और उनके कुंडल मांग ले गए हैं। महादानी कर्ण ने प्राणों की

रक्षा भी दान के महत्त्व को रखते हुए नहीं की, कुंडल और कवच दे दिए। तब देवराज इंद्र ने भी एक अमोघ शक्ति दी है। वह शक्ति जब तक कर्ण के हाथ में है, तब तक कर्ण से अर्जुन को नहीं लड़ना चाहिए।"

"फिर माधव ?" डरते हुए युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा—"अब क्या उपाय होगा ?"

कृष्ण ने कहा—"घटोत्कच का स्वभाव राक्षस का स्वभाव है। वह वैसी ही परिस्थिति में अच्छा लड़ सकता है। रात है। अँधेरे में उसे लड़ते उत्साह होगा। उसे बुलाकर कहना है कि वह कौरवों के शिविर में लड़ाई और अत्याचार करे। परेशानी बढ़ने पर दुर्योधन रक्षा के लिये अधीर होगा, और कर्ण से रक्षा के लिये कहेगा। कर्ण बिना उस शक्ति के प्रयोग के घटोत्कच का अत्याचार रोक नहीं सकेंगे। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं।"

सभा निस्तब्ध रही। घटोत्कच भीम का पुत्र है। उसकी मां हिडिंबा है। भीम सिर झुकाकर रह गए। एक ओर भाई अर्जुन हैं, दूसरी ओर पुत्र घटोत्कच।

युधिष्ठिर ने कहा—"केशव, पांडव आपकी आज्ञा के अनुवर्ती हैं। आपने जो उपाय निकाला है, वही काम में लाया जायगा।" यह कहकर उन्होंने घटोत्कच को बुलाया। उसके आने पर सस्नेह उससे कहा—"वत्स, तुम दिन से रात में ज्यादा अच्छा लड़ते हो। जाओ, वीर, अपनी सेना लेकर कौरव-शिविरों पर आक्रमण करो। तुम्हारे लिये मनुष्य के नियम लागू नहीं। आज अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाकर पांडवों की रक्षा करो।"

महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम कर घटोत्कच विदा हुआ। अपनी सेना साथ ली, और सोते समय कौरवों पर आक्रमण शुरू कर दिया। एकाएक धूल उड़ी, फिर बादल छा गए, पानी बरसने लगा, साथ आसमान से कंकड़ और पत्थर गिरने लगे, तरह-तरह का शोर-गुल उठने लगा। मारे डर के कोई बाहर न निकला। लेकिन भीतर भी निस्तार नहीं रहा। अँधेरे में बाहर कुछ देख न पड़ता था। केवल 'मार-मार' शब्द गूंज रहा था। पत्थरों की मारों से कौरव बहुत व्याकुल हुए। दुर्योधन इस उपद्रव का कारण कुछ न समझ सके। उनका शिविर कर्ण के शिविर के पास था। वे कर्ण के पास गए, और इस आपत्ति से सेना को बचाने के लिये कहा। कर्ण ने कहा—"आज धैर्य रखकर पड़े रहिए। कल मैं अर्जुन के प्राण लूंगा।" दुर्योधन ने

कहा—"आज ही सबके प्राण निकल जायेंगे। कल का मुंह कौन देखेगा। आज की इस आपत्ति से बचाओ। कल की कल देखी जायगी।"

दुर्योधन को बहुत अधीर देखकर कर्ण इंद्र की दी शक्ति लेकर बाहर निकले, और उसका प्रयोग किया। शक्ति अमोघ थी। घटोत्कच के लगी। वीर धराशायी हो गया। उसके प्राण निकल गए।

दुर्योधन प्रसन्न हो गए। कर्ण को साधुवाद दिया। कर्ण की शक्ति पर भरोसा हुआ। शिविर में निश्चिन्त होकर आराम करने लगे।

घटोत्कच की मृत्यु का संवाद पांडवों को मालूम हुआ। धर्मराज आंसू भर कर रह गए। भीम उस रात नहीं सोए।

★ द्रुपद, विराट और द्रोण का निधन

सुबह दोनों दल लड़ने के लिये सजकर तैयार हो गए। रात के आक्रमण से कौरव विचलित थे। खूंखार बाघ की तरह पांडवों पर टूटे। द्रोणाचार्य ने अपनी सेना के दो भाग किए थे, आधे में वे थे, आधे में कर्ण। आज द्रोण को भी क्रोध था। रातवाले आक्रमण पर वे पांडवों को क्षमा नहीं करना चाहते थे। बदला भी पांचालों से चुकाना था। वे अबाधगति से पांडवों की सेना से रास्ता निकालकर बढ़ने लगे। उनके क्षिप्रहारों से सैकड़ों वीर और हजारों सिपाही काम आए। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। कोई भागा भी नहीं बचता था। व्यूह टूट गया। सिपाही रक्षा के लिये सेना-पतियों की ओर करुण दृष्टि से देखने लगे। द्रोण का आक्रमण देखकर युधिष्ठिर ने कहा—"कृष्ण, आचार्य आज साक्षात् यम बन रहे हैं। जयद्रथ के वध से यदि द्रोण और कर्ण का वध हुआ होता, तो पांडव-सेना अधिक निश्चिन्त हुई होती। इनके मरने पर दुर्योधन ने जरूर संधि की सोची होती, या मैदान छोड़कर वन का रास्ता नापा होता।"

कर्ण को बढ़ता हुआ देखकर कृष्ण नन्दिघोष-रथ दूसरी ओर बढ़ा ले गए। युधिष्ठिर द्रोण का सामना करने के लिये बढ़े। द्रुपद और विराट युधिष्ठिर के पार्श्व-रक्षक हुए। इन्हें देखकर द्रोण का क्रोध दूना बढ़ गया। द्रुपद और विराट के मारे हुए तोमर और प्राश अस्त्रों को काटकर दिव्यास्त्रों से द्रोण ने दोनों की जान ले ली। सेना में हाहाकार मच गया। अर्जुन ने

कर्ण के पास पहुँचने से युधिष्ठिर के पास पहुँचना आवश्यक समझा। रथ घूमा। द्रुपद के मरने पर पांचाल-सेना द्रोण पर टूट पड़ी, साथ धृष्टद्युम्न। लेकिन द्रोणाचार्य का समर बड़ा भयकर था। उनके चेहरे से रह-रहकर जैसे आग निकल रही थी, जैसे प्रलय का सूर्य तप रहा हो। हाथ से अविराम तीरों की वर्षा हो रही थी। अव्यर्थ शर-सधान सेना और सेनापतियों के प्राण ले रहा था। द्रोण अप्रतिहत गति से पाचालों का निधन करने लगे।

आचार्य के द्वारा लाखों की सख्या मे सेना काम आ रही थी, युधिष्ठिर देखते हुए चिंतित हो गए। द्रोण को मारे, ऐसी शक्ति अर्जुन के सिवा दूसरे में न थी। युधिष्ठिर सोच रहे थे, आचार्य समझकर अर्जुन द्रोण के प्राण नही लेगा; पर द्रोण के रहते कल्याण नही। क्रमश. पाचालों और पाडवों की सेना का नाश बढ रहा है, देखकर कृष्ण ने सोचा, अब द्रोण का निधन आवश्यक है, नही तो युद्ध का परिणाम उलटा होना चाहता है। सोचकर उन्होंने अर्जुन से कहा—"आचार्य के कान में यह बात डाल देनी है कि अश्वत्थामा का प्राणांत हो गया।"

अर्जुन ने कहा—"झूठ ?"

कृष्ण ने कहा—"नही, सच। अवतिराज के हाथी का नाम अश्वत्थामा है। भीम उसे मारकर आ रहे हैं।"

कृष्ण ने युधिष्ठिर के पास रथ ले जाकर कहा—"अगर द्रोणाचार्य आपसे पूछें कि क्या अश्वत्थामा हत हो गया, तो आप कह दीजिए, हाँ। अभी अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारकर भीम आ रहे हैं।"

बात-की-बात में हल्ला मचा, अश्वत्थामा मारा गया—अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण सुनकर विचलित हुए। लेकिन एकाएक विश्वास नही हुआ। युधिष्ठिर पास थे। रथ बढ़वाकर उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा। युधिष्ठिर ने कहा—"हाँ, अश्वत्थामा मारा गया, नर नही कुंजर।" पहला वाक्य खतम होते ही 'नर' के उच्चारण के साथ-साथ कृष्ण ने शंख बजा दिया। द्रोणाचार्य आगे का वाक्य नहीं सुन पाए। वह उदास हो गए। फिर गले से धनुष टेककर रोने लगे। आँसुओं की धारा बँध गई। आँसू धनुष के गुण पर बहने लगे। इसी समय कृष्ण ने कहा—"पार्थ, देखो, सर्प चढ रहा है, द्रोणाचार्य को काटेगा, मार दो इसे।" गुण मे लिपटे, झलमलाते, काँपते आँसू अर्जुन को सर्प-से दिखाई दिए। उन्होंने उसी समय,

बिना अच्छी तरह देखे, तीर छोड़ दिया। तीर साँप को क्या लगा, उससे धनुष का गुण कट गया, और डंडा सीधा होने के लिये उछला और आचार्य के गले में छिद गया। इसी समय द्रुपद का बेटा धृष्टद्युम्न तलवार लेकर वहाँ पहुँचा, और द्रोणाचार्य का सिर काट लिया।

द्रोण के हत होते ही चारों ओर हाहाकार मच गया। खबर अश्वत्थामा के पास भी पहुँची। सुनकर उन्हें बड़ा सोच हुआ। उनके विश्वविख्यात आचार्य पिता धोखे से धृष्टद्युम्न के हाथ मारे गए! वह महावीर थे—महारथ। उनके मुकाबले का वीर अर्जुन के सिवा दूसरा न था दोनों पक्षों में। जैसे अर्जुन कुछ खास बातों में अश्वत्थामा से बढ़कर थे, वैसे ही अश्वत्थामा कुछ खास बातों में अर्जुन से। दिव्यास्त्र अश्वत्थामा के पास भी कई थे।

पाडवों की सेना का बेशुमार संहार होने लगा। अश्वत्थामा की वह कराल मूर्ति देखकर सेना भगती हुई भी न बची। इसी समय अश्वत्थामा ने नारायण-अस्त्र पाडवों पर चलाया। उस चोट की बचत किसी को न मालूम थी। अस्त्र के सामने देवता भी न ठहर सकते थे। उसके छूटते ही चारों ओर से जैसे जल-वृष्टि होने लगी। बिजली-सी कड़की। चारों ओर अँधेरा छा गया। त्रास फैल गया। इसका प्रतिकार सिर्फ कृष्ण को मालूम था। उन्होंने हाथ उठाकर कहा, सेना में जितने आदमी हों, अस्त्र छोड़कर सिर झुका लें। अर्जुन आदि वीरों ने ऐसा ही किया, लेकिन भीम ने ऐसा नहीं किया, वे गदा लिए सामने डटे रहे। तब कृष्ण रथ से कूद पड़े, और जबरन् भीम की गदा छीन ली, और अपने हाथों से दबाकर सिर झुका दिया।

अस्त्र को व्यर्थ हुआ देखकर भी अश्वत्थामा विरत नहीं हुए, और दूने दर्प और क्षिप्रता से पाडवों की सेना मारने लगे। आज अश्वत्थामा के मुकाबले आने बड़े-बड़े वीर दहल गए, मार खा गए, भग गए। देखकर अर्जुन ने मोरचा लिया। कहा—"अब, तुम कुछ देर मेरा भी सामना करो।"

अश्वत्थामा जले हुए थे, और जल गए। उसी वक्त आग्नेयास्त्र का संधान किया, और कृष्ण और अर्जुन को लक्ष्य कर छोड़ दिया। अस्त्र के निकलते ही आकाश को व्याप्त कर चारों ओर आग पैदा हो गई, एक-एक के भीतर से निकलते हुए तीरों का बादल छा गया। उस अस्त्र की आग में पाडवों की एक अक्षौहिणी सेना भस्म हो गई। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर इसकी शांति की। अब तक संध्या हो गई थी, लड़ाई बंद हो गई।

कर्णपर्व

★ सेनापति कर्ण

महान् तेजस्वी महारथी आचार्य द्रोण कौरवों के लिये पांच दिन तक घोर युद्ध करके धराशायी हुए। कौरव-दल मे शोक के बादल उमड आए।

सेना और सेनापतियों मे आंसुओं की झड़ी लग गई। पांडव भी आचार्य के निधन मे रोए।

कौरव-शिविर में नियमानुसार सभा बैठी। सब लोग शोकाकुल थे हो,

विलाप करने लगे। विश्व-विख्यात आचार्य पिता के प्रयाण से अश्वत्थामा को बड़ा दुःख हुआ। वह फूट-फूटकर रोने लगे। दूसरे-दूसरे महारथी उन्हें धैर्य देने लगे।

दुर्योधन को यह विश्वास था ही कि कर्ण के सेनापतित्व में उसकी विजय होगी। पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण पांडवों से स्नेह करते थे। समय समझकर, आचार्य के लिये शोक करने के पश्चात्, सभा के समागत वीरों को संबोधन करते हुए दुर्योधन ने कहा—"वीरो, अब हमें आगे के मोरचे की तरफ ध्यान देना चाहिए। आचार्य के निधन से पांडवों में बड़ा हर्ष छाया हुआ है। हमें इसका जवाब देना चाहिए। इसका जवाब अर्जुन का निधन है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य को हमारे मित्र अंगराज महारथ कर्ण पूरा कर सकते हैं। उनके समकक्ष योद्धा इस पृथ्वी-मंडल में दूसरा नहीं। मेरा विचार है, अब कल से महाबल कर्ण कौरवों की सेना का सेनापतित्व करें।"

शल्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि वीरों ने एक वाक्य से कर्ण का सेनापतित्व स्वीकार किया। तदनंतर कर्ण को महाराज दुर्योधन ने सेनापति के पद पर बड़े समारोह से रोचना-तिलक लगाकर, माला पहनाकर, वरण किया।

कर्ण ने नियमानुसार प्रतिज्ञा की कि वे अपने मित्र परमोदार महाराज दुर्योधन के लिये पूरी शक्ति से पांडवों पर आक्रमण करेंगे। दुर्योधन प्रसन्न चित्त से अपने शिविर को आराम करने के लिये चला। दूसरे-दूसरे सभ्य महारथी भी उठे।

सुबह कर्ण के सिर सेनापतित्व का मुकुट बँधा। सारी सेना आनंद से उत्फुल्ल हो उठी। सूर्य की किरणें कर्ण के मुकुट पर पड़ीं। मुकुट चमक उठा।

शंख बजाकर कर्ण ने सेना-निवेश शुरू किया। अपनी सेना का उन्होंने मकरव्यूह बनाया। व्यूह के मुँह के पास कर्ण खुद रहे। आँखों की जगह शकुनि और उलूक। सिर पर महारथ अश्वत्थामा। कमर की रक्षा का भार दुर्योधन और उनके भाइयों पर। नारायणी सेना लेकर एक तरफ कृतवर्मा, दूसरी तरफ मद्रराज शल्य और त्रिगर्तराज। कृपाचार्य बीच में। इस तरह व्यूह की रक्षा करते हुए बढ़े।

कर्ण का अपूर्व व्यूह देखकर महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—"भाई, कर्ण बड़ा पराक्रमी योद्धा हैं। कर्ण से बड़े-बड़े नहीं विजय पा सकते। बहुत सँभलकर युद्ध करना। हमारे कष्टों का मूल भी कर्ण है। कर्ण का निपात बहुत आवश्यक है।"

इसी समय संसप्तकों ने अर्जुन को आकर ललकारा। अर्जुन भीम और नकुल पर धर्मराज की रक्षा का भार सौंपकर, सावधान कर संसप्तकों के पीछे लगे। कर्ण पूरी शक्ति से बढ़ते हुए पाडवों के सामने आ गए।

नकुल कर्ण के सामने आए, और अस्त्रों के प्रहार से उनकी गति रोकी। कर्ण के तीर भादों की झड़ी की तरह चलने लगे, और बात-की-बात मे नकुल बाणों से घिर गए। इसी समय एक तीर ऐसा आया कि नकुल का सारथि घायल हो गया, फिर धनुष के भी दो टूक हो गए। इस बीच कर्ण रथ बढ़ाकर नकुल के पास आ गए, और रथ पर चढ़कर खड़े होकर धनुष का डंडा नकुल के गले में डाल दिया। चाहते, तो नकुल का वध कर सकते थे, परंतु माता कुंती की प्रार्थना याद कर फिर बोले नहीं। कोई कौरव देख न ले, इस विचार से चुपचाप रथ पर बैठकर दूसरी ओर बढ़े।

महावीर कर्ण के मारों से पाडव-सेना के पैर उखड़ गए। सेना इधर-उधर भागने लगी। भीमसेन पराक्रम से लोहा ले रहे थे, पर कर्ण की चोटों के सामने किसी की न चलती थी।

अर्जुन को संसप्तकों से लड़ते देर हुई देखकर कृष्ण ने कहा—"पार्थ, अभी तक तुम इन्हें परास्त नहीं कर सके। कर्ण का सामना कब करोगे? तुम्हारे सिवा पांडवों में कर्ण का मुकाबला करे, ऐसा कोई नहीं। भीमसेन का सिंहनाद नहीं सुन पड़ रहा। ज़रूर पांडव विपत्ति में हैं। धर्मराज का न-जाने क्या हाल है!"

कृष्ण की बात से अर्जुन जोश में आए, और संसप्तकों पर अव्यर्थ संधान करने लगे। क्रुद्ध अर्जुन की चोटों से आँधी के आमों की तरह संसप्तकों की सेना धराशायी होने लगी। देखते-देखते पृथ्वी रुंड-मुंडों से पट गई। महावीर अर्जुन साक्षात् इंद्र की तरह संसप्तकों से लड़ रहे थे। कुछ ही देर में बचे हुए संसप्तक जान लेकर भाग गए। कृष्ण ने पांडव-सेना की ओर रथ बढ़ाया।

रास्ते में दुर्योधन ने रथ की गति रोकी। उनके कई सहायक थे। सबने

घेरकर एक साथ अर्जुन पर बाण-वर्षा शुरू कर दी। पर अर्जुन उस समय प्रलय के सूर्य के समान तप रहे थे। उन्होंने एक साथ दुर्योधन और उनके सहायकों का सामना किया, और क्षण-भर में दुर्योधन को विरथ और बाणों से विद्ध करके युद्ध से पराङ्मुख कर दिया। सहायक दुर्योधन को लेकर भग गए।

अब संध्या हो गई थी। इसलिये आज का युद्ध स्थगित हुआ। दोनों ओर के सेनापति अपनी-अपनी सेना शिविर के लिये फेरने लगे।

★ शल्य का सारथ्य

पिछले दिनों की तरह कौरवों के शिविर में सभा बैठी। कर्ण के युद्ध से दुर्योधन को बहुत प्रसन्नता थी। उन्होंने अपनी आँखों देखा था, कर्ण पांडवों की सेना का अबाध गति से संहार कर रहे हैं। उन्हें विश्वास था, कर्ण द्वारा पांडवों पर उनकी विजय होगी। उन्होंने गर्व के साथ अपने मित्र की प्रशंसा की, कर्ण ने कहा—"महाराज, मैं यथाशक्ति आपके लिये युद्ध कर रहा हूँ। परन्तु कई असुविधाएँ हैं। अर्जुन के पास युद्ध के सभी अच्छे उपकरण हैं। उनका रथ पहाड़-सा बड़ा है, उसमें अस्त्र-शस्त्र बहुत अँटते हैं। अर्जुन के घोड़े बहुत तेज हैं, सारथि भी कृष्ण। उनका गांडीव धनुष संसार में अद्वितीय है। उनका तूणीर अक्षय है। उनके अस्त्र दिव्य हैं ही। ऐसी अनेक सुविधाएँ अर्जुन को प्राप्त हैं। हमारे पास इनका एक अंश भी पूरा नहीं। फिर भी हमें एक अच्छे सारथि की आवश्यकता है। सुना है, महाराज शल्य इस विद्या में भी सिद्धहस्त हैं। यदि आप उन्हें मेरा रथ चलाने की आज्ञा करें, तो युद्ध में आशानुरूप फल हो सकता है।"

कर्ण की बात से दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए, और मद्रराज से कहा—"मामा, हमारे संकट के समय आप सहायता दीजिए। आप कर्ण का सारथ्य स्वीकार कीजिए।"

शल्य ने कहा—"वत्स दुर्योधन, तुम्हें तुम गर्व पर चढ़ाओगे, तो तुम्हारे लिये हम गर्व पर चढ़ने को भी तैयार हैं। लेकिन एक बात है, उसे मेरा दोष ही समझो। मेरी जबान मेरे वश में नहीं रहती। महारथ कर्ण मेरी बात से नाराज होकर कहीं आत्महत्या न कर बैठें, यही मुझे भय है।"

सभा हँसने लगी। दुर्योधन और कर्ण झेंपे। शल्य एकटक कर्ण को देखते रहे। सँभलकर दुर्योधन ने कहा—"कहने के लिये आप जो चाहें, कह सकते हैं, आप मामा हैं, अंगराज कर्ण यह जानते हैं।"

शल्य ने कर्ण का सारथ्य स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल महारथी कर्ण के रथ पर सारथि शल्य को देखकर कौरव हर्ष से 'जय-जयकार' करने लगे। कर्ण ने कहा—"शल्य, आज तुम मेरा समर देखोगे।" शल्य ने कहा—"अभी ही देख रहा हूँ, जब कि रथ दक्षिण ओर जा रहा है।" कर्ण ने कहा—"जब आ पड़ती है, तब शुभ और अशुभ रक्खा रह जाता है। "कर्ण ने कहा—"शल्य, आज निश्चित रूप से हमारी विजय होगी।" शल्य ने उत्तर दिया—"हंस और कौएवाली होगी।" यह कथा कर्ण की सुनी न थी। उन्होंने पूछा—"हंस और कौएवाली क्या?" शल्य ने कहा—"हंस समुद्र के पार उड़कर मोती चुगने जाते थे। चुगकर, फिर उड़कर इस पार लौट आते थे। इस पार हंसों के घोंसले के पास एक डाल पर एक कौआ रहता था। उसने हंसो से पूछा, भाई, तुम लोग कहाँ जाते हो? हंसो ने कहा, हम सागर के उस पार जाते हैं, वहाँ मोती चुगते हैं, फिर लौट आते हैं। कौए ने कहा, आज हमे भी ले चलो। हंसों ने कहा, तुम उड़ न पाओगे, बहुत दूर जाना है। कौए ने कहा, हूं, मैं सबको उड़ा ले चलूंगा। एक हंस ने कहा, चलो, अपना क्या बिगड़ता है। अस्तु, कौआ साथ उड़ा। एक पहर उड़ने के बाद वह थका। पंख ढीले पड़े, तो पुकारकर कहा—भाइयो, बचाओ, नही तो गिरकर डूबता हूँ। हंसों ने कहा, पहले तुम्हें मना किया था, तब नही माने; यहाँ बैठकर आराम करने को वृक्ष-लता थोड़े ही हैं! एक हंस ने कहा, डूबने दो, दूसरे ने कहा, नहीं, बचाओ इसे, आज की चुगाई न सही। सब हंस इकट्ठे हुए, और एक-एक करके कुल हंस कौए को पीठ पर चढ़ाए उड़ते हुए इस पार आने लगे। बहुत मुश्किल से पार आए, लेकिन कौए की जान बचा ली। उस दिन फिर समुद्र-पार जाना नहीं हुआ। कौए को डाल पर बैठाकर उस दिन सब वैसे ही रह गए।"

कथा सुनकर कर्ण को क्रोध आया, पर शल्य पहले ही कह चुके थे, इसलिये कुछ बोले नहीं। सामने पांडवों की सेना खड़ी ललकार रही थी।

कर्ण ने कहा—"शल्य, आज तुम सही-सही युद्ध देखोगे। पांडवों को इतनी विशाल सेना मैं बात-की-बात में बिडार दूँगा। आज अर्जुन के बड़े

भाग्य होंगे, तभी वह बचेंगे। तुम देखोगे, मैं जो कुछ कहता हूँ, करता हूँ।"

शल्य ने कहा—"आज तक देखता रहा, पहले सुन चुका हूँ, तुम जितना कहते हो, मुश्किल से उसका दसवाँ हिस्सा कर पाते हो। कर्ण, इन प्यादों को तुम भले ही मार लो, पर अर्जुन का मुकाबला होने पर तुम जरूर मुझसे रथ भगा ले चलने के लिये कहोगे। अपने शिर पर तो कलंक का टीका लगाओगे ही, मुझे भी बदनाम करोगे।"

इसी समय पांडव-पक्ष के अर्जुन सामने आए। युधिष्ठिर ने उन्हें देखकर सरल स्नेह स्वर से कहा—"भाई, कर्ण ने आज बड़े विकट व्यूह की योजना की है; कर्ण को देखकर मुझे न-जाने क्यों भय होता है, बहुत जल्द तुम कर्ण का विनाश करो।"

धर्मराज को प्रणाम कर अर्जुन आगे बढ़े। नंदिघोष-रथ को बढ़ता हुआ देखकर शल्य ने कर्ण से कहा—"देखो, कर्ण, महारथ अर्जुन तुम्हारे सामने आ रहे हैं।"

कर्ण ने कहा—"शल्य, मैं तैयार हूँ, लेकिन वह देखो, हमारी सेना का व्यूह भेदकर अर्जुन का रथ निकल नहीं पा रहा है" कहकर कर्ण हँसे। बोले—"अब पहर-भर की छुट्टी है। अर्जुन को मालूम हो गया होगा कि व्यूह इस तरह बनाया जाता है। मैंने अर्जुन की गति-विधि देखकर ऐसी जगह ससप्तकों को रखा है कि अर्जुन समझेंगे।"

कहते-कहते कर्ण की दृष्टि दूसरी तरफ गई। महावीर भीमसेन आज अग्रणी थे। उनकी चोटों से कौरवों की सेना विकल थी। कितने ही शूर और सामंत प्राण दे चुके थे। कर्ण ने शल्य से भीम का सामना करने के लिये कहा। शल्य वायु-वेग से रथ भीम के पास ले गए। कर्ण ने ललकारकर कहा—"क्या छिप-छिपाकर सेना का संहार कर रहे हो? आज तुम्हें युद्ध-कौशल सिखाता हूँ।" कहकर भीम पर कई तेज तीर मारे। भीम ने शीघ्रता से कर्ण के तीर काट दिए, और एक बाण धनुष पर चढ़ाकर, कानों तक धनुष खींचकर कर्ण पर छोड़ा। भीम का आज का लक्ष्य अव्यर्थ था, और तोमर असराजित। तीर पहाड़ को फोड़नेवाला था। कर्ण ने काटने की भरसक कोशिश की, लेकिन कुछ फल न हुआ। तीर कवच भेदकर पूरी तरह घुस गया, जिससे कर्ण को मूर्च्छा आ गई। कर्ण को बेहोश देखकर शल्य रथ भगा ले गए।

भीम अबाध गति से कौरवों की सेना का सहार करने लगे। आज भीम की गति का रोध करे, ऐसा कौरवों मे कोई न था। जैसे लहलहाते हुए पुष्प और पत्रों के हरे वन को एक छोर से दूसरे छोर तक दावाग्नि जलाती हुई चली जाती है, वैसे ही भीमसेन कौरवों का सहार कर रहे थे। भीषण वर्षा का जल जिस तरह रोका नही जाता, तमाम भूमि को डुबाता हुआ बेरोक-टोक बहता जाता है, उसी तरह भीम की शक्ति का मुकाबला कोई कर नही सका। दुर्योधन को सेना की रक्षा के लिये बडी चिंता हुई। पास ही दु.शासन को खड़ा देखकर उन्होंने कहा—"भाई, भीम आज अमित विक्रम से सेना का संहार कर रहा है। तुम भीम की गति रोको, और उसका प्राणांत कर मुझे संतोष दो।"

दुर्योधन की आज्ञा शिरोधार्य कर दु.शासन भीम के सामने आए, और ललकार कर बोले—"भीम, कायर की तरह क्या सेना का नाश कर रहे हो? आज, आओ, हमारा-तुम्हारा फैसला हो जाय।" यह कहकर दु.शासन गदा लेकर, मैदान मे कूदकर आ गए।

उन्हे देखकर भीम ने भी गदा सँभाली और हँसकर कहा—"अंध पिता के अंध पुत्र, तुम्हारी खोज में मैं बहुत दिनों से था। बराबर तुम अपने रक्षकों से बचते रहे। आज तुम्हारा अंतिम समय आ गया है। तैयार हो जाओ।"

दोनो मतवाले हाथी की तरह भिड़ गए। दुःशासन और भीम का गदा-युद्ध देखने लायक हुआ। तमाम सेना दोनो वीरो के दाँव-पेच देखने लगी। दु.शासन फुर्तीले थे। कई वार भीम पर किए, परंतु महाबली भीम ने उनके कुल वार रोके। मंडलाकार घूमते, वार करते, बचाते, झेलते काफी देर हो गई। दोनो एक दूसरे के प्राण लेने पर तुले थे। दोनो क्रुद्ध-क्रुद्ध थक आए। इसी समय भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आई। वह पूरी शक्ति से दु.शासन पर प्रहार करने लगे। दु.शासन थक गए थे। प्रहार झेलते-झेलते बेदम हो गए। इसी समय भीम ने उनके सिर पर गदा मारी। दु.शासन ने वार बचाया, पर हाथ ढीले पड़ गए, वार नहीं झिला, सिर पर चोट आई, वह वही बेहोश होकर गिर गए। उनके गिरते ही

कौरवों में हाहाकार मच गया। भीम गिरे हुए दुःशासन के पास पहुँचे, और उनकी छाती फाड़कर उनका खून पीने लगे। भीम का यह कृत्य और भयंकर मूर्ति देखकर, कौरवों की सेना डरकर भगने लगी। भीम का रूप उस समय राक्षस-जैसा डरावना हो रहा था। दुःशासन का रुधिर पान कर, भीम मस्त होकर विचरण करने लगे। उनके सामने से सेना भय खाकर भागने लगी।

★ युधिष्ठिर का भागना

इसी समय कर्ण की मूर्च्छा टूटी। उन्हे मालूम हुआ कि भीम ने दुःशासन का वध किया। सुनकर बड़ा क्रोध हुआ। अभी तक संध्या नही हुई थी। वह रथ पर बैठकर फिर मैदान मे आए। उन्हे देखकर कौरवों की जान में जान आई। अपने सेनापति के साथ ये पांडवों पर टूटे। अर्जुन अभी तक संसप्तकों से निपट नहीं सके थे। उनका पूरा-पूरा विनाश करने पर तुले थे कि कर्ण ने रथ बढ़वाकर युधिष्ठिर को आ घेरा। नकुल कुछ देर लड़े, पर कर्ण ने उन्हें बात-की-बात में घायल कर दिया, फिर युधिष्ठिर से लड़ने लगे। कर्ण के मुकाबले के लिये पांडवों में अर्जुन के सिवा दूसरा वीर न था। युधिष्ठिर कुछ देर तो लड़े, पर बाद को विवश हो गए। कर्ण की तेज चोटों से उनका शरीर जर्जर हो गया। सारथि पकड़े जाने के भय से उनका रथ भगा ले गया। कर्ण अप्रतिभ वेग से पांडवों की सेना का संहार कर रहे थे।

अर्जुन अब तक संसप्तकों से लड़ रहे थे। उनका संहार कर वह अपनी सेना को देखने के लिये बढ़े। उन्हें यह भी याद आया कि कहीं धर्मराज पकड़ न लिए गए हों। सेना मे आने पर उन्हें मालूम हुआ, कर्ण ने युद्ध मे युधिष्ठिर का बड़ा अपमान किया है, उन्हे तीरों से जर्जर कर दिया है, अब तक वह पकड़ भी लिए गए होते, लेकिन सारथि रथ भगाकर उन्हें शिविर मे ले गया है। यह खबर मिलने पर अर्जुन को धैर्य हुआ। उन्होंने कृष्ण से कहा—"सखा, पहले मैं धर्मराज को देखना चाहता हूँ। उनकी हालत समझकर कर्ण से समर करूँगा।" कृष्ण शिविर की ओर रथ ले गए।

नन्दिघोष-रथ पाण्डव-शिविर की ओर बढ़ा। महाराज युधिष्ठिर बिस्तर पर पड़े कराह रहे थे। कर्ण के प्रहारों से अंग-अंग जर्जर हो गया था। कृष्ण और अर्जुन सशंकित-से शिविर के भीतर गए। देखा, राजवैद्य बैठे हुए

धर्मराज युधिष्ठिर की मरहम-पट्टी कर रहे है, युधिष्ठिर पीड़ा से छटपटा रहे हैं।

कृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया। इन्हे देखकर दर्द से भरे, रुंधे कंठ से युधिष्ठिर ने पूछा—"कृष्ण, अर्जुन, तुम लोग सकुशल तो लौटे ? हमें बड़ा हर्ष है कि बिना एक तीर चुभे, तुमने कर्ण का संहार किया। सेना विपत्ति से बच गई। कर्ण बड़ा निर्दय और क्रूर था। वह सदा कौरवों के आगे रहता था, और पांडवों की सेना का विनाश करता था। हमारी जो दुर्दशा भीष्म, द्रोण, कृप और अश्वत्थामा से नहीं हुई, वह आज कर्ण ने की। हम केवल मृत्यु के घर से लौटे हैं। यहाँ भागकर, प्राण बचाकर आए हैं।

युधिष्ठिर की बातें अर्जुन को बहुत ही अपमान-जनक मालूम दीं। उन्होंने म्यान मे तलवार खींच ली। देखकर, घबराकर कृष्ण ने अर्जुन का हाथ पकड़ लिया, कहा—"पार्थ, यह बहुत बड़ा अनर्थ है, तुम्हारी विचार-शक्ति जाती रही, यह बड़े दुःख की बात है, तुम धर्मराज पर हाथ उठा रहे हो, इस तरह तुम्हारी पुण्य-शक्ति क्षीण हो जायगी, फिर शत्रु पर तुम विजय न प्राप्त कर सकोगे।"

"माधव," अर्जुन ने कहा—"हम क्षत्रिय हैं, हमारे शस्त्र को धिक्कार

देने पर हम नहीं बरदाश्त कर सकते। हमारा कसूर कुछ होता, तो कोई बात न थी। तुम्हें अच्छी तरह मालूम है, यहाँ आने का मतलब केवल धर्मराज को देखना था। इस हित में धर्मराज का यह अहित-वचन किस तरह सह्य हो?"

"भाई," कृष्ण ने कहा—"धर्मराज की भर्त्सना में भी स्नेह था। तुमने खयाल नहीं किया। उन्हें कर्ण से युद्ध करने गहरी चोट पहुँची है। इसीलिये ऐसी बातें तुम्हें कहीं। तुम्हारे-जैसे वीर भाई के रहते उनकी यह दशा हो, उन्हें दुःख पहुँचे, यह उन्हें वांछनीय नहीं, और यह किसी प्रकार की भर्त्सना नहीं, बल्कि अकृत्रिम स्नेह है।"

अर्जुन को बिगड़ा हुआ देखकर युधिष्ठिर ने कहा—"मैं कायर हूँ, जो समर-क्षेत्र से भाग आया। मैं हतभाग्य हूँ, जो मेरे कारण मेरे परिवार को दुःख पहुँचा। मैं अधार्मिक हूँ, क्योंकि मेरे ही कारण मेरे कुल-कुटुंबियों का नाश हुआ। अर्जुन, तुम वीर हो, पुरुषार्थी हो, तुम्हारा मुझे शाप देना है। मैंने बड़ा बुरा कर्म किया, जो तुम्हें कटु वचन कहा। तुम मुझे क्षमा करो।"

बड़े भाई की यह दीनता देखकर, उनके विनीत शब्द सुनकर अर्जुन वहीं गड़ गए। दुखी होकर बोले—"महाराज, मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। मुझे क्षमा करें। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, आपको दुःसह कष्ट पहुँचाने-वाले कर्ण का आज संहार किए बिना आपको मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

यह कहकर, क्षमाशील युधिष्ठिर की पद-धूलि सिर पर धारण कर अर्जुन वहाँ से विदा हुए।

★ कर्ण-वध

घनघोर लड़ाई हो रही थी, फिर भी समय था। दुःशासन के वध की अर्जुन को खबर मिली। वह उग्र रूप में लड़ते हुए भीम से मिले। उनके चरण छुए। अब आज सीधे कर्ण का सामना था। दोनों सेनाएँ पूरे उत्साह से, अपनी-अपनी विजय की आशा से, अपने-अपने मुकाबले के योद्धा से, भिड़ी थीं : कर्ण और अर्जुन भी निश्चित होकर एक दूसरे के सामने आए। युद्ध का श्रीगणेश होते ही, कुछ क्षण बाद, कर्ण ने अर्जुन के गांडीव का गुण काट दिया। गुण के कटते ही तीर-निक्षेप असंभव हो गया। साथ ही, कर्ण में जो एक गुण और था—वह अविराम शर-वर्षा कर सकते थे, उसकी सार्थकता हो गई। जब तक अर्जुन दूसरा गुण चढ़ाते रहे, कर्ण ने शरों से उन्हें जर्जर कर दिया। पांडव-दल के दूसरे योद्धाओं ने कर्ण के चलाए तीर काटने की कोशिशें कीं, पर वे व्यर्थ गईं। कृष्ण और अर्जुन दोनों बुरी तरह घायल हुए। उनके बदन से खून के फ़ौवारे छूटने लगे। देखकर कौरवों को बड़ा हर्ष हुआ। सेना कर्ण का बार-बार जयनाद करने लगी।

धैर्य से अर्जुन ने गुण चढ़ा लिया, और उलटे कर्ण की दशा शोचनीय कर दी। तीरों से पृथ्वी-अंतरिक्ष और कर्ण के रथ के सभी पार्श्व छा दिए। कर्ण का धनुष टूटा, और कई चोटें लगीं। शल्य भी जर्जर हो गए। अर्जुन और कर्ण का अद्भुत युद्ध दोनों सेनाएँ खड़ी एक निगाह से देख रही थीं। पांडव-सेना पूरे उत्साह से अर्जुन की जय-ध्वनि करने लगी।

कर्ण को क्रोध आ गया। उन्होंने तत्काल दूसरा धनुष लेकर आग्नेय अस्त्र छोड़ा। अस्त्र की आग में अर्जुन के तमाम शर जलकर बेकार हो गए। आग पांडव-सेना की ओर बढ़ने लगी। देखकर अर्जुन ने वरुण-अस्त्र छोड़ा,

घार के छूटने के साथ आकाश में बादल घुमड़ने लगे, और वर्षा होने लगी। कर्ण ने वायव्य अस्त्र छोड़ा, जिससे तमाम बादल हवा से कट-छँट गए, और आसमान बिलकुल साफ हो गया। अर्जुन ने आँधी उठी हुई देखकर नागास्त्र छोड़ा। देखते-देखते आकाश में लाखों नाग लहराने लगे, और साँसों में कुल हवा भर ली। नागास्त्र से कौरव-दल विचलित हुआ देखकर कर्ण ने गरुड़ास्त्र छोड़ा। अस्त्र आकाश में छुटते ही, उससे हजारों-लाखों गरुड़ पैदा हो गए, और कुछ क्षण में साँपों को पकड़-पकड़कर खा गए। कर्ण के इस अस्त्र की काट नारायणास्त्र अर्जुन के पास था, लेकिन यह अस्त्र मनुष्य-युद्ध में वर्जित था, इसलिये अर्जुन सिर झुकाकर, गरुड़ास्त्र के प्रभाव रहने तक चुप रहे। इससे पांडवों की कुछ सेना का नाश हुआ। कौरव कर्ण की जय बोलने लगे।

अर्जुन धैर्य के साथ साधारण अस्त्रों से लड़ते रहे। वह चाहते, तो दिव्य अस्त्र छोड़कर उसी समय कर्ण के साथ कौरव-सेना को भस्म कर सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वह मानवीय युद्ध से ही कर्ण को जीतना चाहते थे। पल-पल में अर्जुन के तीर निशाने पर अव्यर्थ बैठने लगे। देखते-देखते अर्जुन का हाथ तेज से और तेज हो गया। फिर दाएँ-बाएँ दोनो हाथों से, एक-एक के थकने पर, अर्जुन तीर चलाने लगे, और कर्ण को घायल कर दिया। कौरवों की सेना का भी नाश किया। देखनेवाले अनिमेष दृष्टि से अर्जुन की वह क्षिप्रता देखते रहे। कर्ण को मदद करनेवाली सेना का प्रायः नाश हो गया। देखकर कर्ण विचलित हो गए। अधीर होकर उन्होंने अर्जुन पर छोड़ने के लिये दिव्य शक्ति निकाली।

शर को देखते ही शल्य डरे, कहा—"कर्ण, इससे अर्जुन का नाश न होगा, कोई और अच्छा तीर निकालो।"

कर्ण ने कहा—"पहला तीर हाथ में रहते कर्ण दूसरा तीर नहीं चलाता।" कहकर तीर छोड़ दिया।

बाण के छूटते ही कृष्ण समझ गए। उन्होंने घोड़ों को घुटनों के बल बैठा दिया। इस तरह अर्जुन का सिर झुक गया। तीर अर्जुन के गले में न लगकर इंद्र के दिए किरीट पर लगा, जिससे किरीट कट गया। अर्जुन बच गए।

उत्तरोत्तर कर्ण और अर्जुन युद्ध में प्रबल पड़ते गए। अब तक सैकड़ों उपाय दोनों ने एक दूसरे को मारने के लिए, पर कोई सफल नहीं हुआ।

कर्ण और अर्जुन का यह युद्ध देखकर देवता भी दंग रह गए। तीरों की ऐसी लड़ाई अब तक किसी ने देखी नहीं थी। अर्जुन अब तक पहले की तरह धीर, अविचल थे। यद्यपि वह शर-चालना में बड़ी ही फुर्ती से काम ले रहे थे, फिर भी उनमें थकान या चचलता न आई थी। कर्ण अधीर हो गए थे। उनकी अधीरता बढ़ रही थी, ज्यों-ज्यों अर्जुन के हाथ तेज़ हो रहे थे। इस समय कर्ण परशुराम की सिखलाई शस्त्र-विद्या एक तरह भूल-से रहे थे। ज्यों-ज्यों दाँव-पेच याद नही आ रहे थे, चिढ बढ रही थी।

इसी समय एक दुर्घटना हुई। कीच में कर्ण के रथ का एक पहिया धँस गया। रथ की गति अचल हुई देख कर्ण बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने पुकारकर कहा—"हे अर्जुन, धर्म-युद्ध के अनुसार तुम्हें इस समय कुछ देर के लिये रुक जाना चाहिए, मेरे रथ का पहिया कीच मे फँस गया है, उसे निकाल लूं। कुछ देर दया करो।"

अर्जुन ने कहा—"कर्ण, धर्म-युद्ध का ज्ञान तुम्हें तब नहीं हुआ, जब अभिमन्यु अकेला सात रथियों से लड रहा था। सूतपुत्र, अब जब अपने सिर आ पड़ी, तब धर्म का ज्ञान हुआ है? विराट के यहां जब गोधन चुराकर चले थे, तब, जिन गौवों के खुरों में रोग था, वे गौएँ बैठ-बैठ जाती थी, उन्हे कितने धर्म-ज्ञान से तुम पीट-पीटकर उठाते और भगाते थे? तुम्हे सम्मुख समर में शत्रु से दया की भीख माँगते, धर्म का ज्ञान देते लज्जा नही लगती?"

कर्ण समझ गए कि प्रार्थना व्यर्थ है। वह रथ से कूद पड़े, और एक तीर ऐसा मारा कि वह अर्जुन का वर्म भेदकर छाती में चुभ गया। अर्जुन कुछ देर के लिये संज्ञा-हीन-से हो गए। इसी अवसर पर कर्ण पहिया निकालने लगे। पहिया निकालते हुए वे पैर से धनुष पकड़कर तीर चलाते जाते थे, और एक हाथ से पहिया निकाल रहे थे। पहिया इतना धँस गया था कि एक हाथ से निकल नहीं रहा था। अर्जुन को निष्क्रिय देखकर, समय समझकर, कर्ण दोनो हाथों से पहिया निकालने लगे। इसी समय अर्जुन प्रकृतिस्थ हुए। कर्ण को निरस्त्र देखकर उन्होंने उन पर तीर नहीं छोड़ा। देखकर कृष्ण ने कहा—"पार्थ, यही समय है, कर्ण का वध करो। यदि पहिया निकालकर वह रथ पर बैठ गए, तो महारथ कर्ण का तुम कदापि वध नहीं कर सकोगे।"

कृष्ण के कहने के साथ अर्जुन ने एक तीर कर्ण को मारा। तीर कर्ण के ऐसा लगा कि उनका सिर धड़ से विलग हो गया। कर्ण काम आ गए, देखकर कौरव-सेना हाहाकार करने लगी। पांडवों के हर्ष का वारापार न रहा। भीमसेन यह अद्भुत युद्ध देख रहे थे। वह दौड़कर अर्जुन के रथ पर चढ़ गए, और बड़े स्नेह से उन्हें गले लगा लिया।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—"महाराज, आज वीरवर कर्ण रथ का पहिया निकालते हुए, अर्जुन के तीर से काम आ गए। उनका तेज निकलकर सूर्य में समा गया।" धृतराष्ट्र महारथ कर्ण का वध हुआ सुनकर वहीं मूच्छित हो गए। दुर्योधन के शोक का अंत न था। कर्ण ही उनके अतरंग मित्र थे। सूर्य अस्त हो चुका था। लड़ाई बंद हो गई। दुर्योधन आज सब दिनों से अधिक चिंतित हुए, धीरे-धीरे शिविर को लौटे।

शल्यपर्व

★ सेनापति शल्य

महाभारत का सत्रह दिन का समर समाप्त हो गया। युद्ध-भूमि लाशों से पट गई। कही हाथी कटे पड़े हैं, कही घोड़े, कही टूटे रथ, कही मरे हुए आदमी। कही सिर, कही धड़। तमाम युद्ध भूमि एक महाश्मशान बन गया है। राजे-महाराजे और साधारण सिपाही, सबकी एक दशा है। लाशें सड़ रही हैं, मारे दुर्गंध के रहा नही जाता। गीधों और स्यारों का जमघट लगा रहता है। भूमि इतनी भयंकर मालूम देती है कि उसकी तरफ देखने का साहस नही होता। कही से घायलों की चीत्कार आ रही है, कही से स्यारों की आवाज़।

दुर्योधन कर्ण के वध के बाद हिम्मत हार गया। परंतु लोभ नही छूटा, न राजमद गया। ग्यारह अक्षौहिणी सेना में बहुत थोड़ी बच रही थी। पांडवों की सेना कुछ अधिक थी। दुर्योधन के सभी भाई भीम द्वारा निहत हो चुके थे। रात्रि के समय मंत्रणागार में दुर्योधन चिंतित भाव से बैठा हुआ था।

कृपाचार्य ने कहा—"हमारे दल के सभी वीर एक-एक करके हत हो गए; महामति भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथ कर्ण और सैकड़ों रथी-महारथी राजकुमार वीर युद्धायुद्ध में प्राण छोड़कर स्वर्ग सिधार गए है। जान पड़ता है, विजय-लक्ष्मी पांडवों से प्रसन्न है। उनके वीर अर्जुन, भीम, सात्यकि अभी तक बचे हुए हैं। मेरी राय में अब युद्ध न करके संधि कर लेना श्रेयस्कर होगा।"

कृपाचार्य की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा—"आचार्य कृप, आप उचित कहते हैं। परंतु पांडव अब जीते हुए हैं। वे संधि क्यों करेंगे? यदि उनका पक्ष हारा हुआ होता, तो यह बात संभव थी। दूसरे, मैं राजा होकर इस समय सिर झुकाऊंगा, तो लोग हंसेंगे, जिंदगी-भर मेरे सिर यह अवज्ञा चढ़ी

रहेगी। प्रजाजनों के आगे दृष्टि नीची हो, इससे मृत्यु अच्छी है। मैं अब सिर नहीं झुका सकता। फिर अभी हमारे पक्ष में बिलकुल अँधेरा नहीं हुआ। आशा की किरण अभी है। अभी मामा शल्य है, आप हैं, दोनों पक्षों को एक क्षण में जीत लेने की शक्ति रखनेवाले महारथ अश्वत्थामा भी हैं। युद्ध जारी रखना चाहिए। मैं समझता हूँ, अब हमारे पक्ष का सेनापतित्व शल्य मामा को दिया जाय। वह निश्चय पांडवों को परास्त कर कौरवों का मुख उज्ज्वल करेंगे।"

राजा की बात से सभासद् वाह-वाह करने लगे। उत्साह के समय कोई भी निरुत्साह नहीं हुआ। देखकर दुर्योधन को बड़ा हर्ष हुआ। शल्य सिर झुकाए बैठे रहे। अश्वत्थामा ने कहा—"हमारे महाराज ने सेनापतित्व के लिये योग्य आदमी चुना है। मद्रराज शल्य सब तरह समर्थ हैं। वह जैसे दक्ष रथी हैं, वैसे ही सारथि। धनुर्वेद में उनकी जैसी गति है, गदा-युद्ध, असि-युद्ध और मल्ल-युद्ध में भी वह वैसे ही निपुण हैं। उनके सेना-पतित्व में हम लोग युद्ध करने के लिये तैयार हैं। हमें विजय की पूरी-पूरी आशा है।"

अश्वत्थामा की बात से प्रसन्न होकर दुर्योधन ने शल्य से कहा—"हे मद्रराज, अब हमारे आशा-भरोसा आप ही हैं। आपने युद्ध में जैसे विक्रम का परिचय दिया है, वह अलौकिक है। आप हमारे परम मित्र हैं। नकुल-सहदेव के सगे मामा होकर भी, आप निमंत्रण पाकर, हमारे पक्ष से लड़े, और युद्ध में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया। आप-सा हमारा निकटतम मित्र दूसरा नहीं। आपका उपकार कभी भुलाया नहीं जा सकता। आपने जैसे अब तक हम पर कृपा की है, वैसे ही, अब सेनापति-पद ग्रहण कर युद्ध में हमारा और हमारी सेना का त्राण कीजिए, विजय-लक्ष्मी आपका वरण करे।"

शल्य ने कहा—"हे कुरुराज, आपकी आज्ञा मैं शिरोधार्य करता हूँ। मुझसे अब तक आप हमारा एकदम सत्कार करते आए हैं। मैं भी आपको दूसरी दृष्टि से नहीं देखता। क्षत्रिय की दृष्टि में क्षत्रियत्व का ही आदर-सम्मान है, मैं इसलिये आपके पक्ष में सम्मिलित हुआ। और अन्त तक आपके पक्ष में रहूँगा। आपकी विजय के लिये अपनी पूरी शक्ति से पांडवों के विरुद्ध मैं युद्ध करूँगा।"

शल्य की बातों से सभा में उत्साह छा गया। समवेत वीर उनकी जय बोलने लगे। दुर्योधन ने अपने आदमियों को आज्ञा दी, उन्होंने यथा-विधि शल्य का अभिषेक किया। वीरों ने उन्हे अभिषिक्त देखकर हर्ष-सूचक ध्वनि की। दुर्योधन के आनंद का ठिकाना न रहा। फिर एक बार पांडवों पर होती हुई विजय की आशा बँध गई।

★ शल्य-वध

प्रात.काल पहले के अनुसार दोनो दलों की सेनाएँ मैदान मे आईं। शल्य सेनापति के रूप से सजे हुए सेना के सामने दिखाई पड़े। उन्होंने कौरवों की सेना का सर्वतोभद्र व्यूह तैयार किया, और व्यूह के द्वार पर मद्रदेश की अपनी सेना लेकर रहे। महाराज दुर्योधन व्यूह के मध्य भाग मे, कौरव-सेना लेकर रहे। बाईं ओर ससप्तकों को लेकर कृतवर्मा रहे, दाईं ओर यवन-सेना के साथ कृपाचार्य। अश्वत्थामा कंबोज-सेना के साथ पृष्ठ-रक्षा करने लगे। शकुनि और उलूक सामने आक्रमण करने के लिये अश्वारोही सेना लेकर रहे।

शल्य की स्फूर्ति और धनुष-टंकार सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—"भाई, आज मामा शल्य सेनापति हैं। आज इनसे हम युद्ध करेंगे। तुम चिंता न करना। अब द्रोण और कर्ण का भय नहीं रहा। तुम इन बचे हुए संसप्तकों से लड़ो। भीम कृपाचार्य की सेना का मोर्चा लें। नकुल और सहदेव शकुनि और उलूक से लड़ें।"

धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार संग्राम छिड़ गया। धृष्टद्युम्न, शिखंडी और सात्यकि युधिष्ठिर के सहायक हुए। शल्य पूरी शक्ति से पांडवों की सेना का संहार कर रहे थे। देखकर युधिष्ठिर ने रथ बढ़ाया, और शल्य की गति का रोध किया। शल्य ने युधिष्ठिर को सामने आया देखकर रथ रोकवा दिया। दोनो योद्धा एक दूसरे पर बाण-वर्षा करने लगे। युधिष्ठिर का युद्ध आज आश्चर्य मे डालनेवाला था। पल-पल पर कितने ही तीर वह शल्य पर मारते थे। पर शल्य को एक भी चोट न लगी, बल्कि उन्होंने युधिष्ठिर के तीर काटकर उन्हें ही बाणों से पाट दिया। कुछ तीर युधिष्ठिर के लगे भी। देह से खून के फ़ौवारे छूटने लगे। पर युधिष्ठिर अविराम

गति से युद्ध करते गए। इसी समय शल्य ने युधिष्ठिर का धनुष काट दिया। इससे युधिष्ठिर बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने दूसरा धनुष लिया, और एक साथ कई तीर इस प्रकार मारे कि शल्य का सारथि और घोड़े मर गए। शल्य को फँसा देखकर अश्वत्थामा आगे बढ़े, और तुरत शल्य को अपने रथ पर बैठा लिया। पांडवों को युधिष्ठिर की विजय पर बड़ा हर्ष हुआ। सेना जय बोलने लगी। शल्य से यह अपमान सहा न गया। वह दूसरे रथ पर चढ़कर उसी समय मैदान में आ गए, और बड़ी क्षिप्रता से युधिष्ठिर से लड़ने लगे। युधिष्ठिर की मदद के लिये इस समय पांडव, पंचाल और सोमक आ गए, और तीन तरफ से शल्य को घेर लिया। देखकर अन्य कौरवों को लेकर तुरत दुर्योधन वहाँ पहुँचे। घमासान युद्ध होने लगा। इसी समय शल्य ने एक तीर ऐसा मारा कि वह युधिष्ठिर के लगा, पर चोट गहरी न पहुँची। युधिष्ठिर क्रुद्ध हो गए। उन्होंने शल्य को एक बाण कान तक धनुष खींचकर मारा, जिसके लगते ही शल्य को मूर्च्छा आ गई। इसी समय कृप ने एक तीर मारा, जिससे युधिष्ठिर का सारथि मर गया। शल्य की क्षणिक मूर्च्छा हटी, वह धनुष पर तीर चढ़ाने लगे। युधिष्ठिर को बिना सारथि का देखकर भीम ने ऐसा बाण मारा कि शल्य के धनुष के दो टूक हो गए। शल्य जब तक दूसरा धनुष लें, भीम ने उनके घोड़ों को मार डाला।

चारों ओर से शल्य पर आक्रमण हो रहे थे। देखकर शल्य घबरा गए। उन्हें कोई उपाय न सूझा। तब वह ढाल और तलवार लेकर युधिष्ठिर को मारने के लिये रथ से कूद पड़े। भीमसेन ने देखा कि क्षण-भर में शल्य धर्मराज के प्राण ले लेंगे। उन्होंने उसी क्षण एक ऐसा बाण मारा कि मूठ के पास से शल्य की तलवार के दो टूक हो गए। तलवार को व्यर्थ हुई देखकर भी शल्य हिम्मत नहीं हारे। वह बढ़ते हुए युधिष्ठिर के पास पहुँचे। पर युधिष्ठिर ने शल्य पर एक सुरक्षित शक्ति का वार किया। कोई बचाव न था। शक्ति शल्य के लगी। उनका सिर धड़ से जुदा हो गया।

पांडव-सेना जयनाद करने लगी। कौरवों में हाहाकार मच गया। सेना-पति के काम आने पर कौरव-सेना भागने लगी। पांडव-सेना ने पीछा किया। सैनिकों के भागने और पीछा करने से मैदान में इतनी धूल उड़ी कि कुछ नज़र न आता था। दुर्योधन अपनी सेना का पलायन देख नहीं सके। उन्होंने कहा—"सारथि, हमारी सेना भाग रही है, इसलिये हमारा रथ मोर्चे पर ले

चलो, हमें लड़ता हुआ देखकर हमारी सेना लौट आएगी। दुर्योधन को सामने गया देखकर बचे हुए ग्यारह भाई मदद के लिये गए। अर्जुन और भीम से लोहा लेना था। भीम दुर्योधन के भाइयों को देखकर क्रुद्ध काल की तरह युद्ध करने लगे। सेना को जब मालूम हुआ कि महाराज दुर्योधन अकेले युद्ध कर रहे हैं, वह लौट पडी, और अपने राजा की, प्राणों की बाजी लगाकर, सहायता करने लगी। भीमसेन के प्रहार बड़े विकट हो रहे थे। दुर्योधन के भाई उनमे आत्मरक्षा नही कर सके। एक-एक कर सब काम आ गए। अकेले दुर्योधन बच रहे। अब तक कौरवो की बहुत थोडी सेना रह गई थी। प्राय पाँच-सौ घोडे, दो-सौ रथ, सौ हाथी और तीन-हजार पैदल।

इसी समय सहदेव को अपनी प्रतिज्ञा याद आई। वह बाज की तरह शकुनि पर झपटे, लेकिन शकुनि के पुत्र उलूक ने सहदेव को रोका। दोनो में घोर युद्ध होने लगा। सहदेव क्रुद्ध थे ही। उन्होंने एक ऐसा तीक्ष्ण तीर मारा कि उलूक का वर्म भेदकर हृदय में पूरे फलक के साथ चुभ गया। उलूक के प्राण निकल गए। शकुनि ने अपनी आँखों अपने प्यारे पुत्र के प्राण निकलते देखा, जिससे उसे बड़ा क्षोभ हुआ। स्वभाव के पतित-जन शोक के समय हृदय का बल बिलकुल खो देते हैं। शकुनि निस्तेज हो गया। उसे क्रोध भी हुआ, जो कमजोरी का दूसरा कारण है। वह काँपता हुआ सहदेव का सामना करने के लिये आगे आया। सहदेव ने कहा—"शकुनि, अब तक तुम बहुत बचे। तुम समझ लो कि अब तक बड़े-बड़े वीरों के सामने तुम्हें किसी ने पूछा नहीं। आज तुम्हारा काल सिर पर मँडरा रहा है। यह समर-क्षेत्र है, द्यूत-क्रीड़ा-स्थल नहीं। आज तुम्हारे सब दिनों के पाप निकलेंगे, नारकी!" कहकर सहदेव ने शकुनि पर वार करना शुरू किया। शकुनि को सहायता देनेवाली सेना बहुत थोड़ी थी। उसने देखा कि धनुर्वेद में सहदेव अधिक शिक्षित है, उनके सम्मुख कुछ देर ठहरना भी मुश्किल है। यह सोचकर वह तलवार लेकर मैदान में उतर पड़ा। सहदेव ने तीर मारकर उसकी तलवार काट दी। तब प्रास-नामक अस्त्र उसने सहदेव पर चलाना चाहा। परंतु सहदेव ने उसी वक्त अस्त्र-समेत उसके दोनो हाथ काट डाले। शकुनि बिलकुल निरुपाय हो गया। इधर-उधर देखा, कोई भी सहायता करनेवाला न था। उसने जिनके लिये अधर्म किया था, वे आज

अन्तिम समय में कोई न थे। उसे विदुर का उपदेश याद आया, साथ ही भय से विभीषिका देखने लगा, इसी समय सहदेव का एक पैना तीर चमकता हुआ आया, और शकुनि के गले में लगा। शकुनि वहीं असहाय अवस्था में जूझ गया।

★ दुर्योधन-वध

शकुनि के मरने के बाद कौरवों में हाहाकार मच गया। जितनी सेना थी, प्रायः सब भीम और अर्जुन के हाथों मर चुकी थी। अश्वत्थामा और कृपाचार्य-जैसे गिने-गिनाए कुछ ही योद्धा बच रहे थे। दुर्योधन ने देखा, ग्यारह अक्षौहिणी सेना महायुद्ध में काम आ गई। दुर्योधन को महामृत्यु से वैराग्य हुआ। वह अकेले गदा लेकर, मैदान छोड़कर पैदल एक तरफ निकल गए। कुछ दूर पर उनके बनवाए सरोवर में एक स्तंभ था। उसके भीतर छिपने की जगह थी। वही जाकर वह छिप रहे। जिस समय वह सरोवर के किनारे जा रहे थे, कुछ इतर जन पांडवों के लिये गाँवों से मछली-मांस लेकर आ रहे थे। उन्होंने दुर्योधन को सरोवर में धँसते देखा।

दुर्योधन के चले जाने पर मैदान खाली हो गया। पांडवों ने देखा, दुर्योधन मरा नहीं। सोचा, कहीं गायब हो गया है। कृष्ण ने कहा—"बिना दुर्योधन का वध किए पूरी विजय नहीं कही जा सकेगी, फिर दुर्योधन बड़ा ही नीच है, उसके जीते राज्य निष्कंटक न होगा। कोई-न-कोई उपद्रव फिर खड़ा करेगा, इसलिये हमें यह चाहिए कि उसकी खोज करके अभी उससे युद्ध और उसका वध किया जाय।"

कृष्ण की बात सबको पसन्द आई। पाँचो पांडव और बचे हुए सेना-पति दुर्योधन की खोज करने लगे। इसी समय वे ग्रामीण-जन आते हुए देख पड़े। पूछने पर उन्होंने कहा—"आगे उस सरोवर में एक मुकुटधारी वीर को धँसते हुए हमने देखा है, वह गदा लिए हुए था।" सब लोग समझ गए कि वही दुर्योधन है। कृष्ण के साथ सब उस सरोवर की तरफ बढ़े। कुछ देर बाद वह सरोवर मिला। उसके बीच में एक स्तंभ था। कृष्ण ने अनुमान किया कि इसके भीतर छिपने की जगह अवश्य होगी। किनारे देखा,

तो एक आदमी के पैर के निशान बने थे। लेकिन उलटे निशान थे, जैसे कोई सरोवर में गया हो, निकला न हो !

पैर के चिह्न सबने देखा। युधिष्ठिर ने कहा—"यह दुर्योधन का ही पैर है, क्योंकि इस निशान में पद्म का चिह्न है, दुर्योधन के पैर में भी पद्म का चिह्न है।"

कृष्ण ने धीरे-से भीम से कहा—"भीम, तुम दुर्योधन को ललकारो, और व्यंग्य कहो, दुर्योधन तीखे स्वभाव का व्यक्ति है, वह कटूक्ति सुनकर पानी के भीतर नहीं रह सकेगा, बाहर निकल आएगा, तब युद्ध में उसे परास्त करके उसका वध करना।

भीम सरोवर के किनारे से दुर्योधन को ललकारने लगे—"रे अंध-पुत्र, तू अक्ल का भी दुश्मन था। पहले तुझे नहीं सूझा कि मैं पांडवों से युद्ध नहीं कर सकता। पहले तूने संधि भी नहीं की। देश के वीरों को कटाकर भाइयों की जान लेकर, अब खंभे के भीतर जाकर छिपा है! धिक्कार नरा-धम! जरा भी तुझे क्षत्रियत्व का गर्व हो, तो निकल आ बाहर। लेकिन तू क्या निकलेगा। जान लेकर भगनेवाले कायर! तूने सिद्ध कर दिया कि अस्ल में तू कैसा था!"

भीम कटूक्ति कह ही रहे थे कि दुर्योधन पानी से बाहर निकल आया। इसी समय उसके गुरु बलराम तीर्थ-यात्रा करते हुए उधर से जा रहे थे। कृष्ण से मिलने के उद्देश्य से वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर दुर्योधन ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। बलराम दुर्योधन के गदा-युद्ध के गुरु थे; महाभारत-युद्ध का फल उन्हें मालूम हो चुका था। शांत चित्त से उन्होंने दुर्योधन को आशीर्वाद दिया। दुर्योधन ने कहा, गुरुदेव, आप बड़े अच्छे समय में उपस्थित हुए हैं; इस समय आपके अलावा मेरा हितचिंतक कोई नहीं। बलराम ने आश्वासन दिया कि उनके रहते किसी प्रकार का अन्याय न हो पाएगा।

कृष्ण ने कहा—"कुरुराज", अब आप युद्ध के लिये तैयार हो जाइए।"

दुर्योधन ने कहा—"मैं तैयार हूँ। लेकिन धर्म-युद्ध होगा, और निरीक्षक आपके बड़े भाई, मेरे गुरुदेव होंगे। गुरुदेव धर्म के सिवा किसी का पक्ष न लेंगे।"

कृष्ण ने कहा—"अच्छी बात है। महाराज युधिष्ठिर को यह मंजूर है।"

दुर्योधन ने कहा—"मेरे पास केवल गदा है। मैं गदा-युद्ध करूँगा।"

कृष्ण ने कहा—"पांडवों को यह भी मंजूर है।"

दुर्योधन ने कहा—"मैं अकेला हूँ, एक ही आदमी से युद्ध कर सकता हूँ।"

कृष्ण ने कहा—"यह भी सही।"

दुर्योधन ने कहा—"आखिरी बात यह है कि मैं राजा हूँ, राजा से ही युद्ध करूँगा। युधिष्ठिर लड़ने के लिये तैयार हों।" बलराम को दुर्योधन का यह तर्क पसंद आया।

कृष्ण ने कहा—"राजा वही होता है, जो राजों का मुकाबला करके, उनका वध करके राजसिंहासन को अपने अधिकार में रखता है। इस विचार से पांडवों में भीम राजा हैं। भीम से लड़िए।"

बलराम को कृष्ण की यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने निगाह बदलकर कृष्ण से पूछा—"यह कैसी बात?"

कृष्ण ने कहा—"भीमसेन बराबर युद्ध में राजों का ही मुकाबला करते आए हैं। उन्होंने जरासंध से लेकर महाभारत में राजों का ही सामना किया है, और अपने बाहुबल से उन्हें पराजित करके वध किया है। दुर्योधन के कुल भाइयों को उन्हीं ने मारा है। दुर्योधन से लड़ने की उनकी बहुत दिनों की प्रतिज्ञा भी है। वह भरी सभा में अपनी प्रतिज्ञा सबको सुना चुके हैं।"

प्रतिज्ञा की बात सुनकर बलराम खामोश रह गए। दुर्योधन को भीम की प्रतिज्ञा याद आई। कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा रहा, फिर लड़ने के लिये तैयार हो गया।

भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध के लिये मैदान में उतरे। दोनों गदा लिए हुए मण्डलाकार घूमते रहे। फिर एक दूसरे पर वार करने लगे। गदाओं की टक्करों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बलराम अतृप्त आँखों से दुर्योधन की फुर्ती देखते रहे। उन्हें निश्चय हो गया कि इस युद्ध में दुर्योधन विजयी होगा। अब तक भीम पर कई प्रहार वह कर चुका था। भीम कपि-तपकर रह गए थे। युधिष्ठिर डरे हुए थे कि भीम का दुर्योधन वध न कर डाले, क्योंकि आज युद्ध में वह प्रबल पड़ रहा है। कृष्ण स्थिर दृष्टि से भीम को देख रहे थे। वे जानते थे, भीम बल और दम में दुर्योधन से जीतेंगे। अभी दुर्योधन फुर्ती दिखा रहा है, पर कुछ देर बाद उसके हाथ ढीले पड़ जायँगे। अर्जुन बड़ी चिन्ता से भीम को देख रहे थे। वे सोच रहे थे, आज भीम को क्या हो गया है, जो इतनी देर हो गई, और अभी तक वे दुर्योधन का वध नहीं कर सके।

दोनो वीर पसीने-पसीने हो गए। दुर्योधन वार पर वार करता जा रहा था, भीम झेल रहे थे। किसी तरह भी दुर्योधन दब नही रहा था, वह थका भी नही, काफी देर हो गई। कृष्ण समझ गए कि दुर्योधन जान की बाजी लगाकर लड़ रहा है, इसीलिये वह इतना प्रबल है, भीम सधा हुआ युद्ध कर रहे हैं। इसी समय, दोनो मंडलाकार घूम रहे थे वार करने की ताक में कि भीम की दृष्टि कृष्ण पर पड़ी। कृष्ण ने बलराम की आँख बचाकर अपनी जांघ पर थपकी मारी। भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई, द्रौपदी को बैठने के लिये जांघ दिखाने पर उन्होंने जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी।

गदा-युद्ध में पेट से नीचे प्रहार करना मना है। दुर्योधन खुलकर लड़ रहा था, बलराम के निरीक्षक होने के कारण उसे विश्वास था कि अन्याय-युद्ध न होगा, उसे भीम की प्रतिज्ञा भी याद न थी। भीम के सिर पर प्रहार करने के अभिप्राय से वह उछला। उछलकर सिर पर प्रहार करना ही चाहता था कि भीम की गदा दुर्योधन की जांघ पर बैठी। गदा के लगते ही एक जांघ की हड्डी टूट गई, दूसरी में भी काफी चोट आई। दुर्योधन वहीं गिर गया। बलराम 'अन्याय-युद्ध हुआ', कहकर कुपित हो गए, और भीम को मारने के लिये बढ़े। कृष्ण ने हाथ पकड़कर भीम की प्रतिज्ञा की बात

कही। द्रौपदी के अपमान की बात से बलराम का क्रोध शांत हुआ। दुर्योधन अनाथ की तरह पड़ा रहा। विजयी पांडव अपने शिविर को लौट आए। कौरवों के यहां शोक की घटा छा गई। धृतराष्ट्र और गांधारी विलाप करने लगे।

★ अश्वत्थामा का सेनापतित्व

कौरवों में सिर्फ तीन वीर बचे थे, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। गोधूलि-वेला में इन्हें मालूम हुआ कि महाराज दुर्योधन भीम से गदा-युद्ध करते हुए अन्याय से घायल होकर मरणासन्न है। तीनों वीर उस स्थल को चले, जहां दुर्योधन घायल पड़े थे। चारों ओर युद्ध के भयंकर दृश्य थे। नाश मूर्तिमान् हो रहा था।
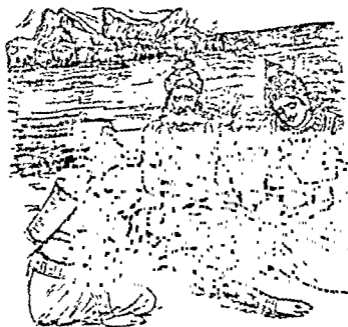
अपने पक्ष के वीरों को देखकर दुर्योधन विलाप करने लगे। कहा—"मेरा भाग्य ही मंद था, नहीं तो मेरे पक्ष में इतने बड़े-बड़े वीर थे, और मुझे युद्ध में विजय न मिली, सब-के-सब पांडवों के हाथ से मारे गए। मुझे

यही दुःख है कि संसार में सत्य और न्याय कहकर कुछ न मिला। फिर भी मुझे संतोष है कि मेरे साथी जिस राह से गुजरे हैं, मैं भी उसी राह से जा रहा हूँ। अगर यह सत्य है कि सम्मुख समर में प्राण देने पर मनुष्य को स्वर्ग मिलता है, तो मुझे स्वर्ग मिलेगा। लेकिन वीरो, भीम ने अन्याय-युद्ध के अलावा, मेरे गिर जाने पर, मेरे सिर पर पदाघात किया है।" कहकर दुर्योधन अभिमान से क्षुब्ध होकर रोने लगे।

अश्वत्थामा को बड़ा दुःख हुआ। ये वही दुर्योधन है, जो समस्त ज्ञात पृथ्वी के अधीश्वर थे। जिनके बड़े-बड़े राजे-महाराजे आज्ञाकारी थे, जिनकी इच्छा-मात्र से बड़े-बड़े राज्य बन-बिगड सकते थे। कुछ देर इस आवेश में रह अश्वत्थामा ने कहा—"महाराज, पांडवों ने आपके साथ बहुत बड़ी नीचता की है। लोग उन्हें धार्मिक समझते हैं, लेकिन वे ढोंगी हैं। उन्होंने बराबर अन्याय-युद्ध किया है। पितामह भीष्म को उन्होंने अन्याय से मारा, कौरव और पांडवों के आचार्य द्रोण का उन्होंने अन्याय से वध किया, वीरवर कर्ण को छल से मारा, आपको भी अधर्म-युद्ध से परास्त किया। मैं बहुत सह चुका हूँ। लेकिन पांडवों को जैसे का वैसा फल देना ही है। मैं अवश्य-अवश्य पांडवों का वध करूँगा। आपके संतोष के लिये जिस उपाय का भी सहारा लेना पड़े, मैं लूँगा। प्राण रहते तक, मैं आपको प्रसन्न करने की चेष्टा करूँगा।"

अश्वत्थामा की बात सुनकर दुर्योधन को आश्वासन मिला। बैठे हुए उन्होंने कृपाचार्य को जल-पूर्ण घट ले आने की आज्ञा दी। कृपाचार्य घट ले आए। दुर्योधन ने अश्वत्थामा का अभिषेक किया। फिर बड़ी आशा की दृष्टि से देखते हुए कहा—"हे गुरुपुत्र! तुम ब्राह्मण हो. स्वभाव से त्यागी हो, मैं तुम्हारा क्या उपकार इस समय कर सकता हूँ? अब मेरे कुछ भी नहीं रहा, तुम देखते हो; केवल मेरा उत्साह और मेरी प्रसन्नता साथ लेकर जाओ।"

तीनों वीर राजा का सम्मान करके उठे। उनके रथ दूर खड़े थे। चल-कर उन पर बैठे। दुर्योधन अकेले उस एकांत में पड़े रहे। तीनो वीर पांडव-शिविर की ओर चल पड़े। रात हो रही थी। इधर-उधर स्यार दौड़ रहे थे। लाशों की बदबू आ रही थी। कहीं-कहीं घायलों की चीख सुन पड़ती थी। तीनो वीर रथ बढ़ाते हुए युद्ध का मैदान पार कर गए।

सौप्तिकपर्व

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पुत्रों का वध

इस रोज पांडवो को लेकर कृष्ण दूसरी जगह चले गए। दुर्योधन के परास्त होने की खबर से पांडव और पांचालो के शिविर में आनद मनाया जा रहा था। सेना और सेनानायक नृत्य-गीत में लीन थे। सब लोग नशे की हालत में थे। कभी-कभी कौरवों को दुर्वाक्य भी कहते थे। एक पहर के करीब रात हो चुकी थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। इसी समय बगल से तीनो वीर—अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—निकले। पाडवों के शिविर के पास जाने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। रथ बढाकर कुछ दूर एक पेड़ के नीचे इन लोगों ने डेरा डाला। सब लोग सुबह लड़ने की सोच रहे थे। कृपाचार्य और कृतवर्मा सोचते हुए, थके, घायल, विश्राम करने लगे, और विश्राम करते-करते सो गए। अश्वत्थामा की आँख मे नींद न थी। वह सोच रहे थे, अकेले युद्ध में पाडवों को कैसे परास्त किया जायगा। पांडवो के पास सेना है, रथ है, हाथी हैं, घोड़े है। पांडव समर्थ भी है। सोचते हुए अश्वत्थामा डरे। इसी समय एक दृश्य उन्होने देखा। उस पेड़ पर कुछ कौए बैठे थे। रात को विश्राम कर रहे थे। अँधेरे मे उन्हे देख न पड़ता था। इसी समय उल्लू की तरह का कोई पक्षी उडकर आया, और कौओं को मारने लगा। थोड़ी देर मे उसने सब कौओं को मार डाला। मर-मरकर कौए पेड़ के नीचे गिरने लगे। अश्वत्थामा को जैसे एक नसीहत मिली। अकेले इसी तरह शत्रु का सहार करना उचित है। उन्होंने निश्चय किया कि रात को शत्रु के शिविर मे पैठकर सोते हुए शत्रुओं का संहार करेंगे। यह भाव मन मे आते ही उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा, ईश्वर ने उन्हें यह उपाय बतलाया है। मन में ईश्वर को धन्यवाद दिया, और चलने के लिये तैयार हो गए।

गहरी रात थी। कृपाचार्य और कृतवर्मा सो रहे थे। घायल, थके हुए,

गहरी नीद में थे। अश्वत्थामा ने जगाया। कृपाचार्य और कृतवर्मा उठे। अश्वत्थामा ने धीरे-धीरे कृपाचार्य से कहा—"मामा, हम लोग बहुत थोड़े है। कल सुबह पांडवों से सम्मुख समर करने पर हम न जीतेंगे। हमें चाहिए कि हम रात को ही पाडवों के शिविर मे घुसें, और सोते समय उनका वध करें।"

कृपाचार्य ने कहा—"अश्वत्थामा, तुम्हे क्या हो गया है ? तुम्हे धम का भय भी नही रहा। तुम ब्राह्मण हो, वीर हो, देश-देशातर में तुम्हारा

नाम है, ऐसा कुकृत्य करके तुम मुँह दिखाने लायक नही रह जाओगे। लोगों में तुम्हारी निंदा होगी। तुम्हारा परलोक भी बिगड़ेगा।"

अश्वत्थामा ने जवाब दिया—"मामा, पांडव बड़े नीच हैं। नीचों से

नीचता करते अधर्म नहीं होता। महाराज दुर्योधन की दशा देखकर पत्थर पिघल जाता है। यह दशा पांडवों की नीचता के कारण हुई। पितामह भीष्म को उन्होंने किस नीचता से मारा, यह तुम जानते हो। मेरे पिता का कैसी नीचता से हत्यारे धृष्टद्युम्न ने वध किया, तुमने देखा है। कर्ण को रथ निकालने का समय नहीं दिया। तुम जो कुछ कहो, मैं निश्चय कर चुका हूँ, रात को नीच पांचालों और पाडवों के शिविर में पैठकर एक ही खड्ग से सबका वध करूँगा। तुम्हे साथ देना हो, तो चलो। मैं अब देर नहीं कर सकता।"

यह कहकर अश्वत्थामा उठे, घोड़ों को रथ में जोता और चल दिए। देखकर कृपाचार्य और कृतवर्मा पीछे-पीछे दौड़े। तरह-तरह की सीख दे रहे थे। लेकिन अश्वत्थामा उनकी एक नहीं सुन रहे, देखकर उन्होंने कहा—"तुम सेनापति हो, तुम्हारा साथ देना हमारा धर्म है। हमें भी रथ पर बैठा लो। जैसा कहोगे, हम करेंगे।"

यह सुनकर अश्वत्थामा ने रथ रोका, और कृपाचार्य और कृतवर्मा को रथ पर बैठा लिया। जब पाचालों और पांडवों के शिविर कुछ दूर रह गए, तब रथ से उतरकर तीनो पैदल चले। सब लोग नीद में बेहोश थे। पहरे का सिपाही भी बेखबर सो रहा था। अश्वत्थामा ने कहा—"मामा, पहले पांचालों के शिविर में जाता हूँ। तुम लोग द्वार पर रहो। जो बाहर निकले, उसे जीता न छोड़ना।"

कृपाचार्य और कृतवर्मा द्वार पर रहे। द्वारपाल का उसी वक्त वध कर खड्ग लिए हुए अश्वत्थामा शिविर के भीतर गए। पांचालों की बची हुई सेना गहरी नींद में सो रही थी। एक तो शराब का नशा, दूसरे युद्ध और नाच-रंग की क्लांति, लोग बेखबर सो रहे थे। एक बडे अच्छे, फूलों से सजे पलंग पर धृष्टद्युम्न सो रहा था। चारो ओर खुशबू उड़ रही थी। अश्वत्थामा कुछ देर तक अपने पिता का अन्याय से सिर काटनेवाले शत्रु को देखते रहे। देखते-देखते क्रोध से भर गए। धृष्टद्युम्न के बाल पकड़कर खींचा, और कसकर एक लात मारी। धृष्टद्युम्न हड़बड़ाकर जगे, परंतु वहाँ कोई अस्त्र न था, फिर अश्वत्थामा पकड़े हुए थे। वे चिल्लाए, पर अश्वत्थामा दुर्वाक्य कहते हुए, उन्हें लातों और घूसों से मारने लगे। कुछ लोग जगे, लेकिन उन्हें मालूम हुआ, जिन है। वे भय से शिविर के बाहर भगे। बाहर

निकलते ही कृपाचार्य और कृतवर्मा ने उनका वध कर डाला। अश्वत्थामा ने लातों और घूंसों से ही धृष्टद्युम्न का वध कर डाला। फिर खड्ग लेकर बचे हुए लोगों का संहार करने लगे। मारे भय के अँधेरे में, लोग आपस में लड़ने लगे। देखते-देखते सब-के-सब पांचाल काम आ गए।

कुछ दूर पर पांडवों का शिविर था। अश्वत्थामा इसी तरह वहाँ भी गए। द्वार पर कृपाचार्य और कृतवर्मा थे। द्रौपदी के पांचो पुत्र सो रहे थे। अश्वत्थामा ने एक-एक कर सबके सिर काट लिए। फिर शिविर में आग लगा दी। जो सेना थी, वह घबराई, अपने बचाव के लिये आपस में लड़ने लगी, और इस तरह लड़-लड़कर कट गई। पांडवों में भी कोई वीर न बचा।

★ दुर्योधन का प्राणांत

अभी रात समाप्त नहीं हुई थी। तीनो वीर रथ पर बैठे और दुर्योधन को यह सुखद समाचार देने के लिये चले। पांडवों के सिर समझकर द्रौपदी के पांचो पुत्रों के सिर अश्वत्थामा लिए हुए थे। दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये वे उस जगह पहुँचे, जहाँ दुर्योधन पड़े थे। दुर्योधन की हालत बहुत ही खराब थी। पीड़ा बहुत बढ़ी हुई थी। रह-रहकर मूच्छित हो जाते थे। चारो ओर से स्यार घेरे हुए थे। जब ये लोग पहुँचे, तब दुर्योधन मूच्छित थे। उनके कान के पास मुँह ले जाकर अश्वत्थामा ने कहा—"महाराज, क्या आप जीवित हैं? यदि जीवित हैं, तो अपने शत्रुओं के संहार का समाचार सुन लीजिए। मैंने अधम धृष्टद्युम्न-शिखंडी आदि समस्त पांचालों और पाडवों का वध कर डाला है। जैसी नीचता से उन्होंने आपको मारा, मैंने उसी छल से उन सबका वध किया है। अब पांडवों और पांचालों में कोई भी जीवित नही। रात को शिविर में घुसकर एक खड्ग से मैंने सहार किया।"

दुर्योधन सुन रहे थे। शत्रुओं का नाश हो गया, सुनकर पीड़ा को दबाकर, उठकर बैठने के लिये अश्वत्थामा का सहारा मांगा। अश्वत्थामा ने हाथ लगाकर, उठाकर बैठा दिया। दुर्योधन ने क्षीण कंठ से अश्वत्थामा की प्रशंसा की। अश्वत्थामा ने कहा—"महाराज, प्रमाण के लिये मैं पांडवों के सिर लेता आया हूँ।"

दुर्योधन ने क्षीण हर्ष से भीम का सिर माँगा। अश्वत्थामा ने तारों के प्रकाश में देखते हुए, भीम के पुत्र का सिर निकालकर दुर्योधन को दिया। बदला लेने के अभिप्राय से दुर्योधन ने उस सिर पर घूँसा मारा। घूँसे के लगते ही सिर कच्चे घड़े की तरह फूट गया। दुर्योधन को इससे आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—"अश्वत्थामा अभी अच्छी तरह प्रकाश नहीं हुआ। प्रकाश होने पर देखा जायगा कि यह भीम का सिर है या नहीं। मुझे विश्वास नही होता कि यह भीम का सिर है। यह एक घूँसे से फूट गया। भीम का सिर ऐसा नही। भीम के सिर पर मैंने गदा के कितने ही प्रहार किए है, पर सिर नही फूटा। यद्यपि उस समय टोप पहने हुए थे, फिर भी प्रहार गदा का था। यह तो घूँसा लगते ही पिचक गया।"

कुछ देर मे ऊषा की लालिमा फूटी। मुँह कुछ-कुछ पहचाने जाने लगे। दुर्योधन ने देखा, और पहचाना, वे पाडवो के सिर नही, द्रौपदी के पाचो पुत्रों के सिर है। दुर्योधन को इससे और क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा—"अब वश मे तर्पण करने के लिये भी कोई न बचा। इस प्रकार विलाप करते हुए अपार ऐश्वर्य के अधीश्वर महाराज दुर्योधन स्वर्ग प्रयाण कर गए। तीनो वीर वही बैठे हुए आँसू बहाते रहे।

★ अश्वत्थामा का मणि-हरण

प्रात.काल श्रीकृष्ण पांडवों को लेकर लौटे। पांडवों ने आते ही रात को हुआ सत्यानाश देखा। तब तक बात फैल चुकी थी। दुर्योधन का प्राणांत हो चुका था। द्रौपदी रोकर कृष्ण के पैरों पर गिरीं। भीम और अर्जुन को देखकर कहने लगी—"मेरे पुत्रों की जिसने यह हालत की है, उससे बदला लो। भीम गुस्से मे आ गए, और नकुल को सारथि बनाकर अश्वत्थामा की खोज मे निकल पडे।

भीम के जाने पर कृष्ण को चिंता हुई। उन्होने युधिष्ठिर और अर्जुन से कहा—"भीम को यह नही मालूम कि अश्वत्थामा के पास ब्रह्मशिरा नाम का महास्त्र है। यदि वह इन पर उसका प्रयोग कर देगा, तो यह किसी तरह भी नही बच सकते। इसी अस्त्र के प्रभाव से उसने मेरा चक्र छीन लिया था।"

सुनकर युधिष्ठिर और अर्जुन बहुत चिंतित हुए। युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा—"माधव, हमारे सबसे बड़े अस्त्र तो तुम्हीं हो। तुम्हीं बताओ कि अब क्या किया जाना चाहिए। इस महायुद्ध के फल-स्वरूप अब तो एक भी वीर नहीं बचा।"

कृष्ण ने कहा—"भीम का पीछा करना चाहिए। द्रौपदी को क्षोभ है, उन्हें सांत्वना भी मिलनी चाहिए। ब्रह्मशिरा अस्त्र का अगर अश्वत्थामा ने प्रयोग कर दिया, तो इसका बड़ा ही भयंकर परिणाम होगा। फिर भी अर्जुन इस अस्त्र को सँभाल सकते हैं।"

युधिष्ठिर ने कहा—"कृष्ण, फिर जल्दी की जानी चाहिए।" कृष्ण ने रथ तैयार किया। उस पर युधिष्ठिर और अर्जुन बैठे। चलते-चलते बहुत दूर निकल गए। काफी दूर जाने पर भीम के रथ की ध्वजाएँ देख पड़ीं। कृष्ण ने रथ बढ़ाया। भीम के रथ के पास नंदिघोष-रथ पहुँचा। युधिष्ठिर और अर्जुन समझाने लगे कि स्त्री के कहने से ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिए। जो कुछ होना था, वह हो चुका है। पर भीम ने किसी की न मानी। वे बढ़े, तब कृष्ण भी उनके साथ अर्जुन और युधिष्ठिर को लेकर चले। कुछ दूर और चलने पर पता लगा कि गंगा के किनारे व्यासजी के पास अश्वत्थामा बैठा है।

भीम ने रथ बढ़ाया। कृष्ण ने भी अपना रथ साथ लगाया। व्यास के आश्रम के पास पहुँचकर भीम ने देखा, अश्वत्थामा बैठा हुआ है। देखकर भीम ने ललकारा। अश्वत्थामा ने आँख उठाकर देखा, तो युधिष्ठिर और अर्जुन को भी देखा। देखकर, भय खाकर, समस्त पांडवों के लिये कहकर अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिरा-अस्त्र छोड़ दिया। उस अस्त्र के छूटते ही महाभयानक शब्द हुआ। भीम चकित हो गए। अर्जुन सुन चुके थे। उन्होंने तुरंत पाशुपत महास्त्र का त्याग किया। अश्वत्थामा के अस्त्र के साथ पाशुपत अस्त्र टक्करें लेने लगा; इससे भयानक संघर्ष की सृष्टि हुई। आग निकलने लगी, बिजली कड़कने लगी, आकाश से तारे टूटते नज़र आने लगे।

सृष्टि का नाश होता हुआ देखकर व्यास और नारद अस्त्रों के बीच में आकर खड़े हो गए, और कहा कि आप लोग अपने-अपने अस्त्रों को रोकिए, ऐसे अस्त्रों का प्रयोग मनुष्यों पर नहीं किया जाता। अर्जुन ने

कहा—"मैंने अस्त्र का प्रयोग मारने के लिये नहीं, किंतु बचने के लिये किया है। मेरा कोई दोष नहीं। लेकिन आप लोग कहते हैं, तो मैं अपना अस्त्र वापस लेता हूँ।" अर्जुन अस्त्र का रोकना जानते थे। उन्होंने अपना अस्त्र वारित कर लिया। अश्वत्थामा से ऋषियों ने कहा, तो अश्वत्थामा ने कहा, मुझे रोकना नहीं आता। तब ऋषियों ने कहा—"तुम्हारे अस्त्र के प्रभाव से उत्तरा का गर्भ नष्ट होगा, और अर्जुन के अस्त्र के बदले तुम अपनी कोई बहुमूल्य वस्तु दो, जो पांडवों को अभीप्सित हो। अर्जुन से पूछने पर अर्जुन ने कहा—"अश्वत्थामा अपने मस्तक की मणि दें।"

अश्वत्थामा को बड़ा कष्ट हुआ। पर उन्हें मणि देनी पड़ी। मणि देकर वे बिलकुल निस्तेज हो गए। फिर वहीं व्यासजी के आश्रम में रहकर शेष जीवन ब्राह्मण की तरह बिताने लगे।

द्रौपदी के दुख का आर-पार न था। अर्जुन मणि लेकर आए, और द्रौपदी को देते हुए कहा—"भद्रे, अश्वत्थामा की मृत्यु से बढ़कर यह है। यह मणि लो। वह अब निस्तेज हो गए हैं। अब आजीवन व्यासजी के आश्रम में हतवीर्य होकर रहेंगे। अपने पुत्रों का शोक उपशमित करो।"

स्त्रीपर्व

★ कौरव-स्त्रियों का विलाप, लौहभीम चूर्ण, गाधारी का शाप और मृतक-तर्पण

संजय से यह संवाद पाकर कि महाराज दुर्योधन भीम के साथ गदा-युद्ध में मारे गए। युद्ध अन्याय रूप से हुआ, दुर्योधन की जांघ पर भीम ने गदा मारी; हस्तिनापुर के राजपरिवार मे हाहाकार मच गया, महारानी भानुमती पछाड़ खाकर गिरीं, और बेहोश हो गई, महारानी गांधारी उच्च स्वर से विलाप करने लगी; महाराज धृतराष्ट्र सिंहासन पर मूर्च्छित हो गए। राजमहल में शोक का समुद्र उमड़ने लगा। सबके साथ धर्मात्मा विदुर भी रोने लगे। विदुर ने समय की भीषणता और मृत्यु के सर्वव्यापी प्रभाव पर बहुत कुछ कहा, परंतु उस उच्च हाहाकार में विदुर के उपदेश का कोई प्रभाव न पड़ा।

रानियाँ पागल की तरह युद्ध-क्षेत्र की ओर दौड़ने लगी। जिनका मुंह कभी सूर्य ने नही देखा था, वे अपने पति और पुत्रों की लाशों को गले लगाने के लिये रास्तों पर निकल गईं। उनके साथ गांधारी भी चली। महाराज धृतराष्ट्र भी नहीं रह सके। संजय का हाथ पकड़कर सबके पीछे-पीछे चले।

सबकी युद्ध-क्षेत्र में जाने की इच्छा है, जानकर विदुर ने रथो का प्रबंध किया, और अन्यान्य आवश्यक वस्तुएँ साथ लेते हुए सबसे अनुरोध किया कि सब लोग रथ पर बैठ लें। विदुर के अनुरोध के अनुसार कौरव-कुल की बहुएँ, महारानी गांधारी और महाराज धृतराष्ट्र रथ पर बैठकर कुरक्षेत्र को चले।

प्रभात का समय था। नगर से बाहर निकलने पर कौरव-परिवार को अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले। महाराज दुर्योधन की मृत्यु हो

चुकी थी। अश्वत्थामा ने रात्रि से प्रभात तक का कुल हाल महाराज धृतराष्ट्र से कहा। दुर्योधन इस ससार को छोड़कर स्वर्ग प्रयाण कर गए हैं, सुनते ही धृतराष्ट्र मूर्च्छित हो गए, महारानी भानुमती विलाप करती हुई मूर्च्छित हो गई। रथ कुछ क्षण के लिये वही रोक दिए गए।

ये तीन वीर यही से, एक दूसरे से विदा होकर अपने-अपने मार्ग को चल दिए। अश्वत्थामा का हाल लिखा जा चुका है।

बहुत देर तक रथ रुके रहे। महाराज धृतराष्ट्र और उनकी पुत्र-वधुएँ, अनेक उपचार करने पर, होश मे आए। फिर रथ बढाने की आज्ञा हुई।

काफ़ी देर तक रथ रुके रहे। अब तक पाडव अश्वत्थामा की मणि लेकर लौट चुके थे। लौटने पर उन्हें मालूम हुआ कि कौरव-कामिनियों के साथ महाराज धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र आ रहे है। कृष्ण पांडवों को साथ लेकर उनसे मिलने चले।

शोक से अधीर पाचाल रमणियां भी अवरोध से बाहर निकल पड़ी। उनके साथ द्रौपदी हुई। ये सब भी रण-क्षेत्र की ओर चल पड़ी।

श्रीकृष्ण महाराज धृतराष्ट्र से पाडवों को लेकर मिले, और विनय-पूर्वक कहा—"महाराज, पांडव पहले भी सधि करना चाहते थे, पर शकुनि और कर्ण के प्रस्ताव को मानकर महामानी दुर्योधन ने संधि नही की, पांडवो को रहने के लिये पाँच गांव भी नही दिए, इसका यह दुष्परिणाम हुआ। महामति भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथ कर्ण, शल्य और आपके पुत्र-जैसे कौरव-कुल के रत्न इस ससार से उठ गए। इसमें पाडवों का क्या दोष है?"

धृतराष्ट्र धैर्य के साथ बोले—"कृष्ण, तुम ठीक कह रहे हो। धर्म की ही जय होती है। खेद यही है कि इतनी बडी सेना देखते-देखते काल-कवलित हो गई। फिर भी मैं भीम को धन्यवाद देता हूँ, भीम वीर है। उसने अकेले मेरे पुत्रों का संहार किया। मेरी इच्छा होती है कि दुःशासन और दुर्योधन को मारनेवाले भीम को मै गले से लगाऊँ। वह भी मेरा लड़का है।"

धृतराष्ट्र का हृदय अच्छा नही, कृष्ण पांडवों को लेकर चलने से पहले समझ चुके थे। धृतराष्ट्र से मिलते समय अनर्थ हो सकता है, यह सोचकर उन्होने भीम की एक लोहे की मूर्ति साथ ले ली थी। इस समय धृतराष्ट्र के स्वर में उन्हें छल मालूम दिया। भीम धृतराष्ट्र को भेंटने के लिये बढ़े, तो कृष्ण ने रोक दिया, और वही लोहेवाली मूर्ति भेंटने के लिये मँगाकर

सामने खड़ी कर दी। धृतराष्ट्र अंधे थे ही। उन्हें यह न मालूम हुआ कि यह वास्तव में भीम हैं या लोहे की मूर्ति। उन्होंने उस मूर्ति को छाती से लगाते हुए इस जोर से मसका कि वह चूर-चूर हो गई।

कृष्ण ने एकांत में पांडवों को ले जाकर कहा, वृद्ध के मन में इतना द्वेष था, पुत्रों का बदला खुद चुकाना चाहते थे। युधिष्ठिर ने कहा—"कृष्ण, आपने सदा पांडवों की रक्षा की है। वृद्ध के शरीर में कितना बल है कि लोहे की मूर्ति चूर-चूर हो गई!"

इसी समय 'हा भीम, हा भीम' कहकर धृतराष्ट्र रोने लगे। कृष्ण ने मुस्किराकर कहा—"महाराज, आप व्यर्थ ही विलाप कर रहे हैं, आपने जिसे तोड़ा है, वह भीम नहीं, भीम की लोहे की मूर्ति थी।" कृष्ण की बात से धृतराष्ट्र बहुत लज्जित हुए।

गांधारी शोक में पागल हो रही थी, कृष्ण के साथ पांडवों को आया सुनकर पांडवों को शाप देने लगी कि आकाश-मंडल में महर्षि व्यास पैदा

वाले कर्ण भगवान् सूर्य के पुत्र थे। मैं तब कुमारी थी, इसलिये लोक-लज्जा के डर से कर्ण का त्याग किया था। वह अधिरथ के पुत्र नहीं थे।"

सुनकर युधिष्ठिर तथा पाँचो पांडव आश्चर्य-चकित हो गए। अर्जुन को माता पर क्रोध आ गया। पर कृष्ण ने समझाया। फिर सबने जल तथा आँसुओं से कर्ण का तर्पण किया।

शांतिपर्व

✶ सिंहासनारोहण

महावीर कर्ण अधिरथ सूत का पुत्र नहीं, पांडवों के भाई है। जब से युधिष्ठिर ने सुना, उनके शोक और चिंता की थाह न रही। उनका भोजन-पान छूट गया। वह बार-बार सोचते थे कि किसी तरह उन्हें यह मालूम होता, तो वह लड़ाई न लड़ते, कौरवों को राज्य छोड़कर वन चले जाते। इस तरह के सोच से उन्हें वैराग्य हुआ, और राजपाट से मन हट गया। सदा वन की सोचने लगे। एक दिन उन्होंने अर्जुन से कर्ण की चर्चा की, और दुःख करने लगे।

अर्जुन ने कहा—"महावीर कर्ण का परिचय हमें मालूम होता, तो यह महाभारत-युद्ध हम लड़े ही न होते। पर जब सब निर्णय हो चुका है, परिचय हमारे ही हितैषियों ने—सगे-संबंधियों ने—हमें नहीं बताया, तब अब अधिक शोक व्यर्थ है, और वन-गमन तो बिलकुल अपरिणामदर्शिता है।"

भीम ने कहा—"अर्जुन की बात सही है। धर्मराज स्वभाव से तपस्वी है, इसलिये झुकाव वन की तरफ होता है। हमारे कर्ण ही एक अपने नहीं थे, हमारे सभी संबंधी और वंशज मारे गए है। जब महारण-तांडव समाप्त हो चुका है, तब प्रजा की रक्षा कर क्षत्रिय-धर्म का पालन ही उचित होगा।

इसी समय भगवान् व्यास वहाँ आए। महाराज युधिष्ठिर ने पैर धोकर उन्हें बैठने का आसन दिया। व्यासजी आसन ग्रहण कर, युधिष्ठिर को उदास देखकर, पूछकर कारण मालूम कर, बोले—"क्षत्रिय को कभी अपना धर्म छोड़ना नहीं चाहिए। अपनी समझ से तुमने एक अन्याय के विरुद्ध लड़कर विजयी हुए हो। अब तुम अपने अर्जित फल का भोग करो, और इसमें भी अपना आदर्श रक्खो।" इसके बाद व्यासजी और-और प्रसंग उठाते हुए लोक तथा धर्म की बातें समझाते रहे।

व्यासजी के उपदेश से युधिष्ठिर की राज्य करने की इच्छा हुई। उनकी

मर्जी होने पर पांडवों ने विजय के हर्ष में नगर को सजाने की आज्ञा दी। राहों में तोरण लगाए गए। पताकाएँ उड़ने लगीं। मंगल-कलश रखे गए। लोग गीत, वाद्य, नृत्य आदि करने लगे। भाट अस्तुतियाँ रचकर राजा को प्रसन्न करने की सोचने लगे। तरह-तरह के खेलों के दिन नियत हुए। देवियाँ शंख बजाकर अभिनंदन करने लगी। कुमारियाँ टोली में बँधकर गीत गाने लगीं। ब्राह्मण दान पाने की आशा से प्रसन्न हुए।

निर्धारित समय में महाराज युधिष्ठिर राजभवन में पधारे। बाहर नगर के सम्मान्य और साधारण जन एकत्र थे। उनकी सभा मे पहुँचकर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दान देना शुरू किया। मुक्तहस्त से हुआ उनका दान पाकर ब्राह्मण लोग बहुत प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर का जय-जयकार करने लगे।

इसके बाद युधिष्ठिर पूरब को मुँह करके राजसिंहासन पर बैठे। महाराज युधिष्ठिर के सामने सुनहली चौकियों पर श्रीकृष्ण और सात्यकि बैठे। दोनो ओर भीम और अर्जुन रत्नजटित आसनों पर नकुल और सहदेव के साथ बैठे। महात्मा विदुर और धौम्य योग्य, ऊँचे आसन पर बैठे। अभिषेक के नियमानुसार युधिष्ठिर ने सफ़ेद फूल, पृथ्वी, सोना, चाँदी और रत्न छुए। इसके बाद कृष्ण की आज्ञा से पुरोहित धौम्य ने महाराज युधिष्ठिर के राजतिलक का आयोजन किया। तीर्थ-जल, घट, सुगंध, पुष्प, खील, घी-शहद, दूध आदि मँगाकर बेदी के सामने व्याघ्र-चर्म पर महाराज युधिष्ठिर और महारानी द्रौपदी को भद्र आसन में बैठाला। फिर हवन कराने लगे। इस समय कृष्ण पांचजन्य शंख बजाने लगे। उनके साथ अन्य लोग भी अपना-अपना शंख बजाने लगे। ब्राह्मण उच्च स्वर से वेदमंत्रोच्चार करने लगे। इसी समय महाराज युधिष्ठिर को राजतिलक किया गया। उपस्थित समस्त जन जय-जयकार करने लगे।

महाराज युधिष्ठिर ने भीम को युवराज अर्जुन को राज्य-निरीक्षक, नकुल को सेनापति और सहदेव को अपना शरीर-रक्षक तथा, महामति विदुर को मंत्री और धौम्य को पुरोहित बनाया।

फिर सभा विसर्जित कर युधिष्ठिर राजमहल मे गए, और महाराज धृतराष्ट्र के चरण छुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया। राजमहल, नगर और राज्य के कार्य महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर किए जाएँ, महाराज युधिष्ठिर ने

कहा। फिर वह गांधारी के चरण छूने गए। गांधारी ने भी उन्हें हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। महाराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन के भवन में भीम को रहने की आज्ञा दी, दुःशासन के भवन मे अर्जुन को ; धृतराष्ट्र के दूसरे लड़कों के भवन नकुल और सहदेव को रहने के लिये दिए।

इस प्रकार राज्य की व्यवस्था कर धर्मराज युधिष्ठिर कृष्ण को लेकर महामति भीष्म के दर्शन करने गए। उस समय पितामह भीष्म देश के बड़े-

बड़े ऋषि-मुनियों से घिरे थे। उनके चारों ओर त्याग की ज्योति जल रही थी। देखकर युधिष्ठिर बहुत लज्जित हुए। कृष्ण से कहा—"माधव, मैं पितामह भीष्म से मिलने की हिम्मत नही कर रहा। मुझे लज्जा आ रही है।" तब कृष्ण आगे बढ़े। भीष्म को अभिवादन कर कहा—"महाराज, युधिष्ठिर आपके दर्शनों के लिये आए हुए हैं। वह बहुत लज्जित हैं कि उनके कारण उनके परिवार का नाश हुआ।" भीष्म मुस्किराए। कहा—"माधव, इसमें युधिष्ठिर का क्या दोष है? उन्होंने छिपकर उन्हें नही मारा। सम्मुख समर में विजयी होकर उन्होंने अपना धर्म रखा है। अब धर्मानुसार वह राजा हैं ही। उन्हें यह धर्म भी रखना है। वह लज्जित क्यों होते हैं?" भीष्म की बात से युधिष्ठिर को साहस हुआ। वह भीष्म के सामने आए, और झुककर प्रणाम करके उनके पदस्पर्श किए। भीष्म ने स्नेह की दृष्टि से उन्हे देखते हुए कुछ उपदेश दिए।

अनुशासनपर्व

★ भीष्म की सीख

धर्मराज युधिष्ठिर के मन में आया, राज्य तो फिर से स्थापित हुआ, परतु अनुशासन की शिक्षा देनेवाला योग्य अभिज्ञ जन दूसरा भीष्म के सिवा कोई नही। इसलिये भीष्म से इसकी शिक्षा लेनी चाहिए। भीष्म बहुदर्शी, बहुश्रुत और बहुपठित है, यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"पितामह, हमें अनुशासन की उचित सीख दीजिए। आपके सिवा कोई इस योग्य मुझे नहीं नजर आता।"

भीष्म ने, युधिष्ठिर के आग्रह पर, अनेक प्रकार की शिक्षाएँ मोक्ष-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, राजधर्म, राज्यानुशासन आदि की दी, इनसे महाभारत का अनुशासनपर्व ओत-प्रोत है। युधिष्ठिर एकनिष्ठ होकर भीष्म की गंभीर, उदार, प्रभावशालिनी शिक्षाएँ सुनते रहे।

भाग्य और कर्म के प्रश्न पर भीष्म ने कहा—"भाग्य और कर्म मे भेद नही। मान लो, भाग्य से कोई राजपुत्र हुआ, पर उसका राज्य किसी दूसरे वीर ने युद्ध करके छीन लिया, अब, जिसने छीना, उसके साथ कर्म भी है और भाग्य भी, जिसका राज्य गया, उसका कर्म न रहने के कारण भाग्य भी गया। यहाँ निश्चित है कि कर्म ही भाग्य है। पुरुषार्थ कर्म को प्रधानता देता और भाग्य मे परिणत होता है। राजा का कर्म है—वह अपनी पूरी शक्ति से, तन, मन और धन से प्रजा का पालन करे। प्रजा की सुविधा के लिये जान हथेली पर लिए रहे। प्रजा को शिक्षित करे, व्यवसाय, शिल्प और कला को प्रश्रय दे, इनके लिये राजमार्ग, बाजार, शिक्षणालय आदि निर्मित करे। समस्त वस्तु और विषयों पर समदर्शिता रक्खे, राज्य के लिये सबकी आवश्यकता समझे। प्रजा का जाति-धर्म के विचार से परे पहुँचकर समभाव से पालन और शासन करे। राज्य के उत्पातों से, चोरी-डाके आदि से, प्रजा की रक्षा करे। इस तरह, पुरुषार्थ का परिचय देने पर, राजा

प्रजाजनों का प्रिय होता है। प्रजा की प्रशंसा से मृत्यु के बाद वह स्वर्ग-सुख प्राप्त करता है। प्रजाजनों के मनोलोक से गिर न पाने के कारण राजा स्वर्गलोक से च्युत नहीं होता। समस्त विद्याओं का आधारभूत होने के कारण राजा पर अविद्या का प्रभाव नही पड़ता। इस प्रकार पुरुषार्थ स्वयं भाग्य में परिणत होता है—कर्म ही अदृष्ट का उत्पादक है।" यह कहकर भीष्म कुछ देर के लिये मौन हो गए। महाराज युधिष्ठिर भीष्म के दिए उपदेश के बोध में डूबे हुए महानंद का अनुभव कर रहे थे। फिर प्रकृतिस्थ होने पर भीष्म को प्रणाम कर चले।

★ भीष्म का प्राण-त्याग

बहुत दिनों तक धर्मराज युधिष्ठिर भीम के पास आते-जाते रहे। क्रमश उत्तरायण का समय आया। भीष्म की इच्छा-मृत्यु थी। वह सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण छोड़ेंगे, प्रतिज्ञा कर चुके थे। अब वह समय आया। धर्मराज युधिष्ठिर पुरोहित के हाथ संस्कृति अग्नि और वाहकों से घी, रत्न, रेशमी वस्त्र, चंदन, पुष्प, माल्य, यव-तिल, कुश, अगर और चंदन की लकड़ी लिवाकर महाराज धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती और नगर के गण्यमान्य जनों को आगे कर भाइयों के साथ चले। वहाँ जाकर देखा, भीष्म ,ऋषि और मुनियों से पहले की ही तरह घिरे हुए हैं। यथासमय इन सबको आकर प्रणाम करते देखकर कहा—"ईश्वर तुम लोगों का कल्याण करे, अब हमारा समय आ गया है। हमें ५८ दिन तक शर-शय्या मे रहते बड़ा कष्ट हुआ है। यह समय हमे एक शताब्दि से लंबा जान पड़ा है।"

धृतराष्ट्र और पांडव विषण्ण खड़े थे। भीष्म देखकर बोले—"हे धृतराष्ट्र, तुम क्षात्र धर्म की कुल बातें जानते हो। पुत्रों के निधन से तुम्हें असह्य कष्ट हुआ है। पर धर्म का मुँह देखकर यह कष्ट सहन करते हुए संसार का बंधन मुक्त करो। इससे अधिक हम तुम्हें कुछ नही कहते। पांडवों के प्रति किसी प्रकार की अनिष्ट-चिंतना न करना। वे धार्मिक हैं, और बराबर गुरुजनों के लिये श्रद्धा-संपन्न रहे हैं। राज्य के वे ही योग्य हैं।" फिर एक बार समवेत् ऋषि-मुनियों की ओर उन्होंने दृष्टि की। ऋषि लोग सजग-सजग हो गए। फिर महावीर, महारथ, अपराजित योद्धा,

चिर-ब्रह्मचारी भीष्म प्राणायाम द्वारा प्रयाण करने को उद्यत हुए। उन्होंने मूलाधार में दृष्टि की, और क्षण-मात्र मे उन्हें ज्योति-मडल देख पड़ा। अपार रहस्य-सृष्टि को देखते हुए भीष्म जहाँ से आए थे, वहाँ पहुँच गए। स्वर्ग मे उनके स्वागत की बडी तैयारियाँ थी। देव-कन्याएँ मगल-गीत गाती हुई भीष्म को ले गईं।

पाडवों ने देखा, पितामह का शरीर निष्प्राण हो गया है। पाडव इस महात्मा, नर-श्रेष्ठ के प्रयाण से दुखी होकर रोने लगे। फिर चंदन की चिता लगाई गई, और शर-बिद्ध शव को कीमती वस्त्रों से ढककर युधिष्ठिर आदि पाडवो ने उठाकर चिता पर रखा। फूल-मालाओं से सुसज्जित शव पर नगर के सहस्रों नारी-नर अपने-अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाने लगे। फिर युधिष्ठिर ने चिता में अग्नि-सयोग किया। आग जल उठी। भीम, अर्जुन आदि वीर पितामह की दिव्य शिक्षा और अथाह ज्ञान की याद कर आँसू बहाते रहे। कुछ देर बाद चिता जल गई। शव भस्मीभूत हो गया। नगर के लोग बड़ी श्रद्धा से चिता की राख लेने लगे। इस तरह प्राय समस्त भस्म समाप्त हो गया।

★ व्यासजी का उपदेश

भीष्म के प्रयाण से युधिष्ठिर का चित्त सदा उदास रहने लगा। राज्य की देख-भाल ढीली पड़ रही थी, इससे भीम-अर्जुन भी चिंतित रहते थे। इसी समय हस्तिनापुर में व्यासजी का आगमन हुआ। धर्मराज को वीत-राग देखकर व्यासजी ने कहा—"महाराज, आप धार्मिक हैं, और धर्म की अन्यान्य धाराएँ आपको मालूम हैं। आपकी उदासी वास्तव में वैराग्यजन्य नही कही जा सकती। यह एक प्रकार की अकर्मण्यता है, जो सत्त्वगुण न होकर तमोगुण है। इस उदासी के अँधेरे को कर्म के प्रकाश से दूर कीजिए। आपको अभी राज्य का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व पूरा करना है। इसी तपस्या के बाद विश्राम प्राप्त कीजिए, इस समय युद्ध के कारण राजकोष खाली होगा। बिना अर्थ के राज्य का मंगल नही किया जा सकता। हमारे आने का एक कारण यह भी है कि अर्थ का संधान दें। हमें एक बहुत बड़े अर्थ का पता है। वहाँ से आपको इतना धन मिलेगा कि

आपके समस्त कार्य उससे पूरे हो जायेंगे। फिर भी वह धन समाप्त न होगा। एक समय महाराज मरुत् ने हिमालय-प्रदेश में बहुत बड़ा यज्ञ किया। उन्होंने इतना धन ब्राह्मणों को दिया कि वे लोग सब ले नहीं जा सके। वह पड़ा हुआ धन इस समय मिट्टी के नीचे है। अभी इतना ही पता बता सकते हैं। यदि आपमें कोई वहाँ जाकर भगवान् शंकर को प्रसन्न कर सके, तो उसे वे उस गड़े धन का पता बता देंगे।" यह कहकर व्यासजी चले गए।

श्रीकृष्ण बहुत दिनों से द्वारका नहीं गए थे, अपने पिता, पुत्र और पत्नियों को देखना चाहते थे। द्वारका से बुलावा भी आया था। इसलिये बड़े नम्र शब्दों में उन्होंने महाराज युधिष्ठिर से विदा माँगी और शीघ्र लौटने का वचन देकर द्वारकापुरी के लिये प्रस्थान किया।

अश्वमेधपर्व

☆ परीक्षित का जन्म

व्यासजी की अर्थवाली बात पर एक दिन पांडवों की सभा हुई। विचार होने लगा कि हिमालय जाकर महाराज मरुत् के धन के लिये महादेव की तपस्या कर कौन उन्हे प्रसन्न करेगा, बिना इस धन के न तो राज्य का सुचारु रूप से सचालन किया जा सकता है, न व्यासदेव और पितामह भीष्म के बताए अश्वमेध-यज्ञ का विधान ही पूरा किया जा सकता है। बातचीत के प्रसंग पर भीम ने उठकर कहा—"महाराज, मरुत् के धन के लिये देवाधिदेव महादेव की उपासना मैं करूँगा।" भीम की प्रतिज्ञा सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए, और भीम को उत्तराखंड जाने की आज्ञा दी। सहदेव ने कहा—"इस कार्य के लिये हम सबको साथ चलकर रहना चाहिए। भीम का अकेला जाना उचित नही मालूम देता।" सहदेव की यह सम्मति सबको पसंद आई। इसके अनुसार राज्य का भार धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को सौंपकर समस्त पांडव उत्तराखंड की ओर चले। हिमालय पहुँच-कर भीम ने शकर की अर्चना कर कुछ ही दिनों में गड़े हुए धन का पता लगा लिया। पता मालूम होने पर वेदज्ञ धौम्य ने वहाँ पूजा कराई, और खोदने की आज्ञा दी गई। कुछ ही परिश्रम के बाद वह अपार धन-राशि मिल गई। बड़े-बड़े पात्र स्वर्ण से भरे हुए मिले। कितने ही हाथी और घोड़ों पर वह धन लादा गया।

अश्वमेध का समय निकट जानकर, धर्मराज के अनुरोध के अनुसार श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा, प्रद्युम्न और कृतवर्मा आदि हस्तिनापुर आए। हस्तिनापुर में उत्सव की शहनाई बजने लगी। इसी समय उत्तरा के पुत्र पैदा हुआ। पुत्र होते ही कुल आनंद शोक में बदल गया। सब लोगों ने सुना उत्तरा के मृत बालक हुआ है। पांडवों के कुल में श्राद्ध-तर्पण करनेवाला भी कोई नही बचा था, इसी बालक की बाट सब लोग जोह रहे थे। मरा

बालक होने पर सुभद्रा पछाड़ खाकर कृष्ण के पैरों पर गिर पड़ी, द्रौपदी भी चीख़ मारकर रोने लगीं। महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि पांडव वहाँ नहीं थे। कृष्ण समझ गए कि अश्वत्थामा के ब्रह्मशिरा बाण के प्रभाव से मृत बालक हुआ है। कृष्ण आचमन करके उस बालक को गोद में लेकर बैठे, और कहा—"हे भद्रे ! मैंने युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई, कभी झूठ नहीं बोला, सत्य से मेरा संबंध नहीं छूटा, यह अगर सच है, तो अभिमन्यु का मृत पुत्र जी जाय ; यदि शत्रु को जीतकर भी मैंने हिंसा नहीं की, तो यह शिशु जी जाय।" कृष्ण के श्रीमुख से ये शब्द निकले ही थे कि शिशु जी उठा। सब लोग प्रसन्न हो गए। इस प्रकार जीने के कारण बच्चे का नाम परीक्षित रक्खा गया।

परीक्षित के पैदा होने के एक महीने बाद पांडव हिमालय से वापस आए। राजधानी और घर के समाचार पाकर, यह मालूम कर कि परीक्षित का जन्म हुआ है, और जन्म का यह विवरण है, पांडव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती का चरण-वंदना किया, कृष्ण को गले लगाया, और भीम की तपस्या और धन की प्राप्ति का हाल कहा।

अश्वमेध-यज्ञ

इसी तरह कुछ समय और पार हुआ। एक दिन भगवान् व्यास फिर पधारे। धर्मराज ने बड़े आदर से उन्हें आसन पर बैठाला। उनके बैठने पर बड़े विनम्र स्वर से पूछा—"भगवन्, अश्वमेध की तिथि भी निश्चित कर दीजिए, ताकि शुभ कार्य का अनुष्ठान कर दिया जाय।" व्यासजी ने चैत्र की पूर्णिमा निश्चित करते हुए कहा—"अश्वमेध के घोड़े की परीक्षा किसी अश्व-विद्या-विशारद ब्राह्मण से कराइएगा।"

व्यासजी उपदेश देकर चले गए। अश्वमेध की तैयारियाँ होने लगीं। ब्राह्मणों ने एक अत्युत्तम श्यामकर्ण घोड़ा निश्चित किया। घोड़े के मस्तक पर बाँधने के लिये स्वर्ण-पत्र खुदवाया गया कि महाराजाधिराज हस्तिना-पुराधीश युधिष्ठिर अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं, जिन्हें उनका एकच्छत्राधिकार स्वीकृत न हो, वे घोड़े को पकड़कर युद्ध से अपना फ़ैसला कर लें। यज्ञ की और सब सामग्रियाँ एकत्र की गईं। महारथ अर्जुन घोड़े के रक्षक के रूप

से साथ किए गए। एक फौज साथ लेकर वह घोड़े का अनुसरण करते रहेंगे। इच्छानुसार भगता हुआ घोड़ा राजमार्ग से न भगकर बीहड़ रास्तों से भगता है, तब पीछा करनेवाले रक्षक रथ पर बैठकर नहीं चल सकते, इसलिये अर्जुन घोड़े पर सवार हुए। स्वर्ण-पत्र बाँधकर पूजोपरांत घोड़ा छोड़ दिया गया। अर्जुन तथा अन्य रक्षक साथ-साथ चले। नगर के लोग नगर की सीमा तक उत्साह-वर्धन के लिये गए, और वहाँ से अर्जुन को हर्ष-ध्वनि से अभिनंदित कर घर लौटे। भीम तथा नकुल को राज्य की देख-रेख का काम दिया गया। सहदेव आगत अतिथि महाराजों के आदर-सत्कार के लिये रहे।

नदी-नाले, अरण्य-प्रांतर, पहाड़-उपत्यका, देश-प्रदेश विचरता हुआ घोड़ा त्रिगर्त-देश में हाज़िर हुआ। वहाँ के राजकुमार पांडवों के लिये दुर्विनीत थे। अश्वमेध का घोड़ा जानकर उन लोगों ने पकड़ लिया। घोड़े के पकड़ जाने पर पहले अर्जुन ने बहुत समझाया, पर राजकुमारों ने बात न मानी। सबसे बड़े केतुवर्मा थे। उन्होंने अर्जुन पर शर-वर्षा शुरू कर दी। अर्जुन पहले ढीले-ढीले लड़ रहे थे। इसी समय एक तीर अर्जुन की मुट्ठी में लगा, जिससे उन्हें चोट आ गई, इससे कुछ असावधान हो गए। देखकर केतुवर्मा हँसा। उसके हँसते ही अर्जुन की देह में बिजली दौड़ गई। उन्होंने गांडीव उठाकर तीक्ष्णतर तीरों से शत्रु-पक्ष को पाट दिया। अर्जुन की चोटें सँभालना मुश्किल हो गया। कितने ही वीर खेत रहे। देखकर केतुवर्मा दबा, गिड़गिड़ाया, वश्यता स्वीकृत की। तब अर्जुन ने उसे प्रबोध दिया, और घोड़ा छोड़ देने के लिये कहा। घोड़ा छोड़ दिया गया। अर्जुन उसे अश्वमेध-यज्ञ में आने के लिये सभ्यता-पूर्वक आमन्त्रित कर घोड़े के साथ आगे बढ़े।

यहाँ से बढ़ता हुआ घोड़ा कई प्रदेश पार करके प्राग्ज्योतिषदेश में पहुँचा। यहाँ भगदत्त के पुत्र महाराज वज्रदत्त राज्य कर रहे थे। भगदत्त अर्जुन के हाथ कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गए थे, इसलिये वज्रदत्त पांडवों से दुश्मनी मानता था। उसने घोड़ा पकड़ा। अपनी सेना के साथ, हाथी पर सवार वज्रदत्त अर्जुन पर टूटा। अर्जुन भी डटकर युद्ध करने लगे। जब वज्रदत्त ने हाथी को अर्जुन के बिलकुल पास पहुँचा दिया, तब उन्होंने एक ऐसा बाण मारा कि हाथी वहीं बैठ गया, उसका मस्तक भेद कर तीर भीतर घुस गया था। थोड़ी देर में वह मर गया। अर्जुन को युधिष्ठिर की

आज्ञा थी कि घोड़े को पकड़ने पर युद्ध में वह किसी राजा का वध न करें। अर्जुन चाहते, तो वज्रदत्त का वध कर सकते थे, पर उन्होंने हाथी के मर जाने पर उस पर तीर नहीं चलाया। वज्रदत्त समझ गया। उसने अर्जुन की वश्यता स्वीकार की। उसे हस्तिनापुर, अश्वमेध-यज्ञ में, आने का निमन्त्रण देकर अर्जुन घोड़े के साथ दूसरी तरफ़ मुड़े।

वहाँ से बढ़ता हुआ घोड़ा सिंधुदेश में पहुँचा। जयद्रथ के वध की भावना से सिंधुदेशवालों ने भी घोड़े को पकड़ा। अर्जुन वहाँ बहुत उद्दंड होकर लड़े। बहुत बड़ी सेना अर्जुन के युद्ध में निहत हुई। दुर्योधन की बहन दुःशला सिंधुदेशाधिपति जयद्रथ को ब्याही थी। वह गोद में अपने पौत्र को लेकर आई, और कहा—"भाई, तुम्हारे आने की खबर से मेरा पुत्र सुरथ ज़मीन पर गिरकर मर गया है, यह उसका लड़का मेरा पोता है, इस पर दया करो।" अर्जुन दुःशला को देखकर बहुत लज्जित हुए, वहीं गांडीव रख दिया, और बहन को प्रबोध देने लगे।

घोड़ा यहाँ से देश-देशांतर भ्रमण करता हुआ मणिपुर पहुँचा। वहाँ की राजकुमारी चित्रांगदा अर्जुन की पत्नी थी। उनका लड़का बभ्रुवाहन वहाँ का राजा था। अपने पिता अर्जुन को आया हुआ जानकर ब्राह्मणों को आगे कर वह मिलने के लिये आया। अर्जुन को बभ्रुवाहन का यह तरीक़ा पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा—"हम महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध के घोड़े के साथ यहाँ आए हैं। तुम्हारा यह बर्ताव हमें पसंद नहीं आया।" बभ्रुवाहन पिता से कैसे लड़े, कुछ समझ नहीं सका। खड़ा सोच रहा था कि अकस्मात् नाग-कन्या उलूपी वहाँ उपस्थित हुई, और बभ्रुवाहन से कहा—"बेटा, मैं तुम्हारी सौतेली मा हूँ। तृतीय पाण्डव इस भूमि को निर्वीर्य न समझें, इसलिये मैं आज्ञा देती हूँ, तुम अश्वमेध का घोड़ा पकड़ो, और युद्ध करो।"

उलूपी की बात से बभ्रुवाहन ने घोड़ा पकड़ लिया। फलतः अर्जुन के साथ उसके युद्ध की नौबत आई। बभ्रुवाहन बड़ा निपुण योद्धा था। लड़ते-लड़ते उसने अर्जुन के छक्के छुड़ा दिए। पहले तो अर्जुन ढीले हाथों लड़ रहे थे; पर बभ्रुवाहन को तेज़ पड़ता देखकर तेज़ होने लगे। पर इससे भी बभ्रुवाहन परास्त नहीं हुआ। उसने अर्जुन के सारे तीर व्यर्थ कर दिए। उलूपी खड़ी हुई देख रही थी। इसी समय एक तीर उसने ऐसा मारा कि

तीर वर्म छेदकर अर्जुन की छाती में चुभ गया। देखते-देखते अर्जुन निष्प्राण हो गए। बभ्रुवाहन भी थका हुआ था, प्रहार करने के बाद वह भी मूच्छित हो गया। खबर चित्रांगदा के पास पहुँची। वह दौड़ी हुई आई, और अर्जुन को निष्प्राण देखकर पैरों पड़कर रोने लगी। अब तक बभ्रुवाहन की मूर्च्छा छूट चुकी थी। उसने मा को देखकर मारा हाल कहा। वहीं उलूपी खड़ी थी। चित्रांगदा उलूपी को पकड़कर रोने लगी। उलूपी के पास मृतसंजीवनी मणि थी। उसने बभ्रुवाहन को देते हुए कहा—"वत्स, यह मणि अपने पिता के क्षत स्थान पर रख दो, तो वह जी जायँगे। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के हृदय पर वह मणि रख दी। कुछ देर बाद पूर्ण स्वस्थ होकर अर्जुन ने आँख खोल दी। उन्हें मालूम हुआ, वह गहरी नींद के बाद जगे हैं। बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा और नागकन्या उलूपी वहीं खड़ी थी। चित्रांगदा से बड़े आदर से अर्जुन को राजधानी चलने के लिये कहा, परतु अर्जुन ने कहा—"इस समय मैं अश्वमेध के अश्व को छोड़कर अन्यत्र नही जा सकूँगा, इसके लिये मैं तुम लोगों से क्षमा चाहता हूँ।" उलूपी वही अदृश्य हो गई। अर्जुन ने बभ्रुवाहन को साथ ले लिया।

मगधराज्य, चेदिदेश होता हुआ अश्व हस्तिनापुर की तरफ लौटा। अर्जुन अश्व के साथ-साथ चले। मार्ग में अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी। कई जगह अर्जुन को बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। परन्तु सब जगह वह बचते गए, और परिणाम उनके लिये अच्छा रहा। पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और उत्तर, भारत तथा भारत से दूर तक के देशो में घोड़े की टाप पड़ी। अत में सकुशल घोड़ा हस्तिनापुर लौटा। हस्तिनापुर में घोड़े के पहुँचने की खबर होते ही लोग मारे आनद के पागल हो गए। अर्जुन का बडा भारी स्वागत किया।

देश-देशांतर के राजा धन-रत्न लेकर एकच्छत्र सम्राट् युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ में उपस्थित होने लगे। सब राजाओं के लिये युधिष्ठिर ने आदर-स्वागत का बड़ा अच्छा प्रबंध कर रक्खा था। पांडवों की मेहमानदारी से राजा लोग बहुत प्रसन्न हुए।

यज्ञ-मडप की शोभा देखते ही बनती थी। तमाम राजे ऊँचे-ऊँचे आसनों पर बैठे हुए थे, बीच में महाराज युधिष्ठिर वैदिक ब्राह्मणों से घिरे हुए यज्ञ कर रहे थे। यथाविधि दान-सम्मान और कर्मकांड से यज्ञ पूरा किया गया।

राजों तथा सज्जन नागरिकों के मनोरंजनार्थ अनेक प्रकार के खेल-तमाशे किए गए थे, अनेक प्रकार के प्रदर्शन थे। सब लोग पांडवों की सज्जनता

की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। लाखों कंठ के जय-जयकार से यज्ञ समाप्त हुआ।

आश्रमवासिकपर्व

महाराज धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती और विदुर का वानप्रस्थ-ग्रहण

कुरुक्षेत्र की लड़ाई समाप्त होने पर पुत्रों के शोक से धृतराष्ट्र ने एक ही वक्त भोजन करना शुरू किया, उन्हे देखकर पतिव्रता गांधारी भी वैसा ही करने लगीं। वह पलँग छोड़कर जमीन पर लेटने लगी, दूध के फ़ेन-जैसी सफ़ेद और कोमल सेज छोड़कर हिरन का चमड़ा बिछाकर सोने लगी। बातचीत के लिये केवल संजय और कृपाचार्य थे। धृतराष्ट्र की सेवा यों सभी पांडव करते थे। कुंती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि पांडव-महिलाएँ भी उनकी आज्ञा की बाट जोहती थीं। फिर भी धृतराष्ट्र के मन में एक काँटा खटकता रहा। भीम को धृतराष्ट्र के मनोभाव अच्छे नहीं लगते थे।

इसी तरह पंद्रह साल बीत गए। एक दिन धृतराष्ट्र संजय तथा कृपाचार्य से दुर्योधन की बातचीत करते-करते आवेश में आ गए। दुर्योधन और दुःशासन के रूप, बल, बुद्धि, विवेचन, शिष्टता, सभ्यता आदि की तारीफ करने लगे। भीम उधर से आ रहे थे। उन्होंने सुना। उन्हें अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—"मैंने इन्ही हाथों से अधम दुर्योधन और दुःशासन-जैसों का वध किया है।"

भीम का प्रचार धृतराष्ट्र को अच्छा न लगा। बहुत बड़ा अपमान मालूम दिया। गांधारी को भी चोट लगी। वह चुपचाप आँसू पोछकर रह गईं।

इसी के कुछ बाद भगवान् व्यासजी का आगमन हुआ। उन्होंने राजों के वानप्रस्थ-धर्म का धृतराष्ट्र आदि को स्मरण दिलाया। धृतराष्ट्र ऊबे थे ही। एकांत में गांधारी से सलाह करके हस्तिनापुर की राजधानी छोड़कर वनवास करने की इच्छा प्रकट की। महाराज युधिष्ठिर सुनकर धृतराष्ट्र के

पास आए, और बड़े विनीत कंठ से एकाएक महाराज धृतराष्ट्र से वन जाने का कारण पूछा। साथ ही यह इच्छा भी जाहिर की कि महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा हो, तो राज्य उनके पुत्र युयुत्सु को देकर वह भी उनकी सेवा के लिये साथ चलें। युधिष्ठिर की इस नम्रता पर धृतराष्ट्र मुग्ध हो गए। उन्होंने अपना दुःख दबाकर कहा—"वत्स युधिष्ठिर, अभी तुम राज्य करो, हमारा समय हो गया है, हमने पंद्रह साल से एक वक्त भोजन करके साधना करते हुए वन के अनुकूल अपने को तैयार कर लिया है, हमें जाने दो। हम हृदय से तुम्हें आशीर्वाद देते हैं।"

धृतराष्ट्र के वन जाने की बात सुनकर नगर के निवासी राजमहल में आए, और महाराज धृतराष्ट्र को घेर लिया। धृतराष्ट्र को मालूम होने पर उन्होंने विनीत स्वर से कहा—"भाइयो, महाराज शांतनु से लेकर आज तक हमारे वंशजों ने आप लोगों की जो सेवाएँ की हैं, जिस योग्यता से राज्य की संचालना की है, शत्रुओं का मुक़ाबला किया है, आप लोग जानते हैं। मुझसे जहाँ तक हो सका, मैंने आप लोगों की सेवा की है। अब महाराज युधिष्ठिर आप लोगों के सुयोग्य शासक हैं। उनसे आप लोग प्रसन्न रहेंगे। मैं बुड्ढा हुआ हूँ। अब मेरा धर्म यह है कि मैं परलोक का रास्ता साफ़ करूँ। आप लोग सच्चे हृदय से मुझे आज्ञा दीजिए कि मेरा अंत सत्य में हो।

महाराज धृतराष्ट्र की बात सुनकर नगरवासी रोने लगे। बोले—"महाराज, हमें एकाएक छोड़े चले जा रहे हैं। हम महाराज के किसी काम न आ सके। हमारी सेवाएँ ग्रहण करके महाराज तपस्या के लिये जायँ, तो हमें बोध हो। ऐसे हमारा जी नहीं मानता।"

नगरवासियों का आग्रह देखकर धृतराष्ट्र ने कहा—"मैं भरसक इसका प्रयत्न करूँगा। मैं यथारीति घर छोड़ने से पहले श्राद्ध करूँगा, तब मुझे आप लोगों के सहयोग की आवश्यकता होगी। आप लोग कृपा कर पधारें। नगरवासी सम्मान-प्रदर्शन करते हुए अपने-अपने घर गए।

यहाँ महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर के पास कहला भेजा—"वानप्रस्थ ग्रहण करने से पहले हमें अपने माता-पिता और पुत्रों का श्राद्ध करना होगा, इसके लिये अर्थ चाहिए।" महाराज धृतराष्ट्र की इच्छा समझकर युधिष्ठिर ने अर्थ देने की आज्ञा निकाल दी। लेकिन भीम ने अर्थ न दिया। उलटे कहा—"श्राद्ध भीष्म-द्रोण आदि का हो, तो ठीक है। वे इस योग्य हैं। दुर्यो-

धन और दुःशासन का श्राद्ध करने से क्या फल होगा ? इन्हें तो नरक में ही सड़ने देना चाहिए।" भीम की बात धृतराष्ट्र तक पहुँची। उन्हें और भी क्षोभ हुआ। महाराज युधिष्ठिर को भीम का मजाक मालूम हुआ, तो उन्होंने भीम को बुलाकर बहुत धिक्कारा। अस्तु, श्राद्ध के लिये यथेष्ट धन बाद को दिया गया, और धृतराष्ट्र ने श्राद्ध का दिन स्थिर कराया।

दिन निश्चित होने पर महाराज धृतराष्ट्र ने श्राद्ध-कर्म पूरा किया, और ग्यारह दिन तक अवारित हस्त से ब्राह्मणों को दान देते रहे। इस प्रकार कार्त्तिक की पौर्णमासी तक वह दानादि कार्य में लगे रहे।

इसके बाद मृगचर्म पहनकर, शास्त्र-रीति से अग्निहोत्र करके गांधारी के साथ वन को चलने के लिये महाराज धृतराष्ट्र राजभवन से बाहर निकले। नगर के समस्त लोग उस समय राजद्वार पर एकत्र थे। कुल पांडव, विदुर, संजय, कृपाचार्य, धौम्य, महाराज धृतराष्ट्र को छोड़ने के लिये आँखों

में आँसू भरे हुए खड़े थे। आँखों में पट्टी बाँधे हुए गांधारी का हाथ पकड़कर पांडव-माता कुंती धृतराष्ट्र के पीछे-पीछे जा रही थीं। इनके पीछे द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदि रानियाँ थीं। नगर के मार्ग के दोनों ओर भीड़ लगी हुई थी। स्त्रियाँ और बच्चे अटारियों पर चढ़े देख रहे थे।

महाराज धृतराष्ट्र वन के लिये चले, तब युधिष्ठिर ने कुंती से कहा—"माता, अब आप लौट जाइए, नहीं तो आपको कष्ट होगा।"

कुंती ने कहा—"बेटा, अब कुरु-वंश में तुम्हीं लोग हो। अच्छी तरह राज्य का भोग करो। द्रौपदी को आदर से रखना, मेरा कल्याण अब इसी मे है कि मैं देवी गांधारी की सेवा करूँ। अब मैं भी इनके साथ वन जाऊँगी।"

कुंती की बात सुनकर पांडव रोने लगे। द्रौपदी और सुभद्रा भी उनके साथ चलने को तैयार हुईं। तब कुंती ने कहा—"देखो, तुम लोगों ने अभी तक वनवास ही किया है। राजसुख नही भोगा। मैं तुम्हारे पिता के समय बहुत सुख भोग चुकी हूँ। अब मेरी इच्छा नगर में रहने की बिलकुल नही। मुझे जाने दो, तुम लोग लौट जाओ। महात्मा विदुर भी नगर त्यागकर चले। धृतराष्ट्र को किसी प्रकार का दु ख न पहुँचे, इसके लिये वह भी साथ-साथ चले।

महाराज धृतराष्ट्र उस दिन गंगा-किनारे रहे। यथाविधि यज्ञ आदि कर्म करके कुशासन पर लेटे। इस प्रकार कुछ दिन बिताकर कुरुक्षेत्र की ओर चले। वहाँ महर्षि शतयूप से आध्यात्मिक शिक्षा ली, और कठिन-से-कठिन तपस्या करने लगे।

तपस्या करते-करते कुछ समय बीता। महात्मा विदुर उग्र-से-उग्रतर तप करने लगे। वह ऐसी जगह रहने लगे, जहाँ मनुष्य मुश्किल से जा सकता था। खाना-पीना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया। उनका उग्र तप देखने के लिये कभी-कभी कोई-कोई ब्राह्मण वहाँ जाते थे। और उन्हें प्रणाम कर लौट आते थे। अन्न-जल विदुर ने छोड़ ही दिया था, बैठे-बैठे ईश्वर-स्मरण करते हुए एक दिन समाधिस्थ हो गए। उनका भौतिक शरीर यहीं रह गया, आत्मा ईश्वर में लीन हो गई। उनकी तपस्या की चारो ओर प्रशंसा हो चली।

कुछ दिनो बाद देवर्षि नारद हस्तिनापुर आए, और युधिष्ठिर से कहा—"महाराज, हम इस उद्देश से आपके पास आए हैं कि तपस्वारी महाराज धृतराष्ट्र, माता गांधारी और कुंती का संवाद आपको दें।" सुनकर युधिष्ठिर बहुत उतावले हुए। देवर्षि नारद ने कहा—"महाराज, धृतराष्ट्र हिमालय मे भ्रमण कर रहे थे। साथ गांधारी, कुंती और संजय थे। कई दिन के भूखे

थे। इसी समय वन में दावाग्नि लग गई। संजय ने उनसे कहा कि महाराज दावाग्नि लग गई है, परंतु धृतराष्ट्र को इसकी चिंता न हुई। उन्होंने कहा, मैं एक तो अंधा, इस पर कई दिनों का भूखा और अत्यंत वृद्ध हूँ, मैं भाग नहीं सकूँगा। तुम भगकर अपने प्राण बचाओ। मेरी चिंता तुम न करो। यह कहकर वह वहीं आसन मारकर बैठ गए। सती गांधारी भी नहीं भागी, पति के वाम पार्श्व में आसन लगाकर वह भी बैठ गईं, सती कुंती भी उनकी बगल में उसी तरह बैठ गईं। तीनों ने चित्त को आत्मनिष्ठ किया। संजय वहाँ से बचकर चले गए। पर आग ने इन तीनों महाप्राण व्यक्तियों को दग्ध कर दिया।"

मौपलपर्व

यादव आदिकों का नाश

पांडवों की सत्ता देश में स्थापित हो गई, छत्तीस साल हो गए। देश फला-फूला, लहलहा रहा था। कोई उपद्रव नहीं हुआ। लोग शांति से रहे। व्यापार वढ़े। राहें दुरुस्त की गईं। राज्यों में मैत्री का भाव दृढ़ रहा। पांडवों की तरफ से सब कुछ कृष्ण का किया हुआ है, लोगों की धारणा थी; इसलिये कृष्ण की पूजा उत्तरोत्तर वढ़ी। उन्हे लोग अवतार मानने लगे। देश-देश के लोग उनके पास जाते थे। उनकी वातें सुनते थे। उनके अनुसार काम करते थे। सबको विश्वास था, कृष्ण के उपदेश हित करेंगे।

कृष्ण की इस वढ़ती प्रतिष्ठा का यादव-राजकुमारों पर वुरा प्रभाव पड़ा। उनमें गर्व की मात्रा वढ़ने लगी। धीरे-धीरे उनका स्वभाव विगड़ गया। शराव पीने लगे। मांस भी वेहिसाव खाने लगे। क्रमशः ऐसे उद्दंड हो गए कि सभ्य जनों से भी असभ्य वातचीत और अनादर से पेश आने लगे। ऋपियों और ब्राह्मणों का अपमान हो चला। ऐसे अधम कार्य में सारण आदि यादव और श्रीकृष्ण का पुत्र सांव थे।

एक दफा नारद, विश्वामित्र और कण्व आदि ऋपि द्वारका गए। राजकुमार सांव को औरत की तरह साड़ी पहनाकर ऋपियों के पास ले गए, और कहा—"भगवान्, आप लोग तो त्रिकालदर्शी हैं, यह वभ्रु की स्त्री है, गर्भवती है। वताइए, इसके लड़का होगा या लड़की ?" ऋपि रुष्ट हो गए। उन्होंने कहा—"इस 'अधम' सांव के गर्भ से कल एक मूसल पैदा होगा, और उससे तुम्हारे वंश का नाश होगा।"

शाप सुनकर यादव-राजकुमार घवराए। महाराज वसुदेव से उन्होंने कुल हाल कहा। वसुदेव ने राजकुमारों को वहुत धिक्कारा, और सांव के मूसल होने पर उसे चूर-चूर करके समुद्र में फेंकवा दिया। लेकिन वह मूसल जिस जगह फेंका गया था, वह 'सरपत' का वन उग आया। एक दिन एक व्याध ने उसकी डंडी तोड़ी, और उसे धनुप का तीर वनाया।

कुछ दिनों में यादव-राजकुमारों को जल-विहार करने की इच्छा हुई। निश्चय हुआ कि सरस्वती जहाँ समुद्र से मिलती है, वहाँ चलकर नहाएँ, और जल-विहार करें। निश्चय के अनुसार तैयारी हो गई, और महिलाओं को साथ लेकर समस्त राजकुमार चले। कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सात्यकि आदि भी थे। राजकुमारों ने दरिद्र ब्राह्मणों को दान करने के लिये जो अन्न लिया था, उसे सड़ाकर वहाँ शराब बनवाई, और पीकर मस्त रहने लगे। ब्राह्मणों को दान की जगह बदरों को शराब पिलाकर तमाशा देखते थे। एक दिन शराब पीने का उत्सव मनाया गया। बलदेव, सात्यकि, कृतवर्मा, गद, बभ्र आदि सबने शराब पी और कृष्ण के सामने ! शराब पीकर एक दूसरे की आलोचना करने लगे। हास्य परिहास में बदला। सात्यकि ने कहा—"कृतवर्मा नीच है, रात को पांडवों के पुत्रों को मार डाला।" कृतवर्मा ने कहा—"तू महानीच है। जब भूरिश्रवा के हाथ कट गए थे, वह बैठा सत्याग्रह कर रहा था, तब तूने उसका सिर काट लिया। सात्यकि ने तलवार निकाल ली, और एक हाथ ऐसा मारा कि कृतवर्मा का सिर कटकर अलग गिरा, धड नाचने लगा। भोज और अंधक कृतवर्मा के साथी थे। उन्होंने सात्यकि पर आक्रमण किया। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध सात्यकि की ओर से लड़ने लगे, पर भोज और अंधकों ने इन्हें मार गिराया। इससे कृष्ण को क्रोध आ गया। उन्होंने सरपत उखाड़कर मारना शुरू किया। कृष्ण के पुत्र सांब, चारुदेष्ण और अनिरुद्ध तथा गद भी मारे गए। देखकर कृष्ण काल-स्वरूप होकर भीषण युद्ध करने लगे। सब लोग सरपत उखाड़-उखाड़कर उससे संग्राम करने लगे। इस युद्ध में यादव, अंधक और भोजों का समस्त वंश निहत हो गया। केवल स्त्रियाँ बची। वे द्वारका पहुँचाई गईं।

★ बलराम और कृष्ण का परलोक-गमन

बलराम को इस युद्ध के बाद वैराग्य हुआ, वह प्रभास-तीर्थ गए, और वहाँ तपस्या करते हुए समाधि लगाने की सोची। कृष्ण ने सारथि से कहा—"स्त्रियों को द्वारका में छोड़कर हस्तिनापुर जाना, और अर्जुन से कहना, समस्त यादव-कुल का नाश हो गया है, वह आकर स्त्रियों और

बच्चों को हस्तिनापुर ले जायें। कुरुक्षेत्र में कौरवों का नाश देखा था, प्रभास-तीर्थ मे यादवों का नाश देखा। अब भैया बलराम के पास जाकर तपस्या से शरीर छोडना उचित समझता हूँ। सारथि दारुक ने कृष्ण की आज्ञा के अनुसार काम करने के लिये कहा। कृष्ण ने पिता वसुदेव को प्रणाम किया, और बलराम से मिलने के लिये चल दिए। बलराम के पास पहुँचे, तो देखा, वह सिद्धासन पर बैठे थे, देह हिल-डुल नहीं रही थी, साँस नही चल रही थी, एक साँप की आकृति की ज्योति उनकी देह मे निकलकर ब्रह्म-मंडल में लीन हो रही थी। कृष्ण समझ गए कि बलराम यह लोक छोड़कर चले गए।

शोक से व्याकुल होकर कृष्ण एक पेड के सहारे लेट गए। दायाँ पैर बाएँ घुटने पर रख लिया। कृष्ण योगनिद्रा मे पडे थे कि 'जरा' नाम के व्याध ने दूर से कृष्ण का पैर चमकता देखा। उसे मालूम दिया, हिरन का मुँह है। उसी ने सरपत तोड़कर तीर बनाया था। उसने तीर धनुष पर चढाकर पैर के तलवे में मारा। तीर अचूक बैठा। कृष्ण के तलवे में तीर चुभ गया। व्याध दौड़ा हुआ आया, और कृष्ण को देखकर दंग हो गया। फिर रोने लगा। कृष्ण ने कहा—"तुम्हारा इसमें दोष नहीं। तुम इसकी चिंता न करो।" कहकर कृष्ण परमधाम को चले गए। संसार में अपनी अद्भुत कीर्ति रखकर एक सौ बीस साल की उम्र में कृष्ण अपने लोक को चले गए। उनके जाने से संसार में हाहाकार मच गया। उनके शरीर-त्याग के संवाद से वसुदेव बहुत ही खिन्न हुए, और दूसरे दिन शरीर छोड़ दिया। उनका श्राद्ध द्वारका जाकर अर्जुन ने किया, और जब द्वारका से स्त्रियों को लेकर चले, तब समुद्र ने द्वारकापुरी को अपने गर्भ में डाल लिया। रास्ते में भी विपत्ति आई। डाकुओं का एक दल अर्जुन को अकेला जानकर आया। द्वारका का माल और बहुत-सी स्त्रियों को लूट ले गया। अर्जुन युद्ध न कर सके। अर्जुन ने भोजकुल की स्त्रियों को मार्तिकावत में रखा, और सरस्वती-नगर का राज्य सात्यकि-पुत्रों को दिया। वज्र को पांडवों की पुरानी राजधानी इंद्रप्रस्थ का राजा बनाया।

कृष्ण की पत्नियों में रुक्मिणी, गांधारी, हैमवती, शैब्या और जांबवती सती हो गईं; सत्यभामा तथा और-और वन में तप करने चली गईं।

महाप्रस्थानिकपर्व

★ पांडवों की हिमालय-यात्रा

श्रीकृष्ण के चले जाने से पांडव निस्तेज हो गए। उन्हें बार-बार याद आने लगा कि यादवों का महान् वंश बात-की-बात में, सरपत की मार से, नष्ट हो गया। द्वारकापुरी समुद्र-गर्भ में समा गई। कृष्ण की पुरनारियों को डाकुओं ने लूट लिया। विश्व-विजयी अर्जुन कुछ न कर सके। गांडीव उनसे उठा ही नहीं। पांडवों के वैराग्य की सीमा न रही। उन्होंने निश्चय किया, राज्य छोड़कर हिमालय-यात्रा करेंगे।

इस अभिप्राय से उन्होंने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी दी। युयुत्सु और कृपाचार्य को राज्य की रक्षा का प्रबंध सौंपा। फिर सुभद्रादेवी को बुलाकर युधिष्ठिर ने कहा—"भद्रे, अब हम वनवास को जाते है। हमारा जी राज्य के प्रबंध में नही लगता। हमारे परम हितैषी मित्र कृष्ण जब इस संसार में नहीं रहे, तब हमारी भी यहाँ अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई। इंद्रप्रस्थ के सिंहासन पर कृष्ण का पौत्र वज्र है, और हस्तिनापुर के सिंहासन पर तुम्हारा पौत्र परीक्षित। तुम याद रखना कि तुम कृष्ण की बहन और महावीर अर्जुन की पत्नी हो। अपने कुल की मर्यादा रखना। दोनो वंशों का राज्य-शासन अच्छी तरह हो, ऐसी व्यवस्था रखना।

इस प्रकार उपदेश देकर धर्मराज अपने चारो भाई और द्रौपदी-सहित वन के लिये राजधानी छोड़कर बाहर निकले। हस्तिनापुर के नागरिक पांडवों को चाहते थे। वे साथ हो लिए। बहुत दूर तक पीछा करते हुए गए। लेकिन युधिष्ठिर ने सबको समझा-बुझाकर वापस किया, फिर भाइयों और द्रौपदी के साथ पूर्व की ओर चले। पूर्व का समुद्र देखकर पश्चिम मुड़े। बहुत दिनों के बाद द्वारका पहुँचे। देखा, महानगरी द्वारका समुद्र में डूबी हुई है। उस पर से समुद्र की लहरें दौड़ रही हैं। समस्त भारत की परिक्रमा कर पांडव हिमालय की ओर चले। कुछ आगे बढ़ने पर अग्नि देव आकर

मिले, और अर्जुन से कहा—"हमारा गांडीव और अक्षय तूणीर दे दो। अर्जुन ने अग्निदेव को उनका धनुप और तीरों से भरा तरकस दे दिया।"

धर्मराज युधिष्ठिर जब वन-गमन के लिये निकले थे, तब एक कुत्ता उनके साथ-साथ पीछे-पीछे चला था। वे जहां-जहां गए, पीछे लगा वह भी चलता रहा: हिमालय की यात्रा शुरू की, तो वह भी साथ चला। कुछ दूर जाने पर हिम पड़ने लगा, जिससे पांडवों की गति रुद्ध होने लगी, फिर भी वे अप्रतिहत गति से चलते गए। कुछ और चलने पर द्रौपदी की देह शून्य हो गई, वह वहीं गिर गईं। उनके गिरने पर भीम ने युधिष्ठिर से पूछा—"महाराज, द्रौपदी तो सती थी, कभी पतियों का साथ नहीं छोड़ा, सदा उनका चित्त सत्कर्मों में लगा रहा, वह गिर क्यों गईं?" युधिष्ठिर ने कहा—"भीम, द्रौपदी दिल से अर्जुन को ज्यादा चाहती थी। सब पतियों पर समदृष्टि वह नहीं रख सकी।"

कुछ देर बाद सहदेव उसी तरह गिरे। तब भीम ने फिर पूछा। युधिष्ठिर ने कहा—"सहदेव को अपने पांडित्य का अभिमान था।"

कुछ दूर और चलने पर नकुल गिरे। पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा—"नकुल को अपने रूप का गर्व था। वह अपने सामने संसार में किसी को रूपवान् नहीं समझते थे।"

कुछ दूर पर अर्जुन गिरे। भीम ने पूछा—"धर्मराज, अर्जुन-जैसे विश्व-विजयी योद्धा की यह गति किस पाप से हुई?"

युधिष्ठिर ने कहा—"भाई, अर्जुन को भी अपनी अस्त्र-शिक्षा का गर्व था।"

थोड़ी देर बाद भीम भी गिरने को हुए, तब पुकारकर कहा—"महाराज, अब मैं भी गिरता हूँ, बताइए, मुझमें कौन-सा पाप था, जिसके कारण मैं अब आपका साथ न दे पा रहा हूँ?" युधिष्ठिर ने कहा—"तुम्हें भी बल का गर्व था। तुम समझते थे, तुम्हारे-जैसा बली संसार में कोई नहीं।"

महाराज युधिष्ठिर चलते गए। वह कुत्ता उनके पीछे लगा रहा। कुछ देर बाद एक ज्योतिर्मय रथ आया, और इंद्र उससे उतरे। उतरकर कहा—"धर्मराज युधिष्ठिर, आप धन्य हैं। आप सशरीर स्वर्ग जा सकते हैं। लेकिन इस कुत्ते को छोड़ देना होगा।" युधिष्ठिर ने कहा—"यह बराबर मेरे साथ रहा है। मैं इसे छोड़कर स्वर्ग नहीं जाना चाहता।" वह कुत्ता साक्षात् धर्म था। प्रकट होकर युधिष्ठिर को धन्यवाद देने लगा।

स्वर्गारोहणपर्व

★ युधिष्ठिर का नरक-दर्शन और स्वर्ग-लाभ

देवराज इंद्र युधिष्ठिर को स्वर्ग ले गए। स्वर्ग पहुँचकर युधिष्ठिर ने देखा, दुर्योधन-दुःशासन आदि प्रसन्नता से बैठे हुए हैं, युधिष्ठिर को देखकर हँस रहे हैं। इससे इन्हें बडा क्षोभ हुआ। इन्होने कहा—"मेरे भाई भीम, अर्जुन, कर्ण आदि यहाँ नहीं दिख रहे, इसका क्या कारण है ?" इंद्र ने कहा—"युधिष्ठिर, स्वर्ग आकर किसी से ईर्ष्या नही की जाती। दुर्योधन, दुःशासन आदि सम्मुख-समर मे मरे हैं, इसलिये अबाध गति से स्वर्ग प्राप्त किया है। युधिष्ठिर ने कहा—"महावीर कर्ण ने भी सम्मुख-समर में प्राण दिया है, हमारे और भी संबंधी है, वे यहाँ क्यों नहीं हैं ?" इंद्र ने कहा—"क्या तुम उन्हे देखना चाहते हो ?" युधिष्ठिर ने इच्छा प्रकट की।"

तब इंद्र ने एक देवदूत को साथ कर दिया, और कहा कि युधिष्ठिर को भीमार्जुन आदि के पास ले जाय। देवदूत एक जगह तक ले गया, फिर वहाँ से कहा—"आप सीधे बढ़ते जाइए, दक्षिण की तरफ, फिर सीधे उत्तर की तरफ चले आइएगा; वहाँ आपकी, भाई-बंदों से मुलाकात होगी।"

युधिष्ठिर आगे बढ़े, तो घोर दुर्गंध आ रही थी, फिर खून-पस के नदी-नाले बहते दिखाई दिए, फिर सड़ा मांस और मल-मूत्र दिखा, युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए। इसी समय भीम और अर्जुन आदि की करुण ध्वनि सुन पड़ी। "महाराज, हम घोर नरक भोग रहे हैं, आप कुछ देर और ठहरिए, आपके शरीर की हवा से हमें आराम मिलता है, हम पर दया कीजिए।"

भीम, अर्जुन और द्रौपदी आदि की ऐसी करुण पुकार सुनकर युधिष्ठिर बहुत विचलित हुए। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इसी समय इंद्र वहाँ प्रकट हुए और कहा—"युधिष्ठिर, अश्वत्थामा के वध के समय तुमने झूठ कही थी, इसलिये तुम्हें कुछ काल नरक भोगना पड़ा, चलो, अब स्वर्ग चलो, तुम्हारे सब भाई, पत्नी और परिवार के लोग वहीं मिलेंगे। इन सबके भी अपराध

कट गए। जिन्हें थोड़ा दुख भोगना पड़ता है, उन्हें पहले नरक होता है। फिर स्वर्ग। जिन्हे थोड़े दिन स्वर्ग भोगना पड़ता है, वे पहले स्वर्ग आते हैं।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर इंद्र के साथ स्वर्ग गए। वहां सब भाइयों, द्रौपदी, कर्ण आदि को हंसते देखा।

युधिष्ठिर का नरक-दर्शन और स्वर्ग-लाभ

देवराज इंद्र युधिष्ठिर को स्वर्ग ले गए। स्वर्ग पहुँचकर युधिष्ठिर ने देखा, दुर्योधन-दुःशासन आदि प्रसन्नता से बैठे हुए हैं, युधिष्ठिर को देखकर हँस रहे हैं। इससे इन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। इन्होंने कहा—"मेरे भाई भीम, अर्जुन, कर्ण आदि यहाँ नहीं दिख रहे, इसका क्या कारण है?" इंद्र ने कहा—"युधिष्ठिर, स्वर्ग आकर किसी से ईर्ष्या नहीं की जाती। दुर्योधन, दुःशासन आदि सम्मुख-समर में मरे हैं, इसलिये अबाध गति से स्वर्ग प्राप्त किया है। युधिष्ठिर ने कहा—"महावीर कर्ण ने भी सम्मुख-समर में प्राण दिया है, हमारे और भी संबंधी हैं, वे यहाँ क्यों नहीं हैं?" इंद्र ने कहा—"क्या तुम उन्हें देखना चाहते हो?" युधिष्ठिर ने इच्छा प्रकट की।"

तब इंद्र ने एक देवदूत को साथ कर दिया, और कहा कि युधिष्ठिर को भीमार्जुन आदि के पास ले जाय। देवदूत एक जगह तक ले गया, फिर वहाँ से कहा—"आप सीधे बढ़ते जाइए, दक्षिण की तरफ़, फिर सीधे उत्तर की तरफ चले आइएगा; वहाँ आपकी, भाई-बंदों से मुलाक़ात होगी।"

युधिष्ठिर आगे बढ़े, तो घोर दुर्गंध आ रही थी, फिर खून-पस के नदी-नाले बहते दिखाई दिए, फिर सड़ा मांस और मल-मूत्र दिखा, युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए। इसी समय भीम और अर्जुन आदि की करुण ध्वनि सुन पड़ी। "महाराज, हम घोर नरक भोग रहे हैं, आप कुछ देर और ठहरिए, आपके शरीर की हवा से हमें आराम मिलता है, हम पर दया कीजिए।"

भीम, अर्जुन और द्रौपदी आदि की ऐसी करुण पुकार सुनकर युधिष्ठिर बहुत विचलित हुए। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इसी समय इंद्र वहाँ प्रकट हुए और कहा—"युधिष्ठिर, अश्वत्थामा के वध के समय तुमने झूठ कही थी, इसलिये तुम्हें कुछ काल नरक भोगना पड़ा, चलो, अब स्वर्ग चलो, तुम्हारे सब भाई, पत्नी और परिवार के लोग वहीं मिलेंगे। इन सबके भी अपराध

कट गए। जिन्हें थोड़ा दुख भोगना पड़ता है, उन्हें पहले नरक होता है। फिर स्वर्ग। जिन्हें थोड़े दिन स्वर्ग भोगना पड़ता है, वे पहले स्वर्ग आते हैं।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर इंद्र के साथ स्वर्ग गए। वहां सब भाइयों, द्रौपदी, कर्ण आदि को हँसते देखा।